देवकुमार-ग्रन्थमाला का पञ्चम पुष्प

# प्रशस्ति-संग्रह



संपादक
पं० के० भुजबली शास्त्री, विद्याभूषण



प्रकाशक :
निर्मलकुमार जैन, मंत्री
जैन-सिद्धान्त-भवन
आरा।

वि० सं० १९९९

मूल्य डेढ़ रुपया

प्रथम संस्करण ५००

मुद्रक
श्री सरस्वती प्रिंटिङ्ग-वर्क्स लि०, आरा

जुलाई १९४२

# Introductory note on

# Prasastisangraha

---

The work entitled "Prasastisangraha" is a good Descriptive Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts bearing Nos from 196 to 263 and 54 to 78—about 54 mss in all – in the Jaina Siddhāntabhavana, Arrah I have no information as to the total number of manuscripts in the Library, the number that have already been catalogued and that remain yet to be examined From the Prasastisangraha in hand, however, I find that the method of cataloguing follows the plan usually adopted in such works and furnishes information on the name of the works and the authors, the subject matter, the bulk, kind, and condition of the manuscripts, the language and the scripts and the chronology of the authors, besides giving quotations from the beginning, the middle and end of the works

The Prasastis found in almost all the works noticed in this Catalogue are fully taken advantage of in determining the dates of the authors The dates range from Simhasuri's Lokatatvavibhāga A D 458 to works composed in the 18th century A D The following are some of the important works deserving study –

Nidānamuktavali Serial No 5, Kalyānakāraka of Ugrādityāchārya Ser No 17 and Sārasangraha Ser No 39, all medical works.

Reference to Kākatiya Pratāparudra in Vidyānuvādānga No 204, to Manvagandagopāla a feudatory of the Kākatiyas in 1299 A D, to Virapāndya (A D 1457) in Bhavyānanda, No 216, attributed the Pandya king himself, and to the Ganga-king Devarāja in Gitavitarāga No 227, a lyrical poetical work of the type of the well known Gita-govinda of Jayadeva A D 1180, are of great importance to Indian historians

The work is well done and the authors deserve credit for it. It is hoped that Pandit K Bhujabali Shāstri to whom the credit of bringing out the above work is mainly due will continue the work and complete the work of cataloguing all the manuscripts contained in the Library of the Digambara Jainas in Arrah

A Shamasastry.

# संपादक की ओर से

भूतकाल से वर्तमानकाल का घनिष्ठ संबंध है। अतएव भूतकाल का यथोचित ज्ञान हुए विना वर्तमान अवस्था का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं हो सकता। खासकर वर्तमान रीति-रिवाज, रहन-सहन, धर्म-कर्म, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान आदि प्रतिदिन के कार्यों पर प्राचीनता की ऐसी छाप लगी हुई है कि भूतकाल से पृथक् वर्तमान का कोई मतलब ही नहीं होता। वर्तमान समय में भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास क्रमबद्ध उपलब्ध नहीं होता। प्रो० मैक्समूलर,[१] डॉ० फ्लीट[२] आदि इतिहास-विशारदों का मत है कि प्राचीन भारतीय सदा पारलौकिक विषयों के ही चिन्तन में लगे रहते थे, उनका ऐहिक सुख तथा उससे संबंध रखनेवाली विद्याओं के साथ कोई संबंध नहीं था, इसीलिये उन्होंने इतिहास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उपर्युक्त विद्वानों का यह कथन सर्वथा निर्मूल नहीं है। फिर भी प्राचीन साहित्य के अनुशीलन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि भारतवासी इतिहास-विज्ञान से भले प्रकार परिचित थे। वे अपनी घटनाओं को उल्लिखित एवं क्रमबद्ध करते थे। इतिहास को वे इतना महत्त्व देते थे कि उसे पाँचवाँ वेद समझते थे।[३] राजा लोग अपनी दैनिक दिनचर्या में इतिहास-श्रवण को भी महत्त्वपूर्ण स्थान देते थे।[४] प्राचीन विद्याओं में इतिहास की भी गिनती थी।[५] इन सब प्रमाणों का अवलोकन कर ही प्रो० विल्सन,[६] कर्नल टॉड[७] और श्रीयुत स्टाइन[८] आदि अनेक यूरोपीय ऐतिहासिक विद्वानों ने प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक विवेचना एवं प्राचीन साहित्य में इतिहास की सत्ता को स्वीकार किया है।

अस्तु, प्राचीन साहित्य, विदेशियों के यात्रा-विवरण, शिलालेख और ताम्रपत्र, सिक्के, मूर्ति और मंदिर आदि सामग्रियों के समान प्रतिमालेख एवं ग्रन्थप्रशस्तियाँ भी इतिहास-निर्माण के बहुमूल्य साधन हैं। खासकर जैन ग्रन्थों के मंगलाचरण और प्रशस्तियों से इतिहास का कितना घनिष्ठ संबंध है, इस बात को एक जैनेतर विद्वान् के मुख से ही सुन लेना अधिक अच्छा होगा।

---

१—The History of Ancient Sanskrit Literature, P. 9

२—Imperial Gazeteer of India, vol II, P 3

३—कौटिलीय-अर्थशास्त्र १।३, छन्दोग्योपनिषद्, सप्तम प्रपाठक।

४—कौटिलीय-अर्थशास्त्र, १।५।

५—छन्दोग्योपनिषद्, सप्तम प्रपाठक।

६—Vishnu Purana Introduction ७—Annual of Rajasthan Introduction

८—Rajatarangini, Introduction

"जैन ग्रन्थों के मंगलाचरण और प्रशस्तियाँ ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े काम की चीजें हैं। कुछ ही ग्रन्थ ऐसे होंगे, जिनके मंगलाचरण में अपने पूर्व कवियों के नाम अथवा कृतियों का उल्लेख नहीं किया गया हो तथा प्रशस्तियों में अपनी गुरुपरंपरा और तत्कालीन राजवंश का परिचय नहीं दिये गये हों। यहीं तक नहीं, बल्कि प्रशस्तियों के नीचे जो धर्मप्राण जैनी स्त्री पुरुष उस ग्रंथ की प्रतिलिपि करवाकर किसी मंदिर में प्रदान किये रहते हैं, उनकी वंश-परंपरा का भी उल्लेख बहुत मिलता है। ऐसी दशा में इतिहास-प्रणेता अन्वेषकों के लिए जैन ग्रन्थों के मंगलाचरण और प्रशस्तियाँ कितने काम की चीजें हैं, इस बात का पता सहज ही में लग सकता है। बड़े दुःख की बात है कि भारत के इतिहास-लेखकों ने पारसी, अरबी आदि अन्यान्य संप्रदाय के साहित्य एवं इतिहास का अनुशीलन करने का कष्ट तो उठाया, किन्तु भारतीय साहित्य तथा इतिहास के सर्वश्रेष्ठ साधन जो जैन ग्रन्थ हैं, उनकी ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। इसका मुख्य कारण यह भी हो सकता है कि जैन ग्रन्थों के प्रकाश में नहीं आने एवं जैन शास्त्र भाण्डाराधिपतियों की लापरवाही के कारण अन्यान्य ऐतिहासिक विद्वान् जैन ग्रन्थों में भरे पड़े ऐतिहासिक साधनों से लाभ नहीं उठा सके।"[1]

'जैन सिद्धान्त-भवन' में संगृहीत अप्रकाशित जैन संस्कृत एवं प्राकृत ग्रन्थों में उपलब्ध मंगलाचरण एवं प्रशस्तियों के प्रकाशन-द्वारा यावच्छक्य ऐतिहासिक साधन संचित कर देना ही इस 'प्रशस्ति-संग्रह' के प्रकाशन का एकमात्र उद्देश है। क्योंकि एकाएक सभी जैन ग्रन्थों को प्रकाशित कर देना शक्य नहीं है। हाँ एक बात है कि 'प्रशस्ति-संग्रह'-गत प्रशस्तियों में दिगम्बर-शाखा की प्रशस्तियाँ ही सम्मिलित हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि 'जैन सिद्धान्त-भवन' एक दिगम्बरीय संस्था है और यहाँ के संगृहीत हस्तलिखित ग्रन्थों में दिगम्बर-शाखा के ग्रन्थ ही अत्यधिक मात्रा में हैं।

प्रस्तुत 'प्रशस्ति-संग्रह' सर्वप्रथम यहाँ से प्रकाशित होनेवाले 'जैन-सिद्धान्त भास्कर' नामक अनुसंधान-संबंधी त्रैमासिक पत्र में प्रकाशित हुआ। इसके प्रकाशित होते ही स्वर्गीय महामहोपाध्याय रायबहादुर, प्राक्तन-विमर्श-विचक्षण श्रीमान् आर० नरसिंहाचार्य, एम ए, भूतपूर्व डाइरेक्टर ऑफ आर्किआलोजी मैसूर[2] श्रीमान् प्रो० बी० शेष गिरिराव, एम ए., पी-एच डी महाराज कॉलेज, विजयनगर[3] सरस्वती, विद्याभूषण, काव्यतीर्थ श्रीमान्

---

1—'जैन सिद्धान्त-भास्कर' भाग २ पृष्ठ १२।

२—" 'प्रशस्ति-संग्रह' अत्यन्त उपयोगी है। इस संग्रह से अप्रकाशित ग्रन्थों का विषय-परिज्ञान बहुत कुछ हो जाता है। पाठक इसके लिये आपके उपकृत हैं।"

३— जैन अप्रकाशित ग्रन्थों का पूरा परिचय दे एवं उनपर विस्तृत टिप्पणी प्रकाशित कर आप जैन-संस्कृति की सच्ची सेवा कर रहे हैं।"

शरच्चन्द्र घोषाल, एम ए , बी एल , कूचविहार[1] एव काव्यतीर्थ श्रीमान् चिन्ताहरण चक्रवर्ती, एम ए , कलकत्ता[2] आदि सुविख्यात जैनेतर विद्वानों ने इस कार्य की मुक्तकण्ठ से प्रशसा कर मेरे उत्साह को बढाया। फलस्वरूप 'प्रशस्ति-संग्रह' का यह प्रथम भाग पुस्तकाकार में आप पाठकों के समक्ष उपस्थित है। मै मानता हूँ कि इसमें एक-दो त्रुटियाँ रह गयी हैं। एक तो अल्पज्ञों से त्रुटियों का होना सर्वथा स्वाभाविक है, दूसरा यह प्रथम प्रयास है। इसके द्वितीय भाग को सर्वाङ्गसुन्दर बनाने के सबध में मै अभी से चिन्तित हूँ।

अस्तु, श्वेताम्बर-समाज में प्रशस्तियों का एक सग्रह अहमदाबाद से पहले ही प्रकाशित हो चुका है। सुना है कि दूसरा सग्रह श्रीजिनविजयजी-द्वारा सम्पादित होकर 'सिंघी ग्रन्थमाला' की ओर से दो भागों में शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। दिगम्बर-समाज में तो यही एक सग्रह पहलेपहल प्रकाश में आ रहा है। जिस प्रकार 'जैन-सिद्धान्त-भवन' दिगम्बर-समाज में एक उच्चकोटि की आदर्श सस्था है, उसी प्रकार उसका यह पुनीत कार्य भी औरो के लिए मार्गदर्शक बना रहेगा। अब विज्ञ पाठकों का ध्यान मैं 'प्रशस्ति-सग्रह' की एक-दो आवश्यक बातों की ओर आकर्षित करता हूँ।

इसमें शुरू से कुछ दूर तक (पृष्ठ १ से २४ तक) 'प्रारम्भिक भाग' के स्थान पर 'मगलाचरण' ही लिखा जाता रहा, परन्तु जब आगे चलकर कुछ रचनाओं में 'मगलाचरण' का सर्वथा अभाव पाया गया, तब इस 'मगलाचरण' के स्थान पर 'प्रारम्भिक भाग' ही लिखना उचित समझा गया जो कि अन्त तक जारी रहा। इसी प्रकार आगे चलकर (पृष्ठ १ से २४ तक) विवश हो 'प्रशस्ति' के स्थान पर 'अन्तिम भाग' लिखना पडा, क्योंकि सब प्रतियों में प्रशस्तियाँ उपलब्ध नहीं हुई। दूसरी बात है कि जहाँ जैसा उचित समझा गया है—कहीं-कहीं ग्रथ का परिचय और कहीं-कहीं ग्रन्थकर्त्ता का परिचय विस्तृत कर दिया गया है, क्योंकि जहाँ ग्रन्थ का विषय अधिक गम्भीर था, वहाँ उसे स्पष्ट कर देना आवश्यक समझा गया।

श्रुतकीर्त्ति-रचित 'हरिवशपुराण' की प्रशस्तियो में उसका रचना-स्थान जेरहट कहा गया है। उस जेरहट को मैंने मेवाड़ प्रान्तान्तर्गत माण्डलगढ अनुमान किया था। परन्तु श्रीयुत दशरथ शर्मा, एम ए , बीकानेर की राय से वह जेरहट उक्त मेवाड प्रान्तान्तर्गत माण्डलगढ़ न होकर मालवे की पुरानी राजधानी माडू है, जो किसी समय धारा नगरी से कुछ दूरी पर स्थित था और इस समय प्राय निर्जन पडा हुआ है।[3] इसी प्रकार

१—"विशेषत मुझे आपका 'प्रशस्ति-सग्रह' बहुत पसन्द आया। वह अबतक के अज्ञात हस्तलिखित ग्रन्थों का विशद परिचय दे रहा है।"

२—"प्राचीन ग्रन्थों की सविस्तर सूची पूरी सपादित हो जाने पर बहुत काम की चीज होगी।"

३—देखें 'जैन-सिद्धान्त-भास्कर' भाग ७, किरण १।

पहले मैंने समझा था[1] कि 'श्रीपुराण' भट्टारक सकलकीर्त्तिजी की रचना है। इस समझ के दो कारण थे—पहला जनश्रुति, दूसरा सकलकीर्त्ति की कृतियों में भी 'आदिपुराण' नामक ग्रंथ का पाया जाना। फिर भी 'श्रीपुराण' के मंगलाचरण आदि को देखकर मुझे अवश्य संदेह हुआ था। इसीलिये 'प्रशस्ति-संग्रह' के अन्तर्गत उक्त ग्रंथ के परिचय में मैंने स्पष्ट लिख दिया था कि इस ग्रंथ के रचयिता का प्रकृत पता लगाने के लिये भगव जिनसेन एवं सकलकीर्त्ति के आदिपुराणों को तुलनात्मक दृष्टि से अवश्य देखना चाहिये। सकलकीर्त्ति का 'आदिपुराण' मेरे सामने नहीं था, इसलिये उस समय मैं उससे इस 'श्रीपुराण' का मिलान करने में असमर्थ रहा। साथ ही साथ प्रशस्ति-संग्रहान्तगत सभी ग्रंथों को आमूलाग्र देखने का अवकाश मिलता भी नहीं था। खैर, पीछे पं० नेमिराजजी शास्त्री, मैसूर के एक पत्र से ज्ञात हुआ कि 'श्रीपुराण' में जिनसेन-कृत 'आदिपुराण' के श्लोक ही संगृहीत हैं, जिनके द्वारा श्रीऋषभदेव की संक्षिप्त जीवनीमात्र सङ्कलित है। फिर भी पता नहीं लगा कि इसके संग्रहकर्त्ता कौन है।

अंत में मैं अर्थशास्त्रविशारद, विद्यालंकार, महामहोपाध्याय डॉ० आर० शामशास्त्रीजी, बी ए., पी-एच डी, विश्रांत मैसूर प्राच्यकोषागाराध्यक्ष एवं शासनविमर्शशाखाध्यक्ष को हृदय से धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने मेरी प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर शीघ्र ही इसके लिये एक पाण्डित्यपूर्ण प्रस्तावना लिख भेजने की कृपा की।

बहुभाग प्रशस्तियों के संग्रह एवं संशोधन में मेरे भूतपूर्व सहकारी काव्यपुराणतीर्थ श्रीमान् पं हरनाथजी द्विवेदी एवं अनुक्रमणिका तैयार करने में न्याय-ज्योतिषतीर्थ श्रीयुत पं० नेमिचन्द्रजी से मुझे पर्याप्त सहायता मिली है। अत उन्हें भी मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

आषाढ शु० १५ वीर सं २४६८

—के० भुजबली शास्त्री

---

1—'प्रशस्ति-संग्रह' पृष्ठ ११०—१२ ।

## इस 'प्रशस्ति-संग्रह' में सम्मिलित ग्रन्थों की वर्णानुक्रम सूची

# इस 'प्रशस्ति-संग्रह' में सम्मिलित ग्रन्थरचयिताओं की वर्णानुक्रम सूची

# प्रशस्ति-संग्रह

(१) ग्रन्थ नं० १९६/ख

## न्याय-मणिदीपिका

कर्त्ता—

विषय—न्याय

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ३ इञ्च चौडाई ७ इञ्च पत्रसंख्या १९६

### मंगलाचरण

श्रीवर्द्धमानमकलङ्कमनन्तवीर्यमाणिक्यनन्दियतिभाषितशास्त्रवृत्तिम् ।
भक्त्या प्रभेन्दुरचितालघुवृत्तिदृष्ट्या नत्वा यथाविधि वृणोमि लघुप्रपञ्चम् ॥

मदज्ञानमकुर्वीत मलमत्र यदि स्थितम् ।
तन्निष्काश्योर्मिवत्सन्त प्रवर्त्तन्तामिहाब्धिवत् ॥२॥

इह हि खलु सकलकलङ्कविकलकेवलावलोकनविमललोचनावलोकितलोकालोकपरमगुरुवीरजिनेश्वररुचिरमुखसरसीरुहसमुत्पन्नसरस्वतीसरसानवरतस्मरणावलोकनसल्लापदत्तचित्तवृत्तिः सकलराजाधिराजपरमेश्वरस्य हिमशीतलस्य महाराजस्य महास्थानमध्ये निष्ठुरकण्ठगर्वसौष्ठवदुष्टसौगतान् चटुलघटवावाद्रिपटिष्ठतया तारादेवताधिष्ठितदुर्घटघटवादविजयेन राज्ञा सभ्यैः सभासद्भिश्च परिप्राप्तजयप्रशस्ति सकलतार्किकचूडामणिमरीचिमेचकितरुचिरुचिरचरणनखरो भगवान् भट्टाकलंकदेवो विश्वविद्वन्मण्डलहृद्यान्यायविनिश्चययुक्तिशास्त्रेण जगत्सद्धर्मप्रभावमवबुधत्तमाम । तदनु बालाननुजिघृक्षुरक्षयगुणोऽक्षुण्णमौक्तिलक्ष्मीकटाक्षविक्षेपनिधानपरीक्षावक्षो गुणमणिवृन्देन भव्यवृन्दमानन्दयन्माणिक्यनन्दिमुनिवृन्दारकस्तत्प्रकाशितशास्त्रमहोदधेरुद्धृत्य तदवगाहनाय पोतोपमं परीक्षामुखनामधेयमन्वर्थमुद्वहत्प्रकरणमारचयन्मुदा तदनु तत्प्रकरणस्य विशिष्टतमोऽतिस्पष्ट मृष्टेणी प्रभाचन्द्रभट्टारक प्रमेयकमलमार्त्तण्डनाम बृहद्वृत्ति चरीकरीतिस्म । तद्वृत्तिग्रन्थस्य,

मार्तण्डमण्डलायितत्वेन सकलविद्वच्चित्तप्रकाशकत्वेऽपि बालान्तःकरणगुहाभ्यन्तरप्रकाशन सामर्थ्याभावमाकलय्य तत्प्रकाशनाय दीपिकायितां सकलत्रैलोक्यालङ्कारयोग्यत्वतो रत्नायितप्रमेयैरारचितत्वेन प्रमेयरत्नमालेत्यन्वर्थनामोद्वहन्तीं स्वालोकनप्रवृत्तिमतां पुंसां क्रोडे करतलघटप्रदादिवस्तुप्रतिबिम्बितरत्नकण्ठिकायितत्वेन वा स्वाभिधेयानि प्रमेयाणि प्रकाशयन्तीं लघ्वीं वृत्तिं लघ्वनन्तवीर्याचार्यवर्यो भव्यानुग्रहकार्यसौकर्यसूक्तिसौकुमार्यो गुण-गाम्भीर्यशाली वैजेयप्रियसूनुना हीरपाख्यवैश्योत्तमेन बदरीपालवंशद्युमणिना शान्तिषेणाध्यापनाभिलाषिणा प्रेरितः सन् प्रारिप्सुः तदादौ चिकीर्षितस्याविघ्नेन परिसमाप्त्यर्थ शिष्टाचारपरिपालनार्थं पुण्यावाप्त्यर्थञ्च विशिष्टेष्टदेवताभिष्टौति ।

*मध्य भाग (पूर्व पत्र ६४ पंक्ति १)—*

इत्यसिधानादिति प्रकाश्य प्रकारान्तरेण तद्गुतानायोग दर्शयितुं तावदभावप्रमाण प्रतिपादककारिकामाह 'गृहीत्वेति' वस्तुसद्भाव गृहीत्वेत्यादिसामग्र्या सर्वज्ञाभावग्राहक मभावप्रमाणमसर्वज्ञस्य नोदेति इत्याह । तथाचेत्यपरथा प्रतिनियतकालप्रतिनियतदेश लक्षणवस्तुसद्भावग्रहणेऽन्यत्रान्यदा गृहीतसर्वज्ञस्मृतिश्चेति रीत्यसर्वज्ञनास्तिताज्ञानमभाव प्रमाण न युक्तमन्यत्रान्यदा गृहीतसर्वज्ञसत्त्वप्रसङ्गात् ।

*अन्तिम भाग—*

> अकलङ्करजनन्दिप्रभेन्दुसदनन्तगुणिभक्त्या ।
> पत्रकृतिका बालोर्मिकलधारि से (?) च किल गुरुभक्त्या ॥
> स्याद्वादनीतिकान्तामुखलोकनमुख्यसौख्यमिच्छन्त ।
> न्यायमणिदीपिका ह्यासागरं प्रवर्तयन्तु बुधा ॥

इति परीक्षामुखलघुवृत्तेः प्रमेयरत्नमालानामधेयप्रसिद्धायाः न्यायमणिदीपिकाख्यायां टीकायां षष्ठः परिच्छेदः ।

शास्त्र के प्रतिलिपि कर्ता के नामादि—

*श्रीमत्स्वर्गीयबाबूदेवकुमारस्यात्मजदानवीरबाबूनिर्मलकुमारस्यादेशमादाय आगरा-प्रान्तगतसकरौलीनिवासिनः रेवतीलालस्यात्मजराजकुमाराविद्यार्थिना लिखितमिदं शास्त्रम् ।*

*इदं लक्ष्मणभट्टेन विलिखितं प्रथमं शास्त्रं लक्षीकृत्य लिखितम् । संशोधयितव्या विद्वज्जनैः । प्रतिलिपिकाल—सं० १९८० श्रावण-शुक्ल-त्रयोदशी ।*

इसमें तो ग्रन्थकर्ता के नाम का उल्लेख नहीं है । किन्तु मित्रवर पं० शुभव्य जी शास्त्री का कथन है कि ताड़पत्र की किसी प्रति में इस न्यायमणिदीपिका के रचयिता अजितसेना

चार्य स्पष्ट लिखा हुआ है। बल्कि प० सुब्बय्य जी का यह कथन—'Catalogue of Sanskrit and Prakrita Manuscripts in the Central Provinces and Berar by R B Hira Lal B A (Appendix B)' से भी प्रमाणित हो जाता है। फिर भी जैनइतिहासान्वेषी इस ओर अवश्य ध्यान देंगे। जैन-सिद्धान्त-भवन की इस प्रति के अत्यन्त अशुद्ध होने के कारण इसके साहित्यिक विवेचन पर विशेष प्रकाश नहीं डाला जा सकता। तो भी यह कहना ही पड़ेगा कि इसकी संस्कृत सरल एवं प्रशस्त है।

न० $\frac{६०}{ख}$ की एक दूसरी प्रति भी 'भवन' में है जिसकी वर्तमान ग्रन्थ प्रतिलिपिमात्र है। वस्तुतः दोनों प्रतियाँ अशुद्ध हैं। पहली प्रति की नकल कन्नडप्रति से उल्लिखित मूडबिद्रि-निवासी वामन भट्ट के पुत्र लक्ष्मण भट्ट ने की है।

---

(२) ग्रन्थ नं० $\frac{१९५}{ख}$

# चन्द्रप्रभचरित-व्याख्यान अपर नाम—विद्वन्मनोवल्लभ

कर्ता—

---

विषय—काव्य

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३॥ इञ्च चौड़ाई ८॥ इञ्च पत्रसंख्या ३०६

---

## मङ्गलाचरण

वन्देऽहं सहजानन्दकन्दलीकन्दवन्धुरम्।
चन्द्राङ्कं चन्द्रसंकाशं चन्द्रनाथं स्मराम्यहम् ॥१॥
चन्द्रप्रभार्हधीरस्य काव्यं व्याख्यायते मया।
विश्वमन्वयरूपेण स्पष्टसंस्कृतभाषया ॥२॥

× × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ६६, श्लोकटीका १२)—

गुरुवंशमिति। अथ प्रस्थानानन्तरं। गजेन्द्रगामी गजेन्द्र इव गच्छतीत्येवं शील मन्द-गामीत्यर्थ। स कुमार। गुरुवंशम् गुरव महान्त. वंशा वेणव यस्मिन् त पक्षे गुरुर्महान्

वंश कुलं यस्य तम् । अप्रमायासत्वम् अप्रमायया प्रमायारहिता सत्वा प्राणिनः यस्मिन् तं पक्षे बहुलसामर्थ्यम् । अत्युन्नतशालिनीम् अत्युन्नत्या शालिनीम् । सम्पूर्णस्थिति व्यवस्थिति पक्षे मर्यादां । दधाम धरन्त । रुचिराकृति रुचिरा आकृतिर्यस्य तं । एकं । स्वसमानं स्वस्य समानं । नगं पर्वतं । आलुलोके ददर्श लोकृञ् दर्शने लिट् । श्लेषोपमा ।

× × × × ×

*अन्तिम भाग—*

इति वीरनन्दिकृतावुदयाङ्के चन्द्रप्रभचरिते महाकाव्ये तद्व्याख्याने च विद्वन्मनोवल्लभाख्ये अष्टादशः सर्गः समाप्तः ।

चन्द्रप्रभचरित की दो टीकायें उपलब्ध हैं। एक चारुकीर्तिकृत और दूसरी भट्टारक प्रभाचन्द्रकृत। भट्टारक प्रभाचन्द्र का समय वि० सं० १३१६ और चारुकीर्ति का समय शकाब्द १३२१ के बाद का अनुमित होता है। चारुकीर्ति जी का यह समय तभी सम्भवपरक कहा जा सकता है, जब कि यही पार्श्वाभ्युदय के भी टीकाकार हों। चारुकीर्तिकृत चन्द्रप्रभकाव्य की टीका की श्लोकसंख्या छः हजार मानी गयी है। 'भवन' की इस प्रति में भी लगभग छः हजार श्लोकसंख्या अनुमित होती है। अतः यह कहा जा सकता है कि चारुकीर्ति जी की ही यह टीका है।

ज्ञात होता है कि टीकाकार ने इस टीका में व्याकरण, अलंकार एवं कोषादि की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है।

पार्श्वाभ्युदय के टीकाकार चारुकीर्ति जी की निम्नलिखित कृतियों का पता लगता है :—

(१) चन्द्रप्रभकाव्य की टीका श्लोक संख्या—६००० 
(२) आदिपुराण „ ३००० 
(३) यशोधरचरित 
(४) नेमिनिर्वाणकाव्य की टीका 
(५) पार्श्वाभ्युदयकाव्य की टीका 
(६) गीतवीतराग

(३) ग्रन्थ नं० १९८/ख

# हनुमच्चरित्र

कर्ता—अजित ब्रह्मचारी

विषय—चरित्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ११ इञ्च   चौडाई ७ इञ्च   पत्रसंख्या ६७

## मंगलाचरण

सद्बोधसिन्धुचन्द्राय सुव्रताय जिनेशिने ।
सुव्रताय नमो नित्यं धर्मशर्मार्थसिद्धये ॥१॥
वृषभाय जिनेन्द्राय वृषाय परमेष्ठिने ।
नित्यं स्वान्यप्रकाशाय नमो नाभिसुताय ते ॥२॥
नम श्रीचन्द्रनाथाय सर्वज्ञाय शिवाप्तये ।
अमन्दशर्मकन्दाय कन्दाय परमात्मने ॥३॥
शान्ति कुर्यादनेकान्तबुद्धि सिद्धचर्थदायिनीम् ।
अस्मात्तत्क्षीरजलधिमन्थने मन्दराचलः ॥४॥
श्रीमते वर्द्धमानाय नमः श्रेयोविधायिने ।
अघात्यरातिघाताय मुक्तिमार्गप्रदायिने ॥५॥
दुर्वारापारसंसारपारावारैकतारकान् ।
प्रणौमि परितो नित्यमपरान् जिननायकान् ॥६॥
सार्द्धद्वयमिते द्वीपे सर्वान्तर्कविवर्जिते ।
सीमन्धरादिदेवानां पादपद्मान् प्रणौम्यहम् ॥७॥
वर्त्तन्ते भाविनोऽतीता विबुधालिप्रपूजिता ।
नौमि सर्वान् जिनान् जैनमतसिन्धुविधून् सदा ॥८॥
आचाराङ्गादिभेदेन पूर्वान्तांश्च प्रकीर्णकान् ।
निर्गतां जिनसद्वक्त्रात् सारदां नौमि शारदाम् ॥९॥
यस्याः प्रसादत सर्वो वितीर्य श्रुतसागरम् ।

परमाप्नोति भावानां तां प्रणौमि जिनास्यजाम् ॥१०॥
त्रिहीननवकोटीनां मुनीनां पादपंकजान् ।
स्मरामि स्मरजेतॄणां त्रातॄणां भववारिधेः ॥११॥
नमामि वृषसेनादिगौतमान्तान् गणेश्वरान् ।
सार्द्धांश्चतुर्दशशतान् अधिकान् श्रीसुखप्रदान् ॥१२॥
गौतमः श्रीसुधर्मा च जम्बाख्यमुनिकेवली ।
त्रयः केवलिनः पूज्या नो नित्यं सन्तु सिद्धये ॥१३॥
श्रीविष्णुनन्दिमित्राख्योऽपराजितमहातपाः ।
गोवर्द्धनो भद्रबाहुः पञ्चैतान् श्रुतसागरान् ॥१४॥
द्वादशांगश्रुताभ्यासनीरेणाक्षालितैनसः कान् ।
प्रणौम्यहं त्रिशुद्धया तान् पञ्चपापविहत्यहेतवे ॥१५॥
स्तुवे समयसारस्य कर्त्तारं सूरिपदेश्वरः ।
श्रीमच्छ्रीकुन्दकुन्दाख्यस्तनोतु मतिमेदुराम् ॥१६॥
पुराणपद्धतिर्यस्य हृदये प्रस्फुटं गता ।
प्रणौमि जिनसेनस्य चरणौ शरणं सताम् ॥१७॥
जीयात्समन्तभद्रोऽसौ भव्यकैरवचन्द्रमाः ।
दुर्वादिवादकण्डूनां शमनैकमहौषधिः ॥१८॥
अकलङ्कगुरुर्जीयादकलंकपदेश्वरः ।
बौद्धानां बुद्धिवैधव्यदीक्षागुरुरुदाहृतः ॥१९॥
शुद्धसिद्धान्तपाथोधिपारीणः परमेश्वरः ।
नेमिचन्द्रश्चिदानन्दपदवीमुख्यतां मतः ॥२०॥
प्रभा गुणवती यस्य प्रभाचन्द्रस्य सूरिणः ।
सोऽस्तु मे बुद्धिसिद्ध्यर्थं कारणमविरसालयः ॥२१॥
पञ्चाचाररता येऽन्ये सूरयः संस्तुता बुधैः ।
ते मे दिशन्तु सन्मेधां पद्मनन्दीश्वरादयः ॥२२॥
मङ्गलार्थमिति संस्तुत्य मया भावेन सत्स्तुताः ।
श्रीहनुमत्कुमारस्य कथायाः सिद्धये पुनः ॥२३॥

× × ×

*मध्य भाग —(पृष्ठ ३१ श्लोक १६)*

इत्युक्तं केनचित्तावत्कुमाराय जितद्विषे ।
भंजनाप्रभवं वृत्तं सर्वं कालविषोपमम् ॥१६॥

मित्रागच्छ वयं यामो महेन्द्रपुरभेदने ।
अञ्जना मे स्थिता तत्र चित्तचोरणतस्करी ॥१७॥
स्वमित्रेण समं वायुरचलत् श्वासुरं पुरम् ।
स्वात्मीयं गजमारुह्य वञ्चितः स्वजनैस्तदा ॥१८॥
संप्राप्तो नगरीबाह्यं हर्षसंभृतमानसः ।
प्रियाङ्कमिव संप्राप्तो दृष्ट्वा पुरवरं तदा ॥१९॥
प्रभञ्जनकुमारस्यागमनं श्रुत्वा महीपतिः ।
पुरश्रृङ्गारमकरोत वैजयन्त्यादितोरणैः ॥२०॥

*अन्तिम भाग—*

जैनेन्द्रशासनसुधारसपानपुष्टो देवेन्द्रकीर्तियतिनायकनैष्ठिकात्मा ।
तच्छिष्यसंयमधरेण चरित्रमेतत् सृष्टं समीरणसुतस्य महर्द्धिकस्य ॥९१॥
विशदशीलस्वर्धुनोशिलातलैकराजहससोत्सवाय क्रीडनप्रिय
स्वमतसिन्धुवर्द्धने प्रकृष्टयामिनोतपनतेजसाद्भुतप्रभामितः ।
सुरेन्द्रकीर्तिविद्ययादिनन्यनगमर्दनैकपण्डित कलाधर
तदीयदेशनामवाप्य शुद्धबोधमाश्रितो जितेन्द्रियस्य भक्तितः ॥२॥
गोलाशृंगारवंशे नभसि दिनमणिर्वीरसिंहो विपश्चित्
भार्या बीधा प्रतीतातनुरुहविदितो ब्रह्मदीक्षाश्रितोऽभूद् ।
तेनोच्चैरेष ग्रन्थः कृत इति सुतरां शैलराजस्य सूरे
श्रीविद्यानन्दिदेशात् सुकृतविधिवशात्सर्वसिद्धिप्रसिद्धयै ॥९३॥
इदं श्रीशैलराजस्य चरितं दुरितापहम् ।
रचितं भृगुकच्छे च श्रीनेमिजिनमन्दिरे ॥९४॥
धर्मार्थी लभते वृषं धनयुतो वृद्धिश्च निःस्वो धनम्
पुत्रार्थी स्वकुलोचितं च तनयं कामांश्च कामो लभेत्
मोक्षार्थी परमोत्तमाशु लभते प्रोक्तेन सान्द्रेण किम्
ह्येतत् शैलमुनीन्द्रराजचरितं सर्वार्थसिद्धिप्रदम् ॥९५॥
पठिता पाठकश्चैव वक्ता श्रोता च भावुकः ।
चिरं नन्द्यादयं ग्रन्थस्तेन सार्द्धं युगावधिः ॥९६॥
प्रमाणमस्य ग्रन्थस्य द्विसहस्रमितं बुधैः ।
श्लोकानामिह मन्तव्यं हनुमच्चरिते शुभे ॥९७॥

इतिश्रीहनुमच्चरित्रे ब्रह्मजितविरचिते एकादश सर्गः ।

इसके लिपिकर्त्ता काशीनिवासी बटुक प्रसाद नाम के एक कायस्थ हैं। लिपिकाल सं० १९७८ है।

इस प्रति के अतिरिक्त 'भवन' में बहुत प्राचीन $\frac{१६०}{ख}$ नम्बर वाली दूसरी प्रति भी है। खेद के साथ यह कहना पड़ता है कि ये दोनों प्रतियाँ अशुद्धियों से भरी हुई हैं। बल्कि इसी प्राचीन प्रति से प्रस्तुत प्रति उतारी गयी है।

इसकी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके कर्त्ता अजित ब्रह्मचारी देवेन्द्रकीर्त्ति जी के शिष्य थे। इनके पिता का नाम वीरसिंह और माता का वीघा था। इनके वंश का नाम गोलश्रृङ्गार है। विद्यानन्दजी की आज्ञानुसार ही इन्होंने भृगुकच्छ (भरोंच) नगर में इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था। ग्रन्थ-रचनाकाल प्रशस्ति में नहीं दिया गया। पं० जुगलकिशोर जी की राय है कि यह अजित ब्रह्मचारी १६वीं शताब्दी में हुए हैं।

---

(४) ग्रन्थ नं० $\frac{२०४}{ख}$

## विद्यानुवादांग (जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय)

कर्त्ता—

---

विषय—प्रतिष्ठापाठ
भाषा—संस्कृत

लम्बाई १४ इञ्च | चौड़ाई ४॥ इञ्च | पत्रसंख्या १३१

---

### मंगलाचरण

लक्ष्मीं दिशतु वो यस्य ज्ञानादर्शे जगत्त्रयम्।
व्यक्तोपि स जिनः श्रीमानाभेयो नौरिवाम्बुधौ ॥१॥
माङ्गल्यमुत्तमं जीयाच्छरण्यं यन्मनोहरम्।
निरहस्यमरिघ्नं तत्पञ्चब्रह्मात्मकं महः ॥२॥
दोषसन्तापशमनीर्वाग्ज्योत्स्ना जिनचन्द्रजाः।
वर्धयन्ती भव्याम्भोधिं स्वान्तं ध्वान्तं धुनोतु नः ॥३॥
मोक्षलक्ष्म्याः कृतं कण्ठहारनायकरत्नताम्।
रत्नत्रयं मम सम्यग्दृग्ज्ञानाचारलक्षणम् ॥४॥

स्याद्वादाकाशपूर्णेन्दुर्भव्याम्भोजभानुमान् ।
दयागुणसुधाम्भोधिर्धर्मः पायाज्जिनार्हताम् ॥५॥
अहिंसासूनृतास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा ।
सर्वपापप्रशमनं वर्द्धतां जिनशासनम् ॥६॥
पञ्चकल्याणसम्पूर्णाः पञ्चमज्ञानभासुराः ।
नः पञ्च गुरवः पान्तु पञ्चमीगतिसाधकाः ॥७॥
वृषभादीनिह वर्द्धमानान्तान् जिनपुङ्गवान् ।
चतुर्विंशतितीर्थेशान् स्तुवे त्रैलोक्यपूजितान् ॥८॥
वन्दे वृषभसेनादिगणिनो गौतमान्तिमान् ।
श्रुतकेवलिनः सूरीन् मूलोत्तरगुणान्वितान् ॥९॥
अनुयोगचतुष्कादिजिनागमविशारदान् ।
जातरूपधरान्नौम्ये यतिवृन्दारकान् गुरून् ॥१०॥
अर्हदादीनभीष्टार्थसिद्ध्यर्थं शुद्धित्रयान्वितः ।
इत्यनन्तगुणोपेतान् ध्यात्वा स्तुत्वा प्रणम्य च ॥११॥
श्रीमत्समन्तभद्रादिगुरुपर्वक्रमागतम् ।
शास्त्रावतारसम्बन्धं प्रथमं प्रतिपाद्यते ॥१२॥
पुरा वृषभसेनेन गणिना वृषभार्हतः ।
अनगारोऽभ्यधारयेतत् भरतेश्वरचक्रिणे ॥१३॥
ततोऽजितजिनेन्द्रादितीर्थकृद्भ्योऽवधार्यताम् ।
तत्तद्गणधरास्तत्र धार्मिकाणामिहाब्रुवन् ॥१४॥
ततः श्रीवर्द्धमानार्हद्गिरमाकर्ण्य गौतमः ।
राज्ञे लोकोपकारार्थं श्रेणिकायाब्रवीद् गणी ॥१५॥
तस्माद्गुणभृदाचार्यादनुक्रमसमागतः ।
नाम्ना जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदयोऽयमिहोच्यते ॥१६॥
सेनवीरसुवीर्यभद्रसमाख्यया मुनिपुङ्गवा
नन्दिचन्द्रसुकीर्त्तिभूषणसंज्ञया ऋषिसत्तमाः ।
सिंहसागरकुम्भ(?)आस्रवनामभिर्यतिनायकाः ।
देवनागसुदत्ततुङ्गसमाह्वयैर्मुनयोऽभवन् ॥१७॥
तेभ्यो नमस्कृत्य मया मुनिभ्यः
शास्त्रोदधेः सूक्तिमणींश्च लब्ध्वा ।

द्वारं विरच्यायजनोपयोग्यं
जिनेन्द्रकल्याणविधिर्व्यधायि ॥१८॥
वीराचार्यसुपूज्यपादजिनसेनाचार्यसंभाषितो
यः पूर्वं गुणभद्रसूरिवसुनन्दीन्द्रादिनन्द्यूर्जितः ।
यश्चाशाधरहस्तिमल्लकथितो यश्चैकसंधीरितः
तेभ्यस्स्वाहृतसारमा (?) मरचितः स्याज्जैनपूजाक्रमः ॥१९॥
तर्कव्याकरणागमादिलहरीपूर्णश्रुताम्भोनिधेः ।
स्याद्वादाम्बरभास्करस्य धरसेनाचार्यवर्यस्य च
शिष्येणाल्पकोविदेन रचितः कौमारसेनेमुने (?) ।
ग्रन्थोऽयं जयताज्जगत्त्रयगुरोर्बिम्बप्रतिष्ठाविधि ॥२०॥
पूर्वस्मात् परमागमात्समुचितान्यादाय पद्यान्यहम् ।
तन्मे प्रस्तुतसिद्धयेऽत्र विजिज्ञाम्येतन्मरोपायतत् (?)
कल्याणेषु विभूषणानि धनिकाद्दानीय निष्किञ्चन ।
शोभार्थं स्वतनु न भूषयति किं सा राजते नास्य तैः ॥२१॥
जिनेन्द्रवाणीमुनिसंघभक्त्या जिनेन्द्रकल्याणनुतिं प्रणीय
जिनेन्द्रपूजां रचयन्ति येऽमी जिनेन्द्रसिद्धश्रियमाश्रयन्ति ॥२२॥

*मध्यभाग (४६ पृष्ठ ७ पंक्ति)*

अतिनुतसलिलैश्चन्दनैरक्षतौघैर्वरकुसुमनैवेद्यैर्दीपधूपैः फलैश्च ।
जिनपतिपदपद्मं योऽर्चयेद्वन्दनीयम् स भवति भुवनेशो मोक्षलक्ष्मीनिवासः ॥

ॐ ह्रीं नमो ध्यातृभिरभीप्सितेभ्यः स्वाहा
नमः पुरुजिनेन्द्राय नमोऽजितजिनेशिने ।
नमः संभवनाथाय नमोऽभिनन्दनार्हते ॥
नमः सुमतये तुभ्यं नमः पद्मप्रभाय च ।
नमः सुपार्श्वदेवाय नमश्चन्द्रप्रभाय ते ॥

*अंतिम पद्य —*

तिथिरेकगुणा प्रोक्ता नक्षत्रं द्विगुणं भवेत् ।
लग्नन्तु त्रिगुणं तेषां शुभाशुभफलं भवेत्

× × ×

ग्रन्थकर्त्ता के मंगलाचरणगत १६वें श्लोक में यह ज्ञात होता है कि वीराचार्य, पूज्यपाद, जिनसेन, गुणभद्र, वसुनन्दी, इन्द्रनन्दी, आशाधर और हस्तिमल्ल इन आठ साहित्यिकरत्नों ने प्रतिष्ठा-ग्रन्थ लिखे हैं। और इन्हीं के आधार पर आर्यप या अप्पयार्य ने इस विद्यानुवादाङ्ग प्रतिष्ठा-ग्रन्थ की रचना की है। किन्तु इस समय उल्लिखित इन प्रतिष्ठाग्रन्थ प्रणेताओं के सभी ग्रन्थ प्रायः उपलब्ध नहीं होते। इसके २०वें श्लोक में यह भी विदित होता है कि इस ग्रन्थ के रचयिता धरसेनाचार्य और कुमारसेन मुनि को अपना गुरु मानते थे। इन्होंने इन्हें तर्क व्याकरण एवं सभी आगमों का मर्मज्ञ भी लिखा है। इसी श्लोक में "कौमारसेनेर्मुने" यह पद जो मिलता है, वह व्याकरण की दृष्टि से चिन्तनीय है। क्योंकि नियमानुसार "कौमारसेनस्य" होना चाहिये था। किन्तु इस शुद्धरूप की प्रयुक्ति से छन्दोभंग हो जाता है। यह प्रति बहुत अशुद्ध है, अतः जिन महाशयों के पास इसकी दूसरी कोई प्रति हो वे उससे इसका मिलान कर इस सन्दिग्ध बात पर प्रकाश डालें। सम्भव है कि दूसरी प्रति शुद्ध हो।

भवन की इस प्रति में तो प्रशस्ति नहीं है। किन्तु "Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts in the Central Provinces & Berar" में—जिसका सम्पादन राय बहादुर हीरालालजी ने किया है उसमें आर्यप या अप्पयार्य का संक्षिप्त परिचय प्रदर्शन-पूर्वक कारंजा शास्त्रभाण्डार से प्राप्त प्रति से निम्न लिखित प्रशस्ति उद्धृत की है—

शाकाब्दे विधुवेदनेत्रहिमगे (?) सिद्धार्थसंवत्सरे<br>
माघे मासि विशुद्धपक्षदशमीपुष्यार्कवारेऽहनि।<br>
ग्रन्थो रुद्रकुमारराज्यविषये जैनेन्द्रकल्याणभाक्<br>
सम्पूर्णोऽभवदेकशैलनगरे श्रीपालवन्धूर्जितः॥

इति श्रीसकलतार्किकचक्रवर्त्तिश्रीसमन्तभद्रमुनीश्वरप्रभृतिकविवृन्दारकवन्द्यमानसरोचरराजहंसायमानभगवदर्हत्प्रतिमाभिषेकविशेषविशिष्टगन्धोदकपवित्रीकृतोत्तमाङ्गेनाप्पयार्येण श्रीपुष्पसेनाचार्योपदेशक्रमेण सम्यग्विचार्य पूर्वशास्त्रेभ्यः सारमुद्धृत्य विरचितः श्रीजिनेन्द्रकल्याणाभ्युदयापरनामधेयस्त्रिदशाभ्युदयोऽर्हत्प्रतिष्ठाग्रन्थः समाप्तः॥

इस प्रशस्ति से यही बात ज्ञात होती है कि अप्पयार्य ने सिद्धार्थ नामक संवत्सर १२४१ माघ शुक्ल दशमी रविवार एवं पुष्य नक्षत्र में पुष्पसेनाचार्य के आदेश से रुद्रकुमार के राज्य में एकशैलनामक नगर में यह ग्रन्थ लिखकर समाप्त किया है। उल्लिखित समय खृष्ट शक २०वीं जनवरी १३२० A. D होता है। न मालूम किस आधार पर हीरालालजी ने अपने सम्पादित कैटलग में अप्पयार्य को पुष्पसेन का शिष्य लिखा है। ज्ञात होता है कि

मंगलाचरण का ११वाँ श्लोक आपकी नजरों से नहीं गुजरा है। क्योंकि पुष्पसेन तो प्रेरक ही मालूम होते हैं।

उक्त यह एकशैल वर्त्तमान वरंगल का प्राचीन नाम है[1]। वरंगल के और भी कई नाम हैं[2]। यह प्राचीन तैलंग की राजधानी थी[3]। काकतेयों ने इस पर ईस्वी सन् १११० से १३२३ ईस्वी तक राज्य किया है। इसी वंश में राजा रुद्रदेव हुए हैं[4]। इनकी यहीं राजधानी थी। मालूम होता है राजा रुद्रदेव इस वंश के अन्तिम राजा थे, क्योंकि इस प्रशस्ति से पता चलता है कि इस ग्रन्थ की रचना ईस्वी सन् १३२० में हुई है और उस समय रुद्रदेव ही शासन कर रहे थे।

प्रशस्तिगत धरसेन कुमारसेन पुष्पसेन श्रीपाल। इन विद्वानों के सम्बन्ध में मेरा इस समय कुछ भी विशेष वक्तव्य नहीं है। क्योंकि श्रवणबेलगोल के कतिपय शिलालेखों में धरसेन जी को छोड़कर शेष तीन नाम उपलब्ध होते हैं अवश्य, परन्तु इनमें से कुछ शिलालेखों में तो इनका समय ही नहीं दिया गया है। जिन लेखों में समय दिया गया है, वह भी 'अय्पपार्य' के समय से मेल नहीं खाता। दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ" में आये हुए इन उल्लिखित नामवाले ग्रन्थकर्त्ताओं की कृतियों को देखने से संभवत इनका विशेष परिचय मिल सकता है।

---

१ हिन्दी विश्वकोष भाग ३ पृष्ठ ७११ और List of the Antiquarian Remains in the Nizam s Territories By cousens Another name of Warrangal × × is Akshalingar which in the opinion of Mr consens is the same yekshilangara "

—The Geographical Dictionary of Ancient & Mediaeval India By Nandoo Lal Dey P 8

२ अनुमकुन्दपुर, अनुमकुन्दपट्टन कोरकोल (of Ptolemy) वेगाकरक, एकशिलनगर आदि।
(The Geographical Dictionary P 263.)

३ रुद्रदेव का शिलालेख JASB 1838 P 903 साथ ही Prof Wilson s Mackenzie collection P 76

४ The Geographical Dictionary P 8

५ 'वरंगल के काकतीय वंशी एक राजा × × ×। हिन्दी विश्वकोष भाग १२, पृष्ठ ९१७

नोट—विश्वकोषकार ने संख्या ३ देकर इनके सिवा एक और का भी उल्लेख किया है। "एक हिन्दू राजा थे तैलंगाधिपति थे" सम्भवत यह विश्वकोष-कार के तैलंग और वरंगल इन दोनों को दो भिन्न स्थान समझने की भूल है।

(५) ग्रन्थ नं० $\frac{२०५}{ख}$

# निदान-मुक्तावली

कर्त्ता—पूज्यपाद (?)

---

विषय—वैद्यक

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—१३। इञ्च चौडाई—८। इञ्च पत्रसंख्या—६

---

## मङ्गलाचरण

(अभाव)

*प्रथम श्लोक—*

रिष्टं दोषं प्रवक्ष्यामि सर्वशास्त्रेषु सम्मतम्।
सर्वप्राणिहितं दृष्ट कालारिष्टश्च निर्णयम् ॥१॥

*मध्य भाग (पृष्ठ ४ पंक्ति ११)*

पीत्वा जलं यस्य न याति तृष्णा भुक्त्वा भृशं न क्षुदपैति यस्य।
शक्तिक्षये वाथ सुवर्णनासा मासेऽष्टमे तस्य हि कालमृत्युः ॥
खण्डं भवेद्यस्य पदं कदाचित् पङ्काङ्किते वा भुवि पांसुलेपात्।
ते सप्तकं (?) मासि विहाय सर्वं प्रयाति याम्यं सदनं मनुष्यः ॥

*अन्तिम भाग—*

गुरौ मैत्रं देवेऽप्यगदनिकरैर्नास्ति भजनम् तथाप्येवं विद्या अतिनिगदिता शास्त्रनिपुणैः।
अरिष्टं प्रत्यक्षं शुभवमनुमारूढशुभगम् विचार्य्यन्तच्छ्वन्निपुणमतिभिः कर्मणि सदा ॥
विज्ञाय यो नरः काललक्षणैरेवमादिभिः। न भूयो मृत्यवे यस्माच्छिन्नात्कर्म समाचरेत् ॥

इति पूज्यपादविरचितायां स्वस्थारिष्टनिदानं समाप्तम्।

× × ×

इसमें दो ही निदान हैं—(१) कालारिष्ट और (२) स्वस्थारिष्ट।

इस ग्रन्थ की प्रति मद्रास राजकीय पुस्तकालय में संगृहीत ग्रन्थ की प्रति से करायी गयी है।

इस ग्रन्थ के पद्यों में पूज्यपादजी का नाम कहीं नहीं मिलता। किन्तु मूल प्रति में प्रकरणसमाप्ति सूचक वाक्य पूज्यपादकृत लिखा रहने के कारण प्रतिलिपि-कर्त्ता लेखक को भी 'पूज्यपादकृत' ज्यों का त्यों लिख देना अनिवार्य था। अस्तु इस ग्रन्थ के विषय और संस्कृत रचना की ओर ध्यान देने से सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थों के निर्माता प्रातः स्मरणीय हमारे प्रख्यात पूज्यपादजी को इस ग्रन्थ के रचयिता मानने में मन हिच किचाता है। सम्भव है कि यह कृति किसी दूसरे पूज्यपाद जी की हो। इस सन्देहास्पद विषय को हल करने के लिये और और प्रतियों की जरूरत है। आशा है कि अन्यान्य पण्डित मण्डली भी इसकी ओर ध्यान देगी।

---

(६) ग्रन्थ नं० २०६/ख

# मदनकामरत्नम्

कर्त्ता—पूज्यपाद (?)

विषय—वैद्यक

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२॥ इञ्च　　चौड़ाई ८। इञ्च　　पत्रसंख्या ६४

## मङ्गलाचरण

(अभाव)

*प्रारम्भिक भाग—*

महापूर्णचन्द्रोदय

मृतं सूतलोहाभ्ररौप्य समांशम्

मृतस्वर्णगन्धं (?)

ससर्व (?) विनिक्षिप्य खल्वे विमर्द्यस्तत रक्तपातैलोद्भवेन त्रिवारम् ॥१॥
ततः शाल्मलीसारनिर्यासगुञ्जां प्रयुञ्जीत तज्ज्ञः सुदुग्धानुपाने।
त्रिदोषत्तयं चापि हन्यात्परेषाम् (?) वयस्तम्भकारी गदोन्मादहारी ॥२॥
वधूगर्वहारी रतौ वृद्धिकारी कृशत्वापहारी कलापूर्णधारी
समस्तेषु योगेषु भूमौ विशेषात् प्रसिद्धो महापूर्णचन्द्रोदयोऽयम् ॥३॥

मध्यभाग—(पृष्ठ ३० पुष्पबाणरस )—

रसभस्म त्रिभागस्यादष्टभागं च गन्धकम् । चतुर्थं मौक्तिक वाट द्विभागा मौक्तिकी शिला ॥
तारमन्त्रकलोहानां वङ्गमाक्तिकनागयो । अयस्काम प्रवालाष्टौ तुल्यभाग प्रकल्पयेत् ॥

अन्तिम भाग—(पञ्चबाणरस )

सुवर्णं रजत कान्तं वैक्रान्त तीक्ष्णमन्त्रकम् । प्रवाल मुक्तमसित नागवङ्गञ्च भास्करम् ॥
एकैकसमभाग च सर्वतुल्य रसेन्द्रियम् । तत्सम शुद्धगन्धञ्च हंसपादीरसेन च ॥
कौमारीरससप्रोक्त मर्दितञ्च दिनत्रयम् । काचकुप्यन्तरे क्षिप्त्वा विलेप्य वस्त्रमृत्तिकाम् ॥
वालुकायन्त्रके पक्त्वा पञ्यामान्ते समुद्धरेत् । चूर्णीकृत तत खल्वे शतपत्ररसेन च ॥
दिनत्रयञ्च यत्नेन चाधिक सहभावनात् । कस्तूरिकां च कर्पूर भावयेत यथाविधि ॥
शाल्मलीकानि लात्वाथ गान्धारी सममर्दयेत् । वराचन्दनरुयुक्त कणाक्षौद्र सिताज्यकम् ।
विंशतिञ्च प्रमेहाणां राजयक्ष्माननेकश । शुक्रवृद्धिकरञ्चैव वन्ध्या च लभते सुतम् ॥
वन्ध्यनष्ट पुष्पनष्ट मसृग्दरम् । रक्तपित्त चाम्लपित्त अस्थिस्रावहलीमकम् ॥
अहन्येव रज स्त्रीणां भवन्ति प्रियदर्शनात् । वीर्यवृद्धिकरश्चैव नारीणां रमते शतम् ॥
पञ्चबाणरसो नाम पूज्यपादेन निर्मित ॥

× × ×

पूर्वोद्धृत 'निदानमुक्तावली' और यह वर्तमान 'मदनकामरत्नम्' दोनों ग्रन्थ प्रशस्ति नहीं रहने एव विषयविच्छेद नहीं होने से ज्ञात होता है कि अपूर्ण हैं। साथ ही साथ इन दोनों के रचयिता भी एकही पूज्यपाद मालूम होते हैं।

इस प्रस्तुत ग्रन्थ मदनकामरत्न को कामशास्त्र कहना अनुचित नहीं होगा। क्योंकि ६४ पृष्ठों मे से केवल १२ पृष्ठ तक तो महापूर्ण चन्द्रोदय, लोह, अग्निकुमार, ज्वरबलफणिगरुड, कालकूट, रत्नाकर उदयमार्त्तण्ड, सुवर्णमाल्य, प्रतापलकेश्वर राजेश्वर, बालसूर्योदय (दो प्रकार का) इन अन्यान्य ज्वरादि रोगों के विनाशक रसो का विवरण और कर्पूरगुण, मृगहार भेद, कस्तूरी भेद कस्तूरी गुण, कस्तूर्यनुपान और कस्तूरीपरीक्षा आदि हैं। बाकी जो ५२ पृष्ठ हैं वे कामदेव के जो पर्यायवाची शब्द हैं उन्हीं भिन्न भिन्न नामों से अङ्कित ३४ प्रकार के कामेश्वररसमय हैं। साथ ही वाजीकरण औषध, तैल, लिङ्ग-वर्द्धनलेप पुरुषवश्यकारी औषध स्त्रीवश्यभैषज मधुरस्वरकारी औषध और गुटिका-निर्माण-विधि भी है। कामसिद्धि के लिये छ मन्त्र भी आये हैं। उक्त दिग्दर्शन से स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ के सभी पृष्ठ कामविषयक विधिविधानों से ही भरे पड़े हैं।

यों तो यह सारा ग्रन्थ पद्यबद्ध है किन्तु एक जगह पञ्चबाण रस के पद्याङ्कित पद्य की संस्कृत गद्य मे व्याख्या कर दी गयी है।

(७) ग्रन्थ नं० २०७/ख

# जिनयज्ञफलोदयः

कर्त्ता—मुनि कल्याणकीर्त्ति

विषय—पूजाफलविवरण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२। इञ्च चौड़ाई ७।। इञ्च पत्रसंख्या ८६

## मङ्गलाचरण

सर्वज्ञं सर्वविद्यानां विधातारं जिनाधिपम् ।
हिरण्यगर्भं नाभेयं वन्देऽहं विबुधार्चितम् ॥१॥
अन्यानपि जिनान्नत्वा तथागणधरादिकान् ।
कथ्यते मुक्तिसम्प्राप्त्यै जिनयज्ञफलोदय ॥२॥
जीयाल्ललितकीर्त्तीशो मद्गुरुर्मुनिपुङ्गवः ।
देवचन्द्रमुनीन्द्राद्यौ कृपापालः प्रसन्नधीः ॥३॥
माद्दशोऽपि च पञ्चक्तिजिनयज्ञफलोदयः ।(१)
न तद्वित क्रमायातगुरुपर्वावलम्बनात् ॥४॥
कल्याणकीर्त्तिदेवस्य भारतीकविवेधसः ।
सतां चेतसि पीयूषधारां धत्ते निरन्तरम् ॥५॥
शुद्धिं प्रजाति विज्ञानं कीर्त्तिश्चपति निर्मला ।
प्रयाति दुरितं दूरं जिनयज्ञफलस्तुते ॥६॥

*मध्यभाग—(पृष्ठ ४१ श्लोक १६)*

जिनशासनमासाद्य ये सम्यक्त्वसमन्वितम् ।
सद्व्रतं नहि कुर्वन्ति म्लेच्छास्ते पशुभिः समाः ॥१६॥
दुर्गन्धिविग्रहाः क्रूराः सर्वलोकविरस्कृताः ।
कायपङ्गुविवर्णाङ्गाः मलिनच्छिद्रवाससः ॥२०॥
विरूपा विगतच्छाया धनबन्धुविवर्जिताः ।
लभन्ते यन्नरा दुःखं तत्फलं पापकर्मणः ॥२१॥

अन्तिम भाग—

श्रीमूलसंघे मुनिशीलतुंगे श्रीकौन्दकुन्दे वरसूरिवृन्दे ।
वंशे च देशीयगणे गुणाढ्ये महामतुच्छे वनपुस्तगच्छे ॥४११॥
आसीदसीमापनसोंगेपूर्वोऽवल्यम्बुराशिर्गुणरत्नराशिः ।
तस्मादभूच्चन्द्र इव व्रतीन्द्रः श्रीदेवकीर्त्तिर्जितमारमूर्त्तिः ॥४१२॥
सद्गोत्रजस्तदनुवृत्तरथाधिरूढः सच्छीलवाजिरखिलात्मसुखप्रवृत्तिः ।
दोषाकराक्रमणचारुकरप्रचारो हंसोऽप्यसौ ललितकीर्त्तिरभूद्वहंसः ॥४१३॥
श्रीललितकीर्त्तियतिमहदुदयगिरेरभवदागममयूख ।
कल्याणकीर्त्तिमुनिरविरखिलधरातलबोधनसमर्थः ॥४१४॥
केचित्काव्यकथाप्रथाकुशलिनः केचिच्च सिद्धान्तिनः ।
केचिद्व्याकरणप्रयोगनिपुणाः केचिन्नरास्तार्किकाः ॥
केचित्तीव्रतपःप्रभावकलिताः केचित्कवित्वश्रमाः ।
केचिद्वाचकचातुरीपरिचितास्ते तस्य शिष्या बभुः ॥४१५॥
त्रिभुवनकलशोऽपि नेमिनाथः कलशमगादथ भैरवेन्द्रतो ने ।
तदुदयभुजि पाण्ड्यदेवनाम्नि ह्यवति चकार कलक्षितिं क्षितीशे
अन्यदा ललितकीर्त्तिमुनीन्द्रः संयुतामलतपोधनयुक्तः ।
तत्क्षितीशकृतचैत्यनिवासं रक्षिताखिलगुणः प्रययौ सः ॥४१७॥
एकस्मिन्दिवसे मुनिनाथो नाकफलां जिनपतिपदपूजाम् ।
श्रोतृजनेभ्यो विशदीकुर्वन् मातृवचो निचयात्स च दध्यौ ॥४१८॥
अल्पं कथावतारं महदिदमखिलं सत्पुराणप्रसिद्धम् ।
काव्यं पूजाप्रभावं तदलघु गुरु तत् कार्यमल्पज्ञगम्यम् ।
तत्तत्संगृह्य विद्वत्परिषदुपनिषद्भूतवागर्थगुम्फम्
सिद्धं निर्धूतदोषं श्रुतजनवितरत्तत्वविज्ञानसौख्यम् ॥४१९॥
एते सन्मुनिवृषभाः कवित्वभाजो वादीन्द्राः कति कति च प्रवाग्मिनोऽ
अध्यात्मप्रसरणा किन्न एव सबभूवः ॥४२०॥
अयञ्च कल्याणयशा मुनीश्वरः सुकाव्यतर्कागमशब्दवैभवः ।
पुराणपारीण इह प्रसादनः समर्थ एवेति विचिन्त्य स व्रती ॥४२१॥
मामाहूय व्रतिकुलतिलको मिव विशद्वी कुर्वन् ।
पन्वत्त्विड्भिर्मयि मुनिरवदन्मस्तकविस्तृतकरनीरेजः ॥४२२॥

एकान्तोद्धतवादिपर्वतशिरो वज्रायते वागियम्
साहित्यार्णवपूर्णचन्द्रइति मुने कल्याणकीर्तेस्तव ।
मन्दारद्रुमगुच्छविच्युतसुधासंभूतमन्दाकिनी
स्वर्णाम्भोरुहवाससमातुररमानेत्रांशुसंचारिणी ॥४२३॥
श्रंगमंगलनिवासभारतीं संगतार्थरचनां च तावकीम् ।
मंगलां कुरु जिनेज्यया लसत्तुंगवैभवयुतां गुणस्तुते ॥४२४॥
इति मुनिपतिवाग्भि प्रेरितेनामलाभि लघुतरमतिवाचा शक्तिसाम्राज्यभाजा।
अपि च गुरुसमीपे यन्मयारंभि पूवम् ननु किमकरणीय सत्पराधीनवृत्ते ॥४२५॥
चारित्रवाराशिसुधाकरेण कल्याणकीर्त्ति (प्रतिना) मुनिनाऽभ्यधायि ।
जैनेन्द्रयज्ञस्य फलोदयाख्यं काव्यं जयत्वाक्षितिच प्रतारम् ॥४२६॥
त्रिसहस्रमिदं प्रोक्तं शास्त्रं ग्रन्थप्रमाणत ।
पञ्चाशदुत्तरे सप्तशतश्लोकैश्च संगतम् ॥४२७॥
पञ्चाशत्त्रिशतीयुक्तसहस्रशकवत्सरे ।
शुभंगे शुक्लपञ्चम्यां ज्येष्ठे मासि प्रतिष्ठितम् ॥४२८॥

इत्यार्षे श्रीमत्कल्याणकीर्तिमुनीन्द्रविरचिते जिनयज्ञफलोदये विप्रमहेभप्रमादिकृत जिनयज्ञाष्टविधानाख्यवर्णनं नाम नवमो लम्ब समाप्त ।

× × × ×

इसके कर्ता मुनि कल्याणकीर्ति कार्कल के मठाधीश ललितकीर्तिजी के शिष्य थे। इनका ग्रन्थनिर्माण समय शालिवाहन शक १३५० है तथा यह पाण्ड्य राजा के शासन-समय में विद्यमान थे। इस ग्रन्थ के रचयिता आदि पर चौबीसवें वर्ष के दिगम्बर जैन मासिक पत्र के विशेषाङ्क (१-२) में मैंने कुछ विस्तृत रूप से ऐतिहासिक प्रकाश डाला है।

कवि कल्याणकीर्तिजी के गुरु ललितकीर्तिजी भैरवराजवंश के क्रमागत राजगुरु हैं। आज भी कारकल मठ की गद्दी पर बैठनेवाले भट्टारकों का यही परम्परागत ललित कीर्ति नाम चला आता है। इस "जिनयज्ञफलोदय" के 'पञ्चाशत्त्रिशतीयुक्तसहस्रशकवत्सरे। शुभंगे शुक्लपञ्चम्यां ज्येष्ठे मासि प्रतिष्ठितम्॥ इस श्लोक से इनका समय शक सम्वत् १३५० सिद्ध होता है। मुनि महाराजजी ने उसी ग्रन्थ के निम्नांकित श्लोक में भैरवराज तथा उनके पुत्र पाण्ड्यदेव का इस प्रकार उल्लेख किया है —

"त्रिभुवनकल्पोऽपि नेमिनाथ कल्पमणावथ भैरवेन्द्रतो जिनेन्द्र"। तदुदयभुजि पाण्ड्यदेवनाम्नि क्षत्रति चकार कलाक्षिति क्षितीशे। इन दोनों में से भैरवरस ओडेय का समय शक सम्वत् १३४० (ई० सन् १४१८) एवं पाण्ड्यराज का समय शक सं० १३१२ (ई० सन् १४२१—२२) माना जाता है।

भैरवराज का काल कवि के द्वारा उल्लिखित श्लोक में जिन नेमिनाथ तीर्थङ्कर का उल्लेख किया गया है उन्हीं के मन्दिर के दरवाजे पर लगे हुए शिलालेख से लिया हुआ है। पाण्ड्यराज वही वीरपाण्ड्य भैरवरस ओडेय है जिन्होंने कार्कल में बाहुबली स्वामी की विशाल एवं मनोज्ञ मूर्ति को स्थापित कर अपने नाम को अमर कर दिया है। बाहुबली स्वामी की मूर्त्ति की प्रतिष्ठा शक सम्वत् १३५३ (ई० सन् १४३१-३२) में हुई थी। यह बात मूर्त्ति की बगल में लगे हुए संस्कृत एवं कन्नड शिलालेखों से ज्ञात होती है। इस शुभावसर पर प्रसिद्ध विजयनगराधीश द्वितीय देवराय भी आमन्त्रित किये गये थे। यह प्रतिष्ठा-महोत्सव बडे समारोह से मनाया गया था। प्रशस्तिगत इस "देवचन्द्रमुनीन्द्राच्यों दयापाल' प्रसन्नधी'।" श्लोकांश से यह भी विदित होता है कि ललितकीर्त्तिजी को देवचन्द्र नाम के एक दूसरे शिष्य भी थे। कवि कल्याणकीर्तिजी के गुरु ललितकीर्त्तिजी मूलसंघ, कुन्दकुन्दान्वय, देशीयगण, पुस्तकगच्छ के पट्ट-क्रमागत भट्टारक थे। इन भट्टारकों का मूलस्थान मैसूर राज्यान्तर्गत "हणसोगे" था। प्रशस्तिगत ४१२ वें श्लोक से ज्ञात होता है कि ललितकीर्त्तिजी के गुरु देवकीर्त्तिजी थे। विदित होता है कि यह ललित-कीर्त्तिजी अन्यान्य विषयों के अच्छे मर्मज्ञ थे। क्योंकि कल्याणकीर्त्तिजी ने इस प्रशस्ति में दिखलाया है कि काव्य, व्याकरण, न्याय, सिद्धान्तादि विषयों के ज्ञाता कई शिष्य और भी ललितकीर्त्तिजी के मौजूद थे।

कल्याणकीर्त्तिजी ने ग्रन्थ रचना का उद्देश ग्रन्थ के अन्त मे यों बतलाया है कि एक बार मेरे पूज्य गुरुदेव ललितकीर्त्तिजी ने बहुतेरे श्रोताओं को जिनपूजा का फलोपदेश देने के पश्चात् यह कहा कि मैंने यह पूजाफल संक्षेप मे वर्णित किया है—पुराणों में इसका विस्तृत विवरण है। साथ ही साथ मुझे योग्य समझ कर उन्होंने एतद्विषयक एक ग्रन्थ-प्रणयन करने का आदेश भी दिया। उन्हीं की आज्ञा का पालन-फलस्वरूप यह जिनयज्ञ फलोदय है।

निम्नलिखित श्लोक के आधार पर इस ग्रन्थ की श्लोक-संख्या दो हजार सात सौ पचास (२७५०) सिद्ध होती है :—

"द्विसहस्रमिदं प्रोक्तं शास्त्रं ग्रन्थप्रमाणतः।
पञ्चाशदुत्तरैः सप्तशतश्लोकैश्च संगतम्॥"

"कर्णाटक कविचरिते" के द्वितीय भाग से ज्ञात होता है, हमारे यह कल्याणकीर्त्तिजी निम्नलिखित ग्रन्थो के भी रचयिता है :—

(१) ज्ञानचन्द्राभ्युदय (२) कामनकथे (३) अनुप्रेक्षे (४) जिनस्तुति (५) तत्त्वभेदाष्टक (६) सिद्धराशि। इन ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय क० कविचरिते के मान्य सम्पादक ने अपने ग्रन्थ में दे दिया है। इस कवि का लिखा हुआ संस्कृत भाषाबद्ध एक यशोधरचरित

एवं कन्नड में फणिकुमार चरित भी है। यशोधरचरित की श्लोक सं० १८५० और रचना समय शक सं० १३७८ है। इस ग्रन्थ का आधार गन्धर्व कवि का प्राकृतग्रन्थ है और इसकी रचना पाण्ड्य नगर (कार्कल) के गोम्मटेश्वर चैत्यालय में हुई थी। फणिकुमार चरित का प्रणयनकाल शक सं० १३६४ है। ताडपत्राङ्कित ये दोनों ग्रन्थ भवन में मौजूद हैं। भवन के संगृहीत ताडपत्राङ्कित 'चिन्मय चिन्तामणि' नामक कन्नडपद्यात्मक लघुकलेवर ग्रन्थ भी सम्भवतः इन्हीं कल्याणकीर्ति का हो।

---

(८) ग्रन्थ न० $\frac{२०८}{ख}$

# षड्दर्शन-प्रमाण-प्रमेयानुप्रवेश

कर्त्ता—शुभचन्द्र

---

विषय—न्याय

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८। इञ्च चौड़ाई ४।। इञ्च पत्रसंख्या २१

---

## मङ्गलाचरण

साद्यनन्तं समाख्यातं व्यक्तानन्तचतुष्टयम्।
त्रैलोक्ये यस्य साम्राज्यं तस्मै तीर्थकृते नमः॥

× × ×

*मध्य भाग (पूर्व पष्ठ १० पंक्ति २य)*

अपरं च द्रव्यतत्वाद्विनित्यद्रव्यवृत्तयोऽन्त्याविशेषाः अयुतसिद्धानामाधाराधेयभूतानां यः सम्बन्धः इहेदं प्रत्ययहेतुः स समवायः। प्रत्यक्षलैङ्गिके द्वे एव प्रमाणमिति वैशेषिकदर्शनसमासः। साङ्ख्यैस्तु धत्तसनिजबुद्धया परिकल्पितोऽयं निर्वृतिनगर्याः पन्थाः। यद्गुः पञ्चविंशतितत्वपरिज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः। तत्र त्रयो गुणाः। सत्त्वं रजस्तमश्च। तत्र प्रसादलाघवप्रसवानभिष्वंगद्वेषप्रीतयः कार्यं सत्यस्य। शोकतापस्वेदस्तम्भोद्वेगप्रद्वेषाः कार्यं रजसः। भयासाधनबीभत्सदैन्यगौरवाणि तमसः कार्यम्। ततः सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः सैव प्रधानमित्युच्यते।

शस्ति —

जयति शुभचन्द्रदेव कण्डूगणपुण्डरीकवनमार्त्तण्ड ।
चण्डांत्रदण्डदूरो राद्धान्तपयोधिपारगो बुधविनुतः ॥

× × ×

इस लघुकलेवर ग्रन्थ में विद्वद्वर शुभचन्द्रदेव ने षड्दर्शनों के प्रमाण और प्रमेय का संक्षिप्त परिचय दिया है। शुभचन्द्र नाम के कई विद्वान् हुए हैं। "दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ" के अनुसार निम्न लिखित पाँच (?) शुभचन्द्र के नाम उपलब्ध होते हैं:—

(१) शुभचन्द्राचार्य (ज्ञानार्णव के कर्त्ता—जीवनकाल ११वीं शताब्दी*) (२) शुभचन्द्र-भट्टारक (जीवनकाल वि० स० १४५०) (३) शुभचन्द्र (प्रसिद्ध पाण्डव-पुराणादि अन्यान्य कई ग्रन्थों के कर्त्ता—जीवन काल वि० स० १६८०) (४) शुभचन्द्राचार्य (संशयि-वदनविदारण के कर्त्ता—जीवन-काल ×) (५) शुभचन्द्र (करकण्डु महाराजचरित्र आदि के कर्त्ता जीवन-काल वि० स० १६११) पाण्डवपुराणादि के कर्त्ता भट्टारक शुभचन्द्र का जीवनकाल प्रेमी जी के उक्त ग्रन्थ में वि० स० १६८० लिखा हुआ है। किन्तु यह समय मुझे भ्रमपूर्ण मालूम होता है। क्योंकि पाण्डवपुराण की निम्नाङ्कित प्रशस्ति से यह बात स्पष्ट ज्ञात हो जाती है कि उनका समय वि० स० १६०८ है :—

"श्रीमद्विक्रमभूपतेर्द्विकहतस्य षष्ठे संख्ये शते (?)
रम्याष्टाधिकवत्सरे सुखकरे भाद्रे द्वितीयातिथौ।
श्रीमद्वाग्वरनीवृतीदमतुले श्रीशाकवाटे पुरे
श्रीमच्छ्रीपुरुधाम्नि च विरचितं स्थेयात्पुराणं चिरम् ॥

इससे यह भी विदित होता है कि करकण्डु महाराजचरित्र के रचयिता शुभचन्द्र पाण्डवपुराण के कर्त्ता से भिन्न नहीं है। क्योंकि जीवनकाल में केवल तीन वर्ष की दूरी अधिक नहीं कही जा सकती है एवं करकण्डु महाराज का चरित्र भी दोनों शुभचन्द्र की रचना में आगया है। फिर भी यह अनुमानपरक है। प्रशस्ति एवं रचनाशैली आदि से इसका प्रकृत निर्णय किया जा सकता है। पाण्डवपुराण की प्रशस्ति से यह भी ज्ञात होता है कि "संशयिवदनविदारण" के कर्त्ता पाण्डवपुराण के कर्त्ता शुभचन्द्र से भिन्न नहीं हैं। पाण्डवपुराण और संशयिवदनविदारण के कर्त्ता शुभचन्द्र को भिन्न भिन्न मानने की धारणा

*रायचन्द्र जैनशास्त्रमाला में प्रकाशित ज्ञानार्णव के प्रारंभ में प्रेमी जी के द्वारा लिखित "श्रीशुभचन्द्राचार्य का समय-निर्णय" के आधार पर।

में मुख्य कारण यह हो गया है कि संशयिवदनविदारण ग्रन्थ का प्रतिलिपिकाल संग्रह कर्त्ता को वि० सं० १५८८ मिला है। मेरे अनुमान से यह काल भ्रमपूर्ण सा ज्ञात होता है।

इसी प्रकार श्रवणबेलगोल के शिलालेखों में भी मुझे शुभचन्द्र चतुष्टयी के दर्शन होते हैं। एक तो देवकीर्त्ति के शिष्य दूसरे गण्डविमुक्त मलधारिदेव के शिष्य, तीसरे माघनन्दी के शिष्य और चौथे रामचन्द्र के शिष्य।

पाण्डवपुराण की प्रशस्ति में प्रतिपादित "षड्वाद' ही सम्भवतः यह प्रस्तुत ग्रन्थ 'षड्दर्शनप्रमाणप्रमेयानुप्रवेश" हो। किन्तु साथ ही साथ मन में यह भी शङ्का स्थान कर जाती है कि पाण्डवपुराण, कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा आदि अपने अन्यान्य ग्रन्थों की प्रशस्तियों में अपनी विस्तृत गुरुपरम्परा आदि का परिचय जिस प्रकार इन्होंने दिया है, इसमें भी दे दिये होते। अस्तु जो हो इस ग्रन्थ की रचनाशैली एवं भाषा सरणी प्रशस्त है। अन्तिम श्लोक से यह भी ज्ञात होता है कि आप अपूर्व वाद पटु तपस्वी एवं सिद्धान्त शास्त्र के प्रखर विद्वान् थे।

बल्कि उल्लिखित श्रवणबेलगोल के शक सम्वत् १०४५ के ४३ (११७) वें शिलालेख में वर्णित २ य शुभचन्द्र देव की ओर मेरा ध्यान कुछ आकृष्ट सा हो जाता है। क्योंकि उस शिलालेख में वर्णित शुभचन्द्र के व्यक्तित्व और पाण्डित्यद्योतक विशेषणों में इस ग्रन्थ का अन्तिम एकमात्र श्लोक मिल सा जाता है। अतः इतिहासप्रेमी विद्वान् इस ओर विशेष ध्यान देंगे।

---

(६) ग्रन्थ नं० $\frac{२१२}{ख}$

# अलंकार-संग्रह

कर्त्ता—अमृतनन्दयोगी

---

विषय—अलङ्कार

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—८। इञ्च चौड़ाई—५॥ इञ्च पत्रसंख्या—१०४

---

मङ्गलाचरण

जगद्वैचित्र्यजननशमरूपद्वयम्।
अवियोगरसाभिज्ञमाद्य मिथुनमाश्रये ॥१॥

तदुल्लासरसाकारां तत्त्वकैरवकौमुदीम्।
नमामि शारदां देवीं नामरूपाधिदेवताम् ॥२॥

ग्रन्थावतरण—

उद्दामकल्पां गुर्वीमुदधिमेखलाम् (?)।
भक्तिभूमिपतिः शास्ति जिनपादाब्जषट्पदः ॥३॥
तस्य पुत्रस्यागमहासमुद्रविख्याङ्कित ।
सोमसूर्यकुलोत्तमो महितो मन्त्रभूपति ॥४॥
स कदाचित्सभामध्ये काव्यालापकथान्तरे।
अपृच्छदमृतानन्दमादरेण कवीश्वरम् ॥५॥
वर्णशुद्धिं काव्यवृत्तिं रसान् भावाननन्तरम्।
नेतृभेदानलङ्कारान दोषानपि च तद्गुणान ॥६॥
नाट्यधर्मान् रूपकोपरूपकाणां भिदालसि(?)।
चातुर्वर्ण्यभेदांश्च विकीर्णास्तत्र तत्र तु ॥७॥
सङ्क्षिप्यैकत्र कथय सौकर्याय सतामिति।
मया तत्प्रार्थितेनेत्थममृतानन्दयोगिना ॥८॥
तत्रान्तरोदितानर्थान वाक्यान्यैव क्वचित् क्वचित्।
सङ्क्षिप्य क्रियते सम्यक् सर्वालङ्कारसंग्रह ॥९॥

× × ×

मध्यभाग—(पृष्ठ पूर्व ५२ पंक्ति ४)—

लीलेति पूर्वकथित पुनरपि लीलेति कथितमेतस्मिन्।
यस्मिन्नत्र प्रकृष्ट पतत्प्रकर्षं तदामनन्ति यथा ॥

क क पुत्र न धर्मदायिनघुर्ग घोरो घुर्गन्सूकर
क क क कमलाकर निकमर कर्तुं करो नोद्यत ।
के के कानि धनान्दरण्यमहिषा नोन्मूलयेयुर्यत ।
सिंह स्नेहविलासबद्धवसति पञ्चाननो वर्तते ॥

× × ×

अन्तिम भाग—

इत्यमृतानन्दयोगिविरचिते अलङ्कारसंग्रहे वस्तुनिर्णयो नामाष्टमोऽध्याय.

"कन्नड़ कविचरिते" भाग २य पृष्ठ ३३ में एक अमृतनन्दी कवि के बारे में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है —

"इन्होंने अकारादि वैद्यनिघण्टु लिखा है। यह जैन कवि हैं। इनका लगभग १३०० शताब्दी में होना संभव ज्ञात होता है।'

"रसरत्नाकर" नामक कन्नड अलङ्कार ग्रन्थ की भूमिका में स्वर्गीय ए० वेङ्कटराव बी० ए० एल० टी० तथा पण्डित एच० शेष येय्यङ्गार ने लिखा है कि— 'अमृतनन्दी का अलङ्कारसंग्रह नाम का एक ग्रन्थ है। उसमें (१) वर्णगण विचार (२) शब्दार्थ निर्णय (३) रसनिर्णय (४) नेतृभेदविचार (५) अलङ्कारनिर्णय (६) दोषगुणालङ्कार निर्णय (७) सन्ध्यङ्ग निरूपण (८) वृत्तिनिरूपण (९) काव्यालङ्कारनिरूपण नामक ये नव परिच्छेद हैं। यह भी इनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। क्योंकि प्राचीन आलङ्कारिक ग्रन्थों को देखकर 'मन्व' भूपति की अनुमति से यह ग्रन्थ संचित करके मैंने लिखा है यों ग्रन्थारंभ में रचयिता ने स्वयं कहा है। यह मन्व राजा सोमसूर्यकुलोत्तंस समुद्रविरुदाङ्कित यमगण्डगण्ड, कोरवंकभीम समरनिरङ्कुश एवं नूतसाहसाङ्क आदि विरुदावली से अलंकृत थे। इस बात को कवि ने ग्रन्थ के प्रत्येक परिच्छेदान्त पद्य में कहा है। इस मन्वभूपति के पिता शिवपादाब्जषट्पद भक्ति भूमिप थे।*

तिरुवनापल्ली के जम्बुकेश्वर देवस्थान में प्राप्त प्रतापरुद्रदेव के एक शासन से मन्वगण्ड गोपाल नामक एक प्रताप रुद्र का सामन्त था ऐसा विदित है इसलिये अनुमान किया जाता है कि यही अमृतनन्दी के आश्रयदाता होंगे।

नेल्लूर के शक वर्ष १२२१ (क्रीस्ताब्द १२९९) एक शासन में "तस्यात्मज सुतो मन्व गण्डगोपालभूपतिः। प्रतापरुद्रभूपस्य प्रसादार्जितवैभवः" ऐसा उल्लेख मिलता है। इससे इस मन्वभूप का समय खिस्त शक १२९९ सिद्ध होता है। अतः कवि अमृतनन्दी का काल खिस्त शक १३वीं शताब्दी का अन्तिम भाग परिज्ञात होता है। यह कवि प्रतापरुद्र के आश्रय में प्रतापरुद्रीय ग्रन्थ के रचयिता विद्यानाथ के समकालीन होंगे या कुछ इधर के।'

इन उल्लिखित दोनों उद्धरणों से इस ग्रन्थ के रचयिता यही अमृतनन्दी हैं तथा इनका समय भी यही १३वीं शताब्दी है यह बात प्रमाणित होती है।

---

*किन्तु भवन की इस प्रति में 'जिनपादाब्जषट्पद' यही पाठ है।

(१०) ग्रन्थ नं० २१२/ख

# केवलज्ञानहोरा

कर्त्ता—चन्द्रसेनमुनि

विषय—ज्योतिष

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—१३॥ इञ्च   चौड़ाई—८॥ इञ्च   पत्रसंख्या*—३७६

*प्रारम्भिक भाग—*

अनन्तविद्याविभव जिनेन्द्रं निधाय नित्य निरवद्यबोधम्।
स्वान्तेऽहमिन्दुप्रभमिन्द्रवन्द्य वक्ष्ये परां केवलबोधहोराम् ॥१॥
होरा नाम महाविद्या वक्तव्यञ्च भवद्धितम्।
ज्योतिर्ज्ञानकलासारं भूषणं बुधपोषणम ॥२॥
केवलज्ञानहोराया॰ चन्द्रसेनेन भाषितम्।
परोपदेशिक ग्रन्थं (?) मया सप्तशत (?) कृतम् ॥३॥
आगमः (?) सदृशो जैनः चन्द्रसेनसमो मुनि'।
केवली (?) सदृशी विद्या दुर्लभा सचराचरे ॥४॥
श्रीमत्पञ्च गुरू श्चतुर्विधसुराधीशार्चितान् संस्तुतान्
चातुर्वर्णजन(?) चतुर्गतिभवक्लेशापहारानपि।
तत्वान् सप्तवरैकवाक्यनिरतान् दोषद्वयध्वंसकान्
आचार्यांश्च (?) उपासकान्सुमनसा वन्दामहे दिग्ग्रहान् ॥५॥
तन्मात्रवेदाम्बुधिबाणशैलशम्यग्निचन्द्राश्वभवे ध्रुवाङ्काः।
प्राच्यादिदिक्षु प्रथिता मुनीन्द्रैर्नष्टादिविज्ञानविधौ विधेयाः ॥६॥

× × ×

*मध्यभाग (पृष्ठ १८४ पंक्ति ५)*

तन्मात्रवेदाम्बुधिकामशैलशतांगनेत्राग्नितयो द्रुतान्ताः (ध्रुवाङ्का)।
प्रागादिदिक्षु प्रथिता मुनीन्द्रैर्नष्टादिविज्ञानविधौ विधेया' ॥
पृच्छकदिग्दशगुणित प्रहरयुत त्रिगुणित त्रिंशत्।

---

* बीच बीच में कुछ सादे पृष्ठ भी हैं।

समेतं विमुच (?) सप्रश्नात्तरयुतं। वसु ७। हतं। तच्छेषं १। अवर्ग २। चवग ३ टवर्ग ४। तवग ५। पवर्ग ६। यवर्ग ७। सवर्ग कवर्ग। अथ। एकादिशून्यपर्यन्त १। अवर्ग २। कवर्ग ३। चवग ४। टवर्ग ५। तवर्ग ६। पवग ७। यवर्ग। शवग। तद्वर्गशेषं। भेशवाया ५। इत। वि। विषमाक्षर। स। समाक्षरं। अन्त्याक्षरं। तदक्षर शेष। गिरिबाया ५७। हतं विवत। वि। पूर्वाक्षरं। सं। द्वितीयाक्षरं। एते अक्षरभेदा'। × × × × × × ×

× × ×

*अन्तिम भाग—*

× × × × × × हेहलिके ८५। हुलिगोट्टु ८६। हेरवयल्लि ८७। हिरिगया ८८। हल्लयाल ८९। हालुव ९ । होमाड ९१। हाडूव ९२। हेवति ९३। हेकंव ९४। हगरे ९५। हरियड्डि ९६। हुक्केरि ९७। हरिगे ९८। हिप्परिगे ९९। हुवमुजि १ । कोडव हुव्वल्लि १०१। हासदुर्ग १ २। हिजयिडि १ ३। हुवलि १०४। हुणिसिगे १०५। हन गवाडे १०६। हामाळि १०७। सम्पूर्णम्।

याद्दशं पुस्तकं दृष्ट्वं ताद्दशं लिखितं मया।<br>
अबद्धं वा सुबद्धं वा मम दोषो न विते ॥१॥

हमारा ज्योतिषशास्त्र दो भागों में विभक्त है। एक गणित और दूसरा फलित या होरा विज्ञान। प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम 'केवलज्ञानहोरा' है। होरा की व्युत्पत्ति विद्वानों ने यों की है—'आद्यंतवर्णलोपात् होरासमाकं भवत्यहोरात्रात्'—अर्थात् 'अहोरात्र' शब्द का आदिम अक्षर 'अ' और अन्तिम अक्षर 'त्र' इन दोनों के लोप कर देने से 'होरा'* शब्द व्युत्पन्न हुआ है। 'केवलज्ञानहोरा' इस नामसे बहुत से व्यक्तियों की यही धारणा है कि यह भी फलित ज्योतिष का एक मौलिक ग्रन्थ होगा। अवकाशाभाव से इसका विशेष परिचय इस समय यहाँ पर नहीं दिया जा सका। हाँ इस विद्या के मर्मज्ञ किसी सावकाश विद्वान् को इस पर कुछ विशेष प्रकाश डालने की चेष्टा करनी चाहिये। 'दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' में भी इसे ज्योतिषशास्त्र ही लिखा है। साथ ही साथ प्रेमी जी की इस पुस्तक में इस 'केवलज्ञानहोरा' की श्लोकसंख्या तीन हजार बतलायी गयी है। परन्तु प्रारंभिक "परोपदेशिकं ग्रन्थं ? मया सप्तशतं कृतम्" इस तीसरे पद्यभाग से इस ग्रन्थ की श्लोकसंख्या सात सो सिद्ध होती है। किन्तु ग्रन्थ बहुत बड़ा है। न मालूम ग्रन्थकर्त्ता ने यह सात सौ संख्या किस बात की दी है।

इसके कर्त्ता चन्द्रसेनमुनि हैं। इन्होंने अपने इस ग्रन्थ के 'केवलज्ञानहोरायाश्चन्द्रसेनेन

* ज्योतिषोक्त लग्न एवं एक राशि या लग्न के आधे भाग को भी होरा कहते हैं।

भाषितम्" इस पद्यांश में इस बात को स्पष्ट कर दिया है। साथ ही साथ "आगमः सदृशो जैन चन्द्रसेनसमो मुनि । केवली (?) सदृशी विद्या दुर्लभा सचराचरे ॥" इस पद्य में अपनी प्रचुर प्रशंसा भी की है। इधर उधर बहुत कुछ टटोलने पर भी इनके बारे मे विशेष परिचय मै नहीं मालूम कर सका। ग्रन्थान्तर्गत बातों से ज्ञात होता है कि आप ज्योतिषशास्त्र के एक अच्छे ज्ञाता थे। इसमे कोई शक नहीं कि आप कर्नाटकनिवासी एव कन्नडभाषी थे। क्योंकि अपने ग्रन्थ के संस्कृतबद्ध पद्यों (कर्णसूत्रो) का खुलाशा करने के लिये इन्होंने जहाँ तहाँ कन्नडभाषा का भी अधिकतर आश्रय लिया है। भवन की यह प्रति श्रवणबेलोल की कन्नड प्रति से उतारी गयी है, किन्तु है यह बहुत अशुद्ध। अतः यहाँ आपकी संस्कृत-रचनाशैली के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। किसी शास्त्रागार में इसकी कोई शुद्ध प्रति का अन्वेषण परमावश्यक है। इसमें जो प्रकरण* हैं उनमें कुछ का नीचे नाम-निर्देश किया जाता है :—

हेमप्रकरण, दाम्यप्रकरण, शिलाप्रकरण, मृत्तिकाप्रकरण, वृक्षप्रकरण, कार्पास-गुल्म-वल्कल-तृण-रोम-चर्म-पटप्रकरण, सख्याप्रकरण, नष्टद्रव्यप्रकरण, निर्वाहप्रकरण, अपत्य-प्रकरण, लाभालाभप्रकरण, मोक्षप्रकरण, स्त्रीसभोगप्रकरण, भोजनप्रकरण, स्वप्नप्रकरण, सामुद्रिकप्रकरण, स्वरप्रकरण, वास्तुविद्याप्रकरण, शकुनप्रकरण, देहलोहदीक्षाप्रकरण, अञ्जनविद्याप्रकरण, विषविद्याप्रकरण। इसी प्रकार देशभेद, उपकरणभेद, शास्त्रभेद, रत्नभेद, पक्षिभेद, यन्त्रभेद, मन्त्रभेद, जातिभेद, मुद्राभेद आदि अनेक द्रव्यो के भेद भी इसमे दरसाये गये है। बल्कि मुद्राभेद नामक शीर्षक मे विक्रम, चालुक्य, कादम्ब, युधिष्ठिरादिक अनेक ऐतिहासिक एवं पौराणिक प्रसिद्ध व्यक्तियो के नाम भी आये है।

* ये प्रकरण किसी काण्ड या अध्याय के अन्तर्गत हैं।



(११) ग्रन्थ नं० २१४/ख

# दानशासन

कर्ता—श्रीवासुपूज्य ऋषि

विषय—दानफलादिविवरण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२॥ इञ्च चौड़ाई ५॥। इञ्च पत्रसंख्या ५५

*प्रारम्भिक भाग —*

यस्य पादाब्जसद्गन्धाघ्राणनिर्मुक्तकल्मषाः ।
ये भव्याः सन्ति तं देवं जिनेन्द्रं प्रणमाम्यहम् ॥१॥
दानं वक्ष्येऽथ धारीव शस्यसम्पत्तिकारणम् ।
क्षेत्रोप्तं फलतीव स्यात् सर्वजीवेषु समं सुखम् ॥२॥
शुद्धसद्दृष्टिभिः शुद्धपुण्योपार्जनलम्पटैः ।
सार्द्धं ब्रूयादिमं ग्रन्थं नेतरैस्तु कदाचन ॥३॥

× × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ २८ पंक्ति १म)

श्रीमत्त्रिलोकभवनान्तरसर्ववस्तुग्राहिप्रबोधनिधिलाभिविराजमानम् ।
ज्ञानैकगोचरमशेषमुनीन्द्रवन्द्यमिन्द्रार्चिताङ्घ्रिमर्हन्तमहं नमामि ॥१॥
कर्मक्षयकरत्वात्तत्पात्र तस्य भेदानहं ब्रुवे ।
पात्रे देयं न चान्यत्र क्षेत्रे कृष्यधिपो यथा ॥२॥
रत्नत्रयात्मको धर्मस्तमाचरति धार्मिकः ।
धर्माभिवृद्धये स्वस्य धार्मिके प्रीतिमाचरेत् ॥३॥
पात्रभेदं कथयाद्य त्वं पात्रं पञ्चविधं मतम् ।
तद्यथेति कृते प्रश्ने सूरिराह तदुत्तरम् ॥४॥
उत्कृष्टपात्रमनगारमणुव्रताढ्यं मध्यं व्रतेन रहितं सुदृशं जघन्यम् ।
निर्दर्शनं व्रतनिकाययुतं कुपात्रं युग्मोज्झितं नरमपात्रमिदञ्च विद्धि ॥५॥

संगादिरहिता धीरा रागादिमलवर्जिता ।
शान्ता दान्तास्तपोभूपास्ते पात्रं दातुरुत्तमम् ॥६॥
निस्संगिनोऽपि वृत्ताढ्या नि स्नेहा, सुगतिप्रियाः ।
अभूपाश्च तपोभूपास्ते पात्रं दातुरुत्तमम् ॥७॥
परोपहजये शक्ता शक्ता कर्मपरिक्षये ।
ज्ञानध्यानतपःशक्तास्ते पात्रं दातुरुत्तमम् ॥८॥
प्रशान्तमनस, सौम्याः प्रशान्तकरणक्रियाः ।
प्रशान्तारिमहामोहास्ते पात्रं दातुरुत्तमम् ॥९॥
धृतिभावनया युक्ता सत्त्वभावनयान्विताः ।
तत्त्वार्थहितचेतस्कास्तेपात्रं दातुरुत्तमम् ॥१०॥
परीषहजये शूराः शूरा इन्द्रियनिग्रहे ।
कपायविजये शूरास्ते पात्रं दातुरुत्तमम् ॥११॥

× × ×

अन्तिम भाग—

मतं समस्तैमुंनिभिर्यदादृतैः प्रभासुरात्मावनदानशासनम् ।
मुदे सतां पुण्यधन समर्जित दानानि दद्यान्मुनये विचार्य्य तत् ॥
शाकाब्दे त्रियुगाग्निशीतगुणितेऽतीते वृपे वत्सरे
माघे मासि च शुक्लपक्षदशमे श्रीवासुपूज्यर्षिणा ।
प्रोक्तं पावनदानशासनमिदं ज्ञात्वा हित कुर्वताम्
दानं स्वर्णपरीक्षका इव सदा पात्रत्रये धार्मिकाः ॥

समाप्तमिदं दानशासनम्

ग्रन्थ के अन्तिम पद्य से स्पष्टतया ज्ञात होता है कि इस "दानशासन" के कर्त्ता वासुपूज्य ऋषि हैं। साथ ही साथ उक्त पद्य से यह भी विदित होता है कि यह ग्रन्थ शक सम्वत् १३४३ माघ शुक्ल दशमी को समाप्त हुआ था। ग्रन्थकर्त्ता ने अपने इस ग्रन्थ में गुरुपरम्परा, गण, गच्छ आदि की कुछ भी चर्चा नहीं की है। अत इनके विषय मे अधिक प्रकाश नहीं डाला जा सका। दाक्षिणात्य कतिपय शिलालेखो मे "वासुपूज्य" यह नाम मिलता है अवश्य। पर प्रस्तुत वासुपूज्य के गणगच्छादि के न मालूम होने से नहीं कहा जा सकता है कि अमुक वासुपूज्य ही इस दानशासन के कर्त्ता हैं। अगर किसी विद्वान् को इन वासुपूज्यऋषि के गणगच्छादि विशेष बातों का पता ज्ञात हो तो उन्हें प्रकट कर देना चाहिये।

इनकी संस्कृत रचनाशैली साधारणतया अच्छी है। प्रत्येक भाग की श्लोकसंख्या अलग अलग बता कर इस ग्रन्थ को इन्होंने निम्नलिखित भागों में विभक्त किया है —

(१) अष्टविधदानलक्षण (२) उत्तमपात्रसामान्यविधि (३) अभयदानविधि (४) दानशालाविधि (५) क्रियाविधि (६) द्रव्यशोधनविधि (७) पात्रलक्षणविधि (८) करुणत्रयलब्धिवाहारदानविधि (९) भैषज्यदानविधि (१०) शास्त्रदानविधि।

---

(१२) ग्रन्थ नं० $\frac{२१५}{ख}$

# भव्यकण्ठाभरणपञ्चिका

कर्त्ता—अर्हद्दास

---

विषय—देवगुरुशास्त्रादिलक्षण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६।। इञ्च    चौडाई ६ इञ्च    पत्रसंख्या २२

---

*प्रारम्भिक भाग—*

श्रीमान् जिनो मे श्रियमेव दिश्याद्यदीयरक्तोज्ज्वलपादपीठम्।
करैर्नतेन्द्रोत्करमौलिरत्नै स्वपक्षरागादिव चालितं स्वैः ॥१॥
सदापि सिद्धो मयि सन्निदध्यात्स सिद्धिवध्वा सह सान्द्रसौख्यम्।
चर्चस्यजस्रं तनुमारुतान्तः संभोगभाविभ्रमभीतवैव ॥२॥
आचार्यवर्याश्चरितानि शिष्यानाचारयन्तः स्वयमाचरन्तः।
षट्त्रिंशतापि स्वगुणैर्गुणास्ते सदापरात्माप्तगुणाभिलाषाः ॥३॥
तेऽध्यापकाः सुव्रतते नितान्तं ये ब्रह्मचर्यव्रतपालिनोऽपि।
दयाश्च चित्तेषु सरस्वतीश्च मुखेषु देहेषु तपःश्रियश्च ॥४॥
ते साधवो मे ददतु स्ववृत्तिं दयालवोऽपि व्रतदिव्यशस्त्रैः।
अनंगराजं समरे विहत्य कुर्वन्त्यनंगोत्थपदं स्वकीयम् ॥५॥
जिनागमक्षीरनिधिर्गभीरो विलोडितश्चैर्विबुधैर्विधानात्।
ददाति रत्नत्रयमुज्ज्वलाग्रं सदा स तेभ्योऽप्यमृतं दुरापम् ॥६॥

श्रीगौतमाद्या जिनयोगिनो ये वीरांगदान्ता महितात्मवृत्ता. ।
तदीयनामाक्षररत्नमाला मदीयवाण्या मणिकण्ठिका स्यात् ॥७॥
अथाशरीरानुपमाम्बुजाक्षीमप्याशु वश्या यदल विधातुं ।
शत सुवर्णाभिनवार्थरत्नैस्तद्भव्यकण्ठाभरणं तनिष्ये ॥८॥

× × ×

*मध्यभाग (पूर्व पृष्ठ १४ पंक्ति ४)*

श्रित्वादिमं (?) तापमितेषु वुद्ध्यानाश्रित्य मूलाच्च भजत्स्वमुक्त्वा ।
छायाद्रुवत्तस्य न रुट्परागस्तथापि ते दु खसुखास्पदानि ॥१॥
तस्मिन्निदानीमिव सार्वभौमे देशे वसत्यप्यतिविप्रकृष्टे ।
चरन्ति ये ते सुखिनस्तदीयामाज्ञामनुलङ्घ्य परे सदु'खा ॥२॥
जना गृहग्रामपुरीजनान्तपट्खण्डमात्रप्रभुशासन चेत् ।
उल्लंघयन्तोऽप्युरुदुःखभाजस्तर्त्कि पुनस्सर्वजगत्प्रभोस्तत ॥३॥
सतो हित शास्ति स एव देव सदाप्य (?) ते शासनतत्फलेच्छाम् ।
फलस्वन कर्णसुधारसौघं घमत्तयोर्वाधमपेक्षते किम् ॥४॥

× × ×

*अन्तिम भाग—*

अर्च्यास्सहार्थाभिदयेति सर्वेऽप्याचार्य्यमुख्या गुरवस्त्रयोऽपि ।
असारससारविनाशहेतोराराधनीया अनिशं मया स्यु' ॥१॥
सूक्त्यैव तेषां भवभीरवो ये गृहाश्रमस्थाश्चरितात्मधर्मा. ।
त एव शेषाश्रमिणां सहाया धन्या स्युराशाधरसूरिवर्या. ॥२॥
आराध्यमानामलदर्शनास्ते धर्मेऽनुरक्ता शमिनां सदापि ।
एक यथाशक्ति भजन्त्यशल्यमेकादशाणुव्रतिकास्पदेषु ॥३॥
ते पात्रदानानि जिनेन्द्रपूजा' शीलोपवासानपि चिन्वते च ।
न्यायेन कालादसतीश्वरोपभोगस्य शर्मानुभवन्ति चात्तम् ॥४॥
कर्तुं तप संयमदानपूजास्वाध्यायमप्याश्रितचारुवार्ताः ।
ते तद्भव श्रीजिनसूक्तशुद्ध्या पत्तादिमिश्चाघलव क्षिपन्ति ॥५॥
त एव मान्या भुवि धार्मिकौघा धर्मानुरक्ताखिलभव्यलोकैः ।
सुधानुरक्ता ह्यनुरागसूतिमाधारपात्रेष्वपि तन्वतेऽस्याः ॥६॥

इत्युक्तमाप्तादिकसत्स्वरूपं संश्रयवतोऽत्रैव दृढा रुचिः स्यात्
सज्ज्ञानमस्याचरितं ततोऽस्मात्कर्मक्षयोऽस्मात्सुखमप्यदुःखम् ॥७॥
आप्तादिरूपमितिसिद्धमवेत्य सम्यगेतेषु रागमितरेषु च मध्यभावम्।
ये तन्वते बुधजना नियमेन तेऽर्हद्दासत्वमेत्य सततं सुखिनो भवन्ति ॥८॥

इत्यर्हद्दासकृतभव्यकण्ठाभरणस्य पञ्जिका समाप्ताभूत्।

इस "भव्यकण्ठाभरणपञ्चिका" के कर्त्ता कविवर अर्हद्दासजी हैं। अभी तक इनके तीन ही ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। बल्कि प्रस्तुत कृति को छोड़ कर शेष दो ग्रन्थ—'पुरुदेव चम्पू" तथा 'मुनिसुव्रतकाव्य' प्रकाशित हो भी चुके हैं। पहला ग्रन्थ "माणिक्यचन्द्र जैन ग्रन्थमाला" बंबई से और दूसरा "मुनिसुव्रतकाव्य" संस्कृत हिन्दी-टीका-सहित "जैनसिद्धान्त भवन' आरा से। इनकी कविता के बारे में यहाँ पर मैं विशेष कुछ न लिख कर सहृदय पाठकों से "मुनिसुव्रतकाव्य' को ही साद्यन्त एक बार पढ जाने का अनुरोध करता हूँ। हमारे अर्हद्दास जी गद्य पद्य दोनों के सिद्धहस्त लेखक हैं। आपकी सभी रचनायें माधुर्य आर प्रासादादि काव्योचितगुणों से ओतप्रोत हैं।

आप विद्वद्वर आशाधर जी के शिष्य हैं। यह बात आपकी तीनों कृतियों के निम्न लिखित अन्तिम पद्यों से स्वयं सिद्ध होती है —

मिथ्यात्वकर्मपटलैश्चिरमावृते मे युग्मे दृशोः कुपथयाननिदानभूते।
आशाधरोक्तिलसदञ्जनसंप्रयोगैः स्वच्छीकृते पृथुलसत्पथमाश्रितोऽस्मि ॥

(मुनिसुव्रतकाव्य)

सूक्त्यैव तेषां भवभीरवो ये गृहाश्रमस्थाश्चरितात्मधर्माः।
त एव शेषाश्रमिणां सहाया धन्याः स्युराशाधरसूरिमुख्याः ॥

(भव्यकण्ठाभरपञ्चिका)

मिथ्यात्वपंककलुषे मम मानसेऽस्मिन् आशाधरोक्तिकतकप्रसरैः प्रसन्ने।
उल्लासितेन शरदा पुरुदेवभक्त्या तच्चम्पुदम्भजलदेन समुज्जजृम्भे ॥

(पुरुदेवचम्पू)

पण्डित नाथूराम प्रेमी जी ने अपनी विद्वद्रत्नमाला भाग १म में लिखा है कि पण्डित प्रवर आशाधर जी का जन्म वि० सम्वत् १२३५ के लगभग हुआ होगा। इनकी जन्मभूमि सपादलक्ष (सवालाख) देशका मण्डलकर (माँडलगढ़) थी। उस समय उक्त माँडलगढ

अजमेर के चौहानों के अधीन रहा। ई० सन् ११६२ के बाद जब यह गढ़ मुसल-
न बादशाहों के हाथ मे आया तब मुसलमानो के उपद्रव से बचने के लिये आशाधर
ी को अपनी जन्मभूमि का परित्याग कर सपरिवार धारानगरी में आकर रहना
डा। उन दिनो धारा नगरी मे राजा विन्ध्यवर्म का शासन चलता था। यह बडा
विद्याप्रेमी था। इसका मन्त्री बिल्हण था। यह आशाधरजी को बहुत मानता था।
बल्कि आशाधरजी को बिल्हण 'कविराज' कह कर पुकारता था। अन्यान्य विद्वान् भी
आशाधर जी की कविता का बहुत आदर करते थे। आशाधर जी के मदनोपाध्याय
आदि कई प्रख्यात पण्डित शिष्य थे। बल्कि इस मदनोपाध्याय को महाराज अर्जुनदेव
का राजगुरु एव महाकवि होने का भी सम्मान प्राप्त था। उक्त अर्जुनदेव राजा
विन्ध्यवर्म का पुत्र था। आशाधरजी स्वय गृहस्थ थे, फिर भी बडे बडे मुनिगण इनकी
शिष्यता स्वीकार कर इनसे पढते थे। पता चलता है कि आशाधरजी वृद्धावस्था में
नलकच्छपुर (नालछा) में जाकर रहने लग गये थे। इनकी कई अमूल्य कृतियाँ उपलब्ध
हैं। इनमे "भव्यकुमुद चन्द्रिका" नामक अनगार धर्मामृत की टीका ही सब से पीछे की है।
यह टीका वि० संम्वत् १३००* मे समाप्त हुई थी। अत प्रस्तुत भव्यकण्ठाभरणपञ्चिका के
रचयिता आशाधरजी के शिष्य इस अर्हद्दासजी का समय भी लग-भग यही विक्रम की
१३ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध अथवा १४ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध होना चाहिये।

---

* बाबू हीरालालजी का मत है कि आशाधरजी ने वि० सम्वत् १२७५ के लगभग कुछ काल बरार प्रान्त में निवास और ग्रन्थ-रचना भी की होगी। देखें "मध्यप्रात-मध्य-भारत व राजपूताना के प्राचीन जैन स्मारक" की भूमिका पृ० १७।



(१३) ग्रन्थ नं० २१६/ख

# भव्यानन्द-शास्त्र

कर्ता—श्रीमत्पाण्ड्य क्षमापति

विषय वैराग्य

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—६॥। इञ्च    चौड़ाई—६ इञ्च    पत्रसंख्या १२

*प्रारम्भिक भाग—*

श्रिय क्रियाद्यस्य महाभिषेके निरस्तगाम्भीर्य्यगुण पयोधि ।
स्वकीयरत्नप्रकरैः प्रदोपशोभां विधत्ते स जिनश्रियं व ॥१॥
नैलाब्जैरम्बुजैरुद्भवनयनजलैर्दिव्यतीर्थाम्बुपूरै
र्भावे शुद्धे सुगन्धैर्निजविमलकसज्ज्ञानदीपे प्रदीपे ।
वाग्जालैरक्षतार्थैः सह विधुविशदैरक्षतैर्भक्तिरूपै—
र्धूपैरिन्द्रार्च्यमानं जिनवरचरणसरोजातयुग्मं भजामि ॥२॥
शीलाकरान् दिव्यगुणाभिरामान् विशुद्धशाखाब्धिसुधांशुबिम्बान् ।
भक्त्या महत्या प्रणमामि नित्यं समन्तभद्रादिमुनीन्द्रमुख्यान् ॥३॥
नरेन्द्रमुख्यैरिह पूज्यपाद शीले समस्तेऽथ समन्तभद्रम् ।
गुरोरनिन्द्यैरकलङ्कमीडे श्रीवर्द्धमानं श्रुतपद्मभानुम् ॥४॥
वर्द्धमानाख्यया नित्य वर्धितोऽपि महीतले ।
असौ मुनिर्पतिश्चित्र गतमानकषायकृत् ॥५॥
आनन्दिताशेषचरित्रपूज्यश्रीनागचन्द्रमतिपुंगवस्य ।
निर्वाणमेतद् भुवि सद्बुधानां निर्वाणवृत्त प्रकटीकरोति ॥६॥
वाग्जालं सुधया गुणान्वितलसद्गाम्भीर्यमम्भोधिना
शान्तिं कैरवकान्तकान्तरुचिभिर्धैर्यं सुवर्णाद्रिणा ।
शीलं स्वामिभिरन्तरंगसरसत्वं तुल्यवृत्तिं नमो
आहृत्या सह सम्दधाति भवतः श्रीदेवचन्द्रप्रभो ॥७॥
गुणाहितोजित (?) सुमनोऽन्वितोऽपि सुवर्णकर्णाभरणाञ्चितोऽपि ।
श्रीपूज्यपादव्रतिपो र्विचित्रं विमुक्तभोगो भवभूषणाङ्क ॥८॥

निरस्तमोहैः सुजनैर्नतीहैः प्रशान्तभावैः प्रतिभावलोकैः ।
अस्मिन्प्रबन्धे सततं प्रमोदात्प्रचिन्तनीयानि पदानि सन्ति ॥९॥
यथा वस्तुस्थितिर्लोके तथा वक्ष्याम्यहं निजम् ।
रागद्वेषद्वयं हित्वा सदा शृण्वन्तु धीधनाः ॥१०॥
हिंसासक्तैर्मृषानन्दैर्दुर्व्यधैश्च खलैरपि ।
अभव्यमेव मत्काव्य भाव्य भव्यजनैः सदा ॥११॥
स्वभावसिद्धमभ्यस्य लोकस्य हि गुणागुणम् ।
अवाच्यमप्यहं वक्ष्ये भव्यबोधाय भावतः ॥१२॥
शुचिरुचितरभव्यानन्दनामैकपूज्यं मदगिरिशतकोटिं ग्रन्थमानन्दकंदं ।
पुलकवनवसन्तं पाण्ड्यभूनाथजातं सहजसुखसुधाब्धिं वीक्ष्य नन्दन्तु सन्तः ॥१३॥
निजकरठनिकटकटुरटद्घमधुकरनिनददत्तकर्णास्य ।
मिथ्यागजस्य विदलनविधिचतुरपटो मदीयकाव्यहरिः ॥१४॥
त्यक्त्वा जिनेन्द्रवचनामृतमात्मसारं कुर्वन्ति कुत्सितमृषावचनेषु रागम् ।
ये ते स्वमातृकुचदुग्धरसं विहाय मुग्धा पिबन्ति विषतोयमतिप्रमोहात् ॥१५॥

× × ×

मध्यभाग (पृष्ठ ६ श्लोक ६२—६३)

मृषापदं घोरभवाब्धिकंबु कृशोदरीकण्ठमिमं हि लोके ।
मनोजपूगीगलमित्यवेद्य मनोविकारं मनुजाः श्रयन्ते ॥६२॥
हृद्रोलाङ्गूललीलाचलमघमधुलिट् पद्मकोशं भवाब्जि-
न्यम्भः क्रीडद्रथांगं घनपिशितमयं यत्कुचं कामिनीनाम् ।
कुम्भं दम्भोलिपाणिद्विरदपरिलसत्कुम्भमित्येव मुक्त्वा
चित्रं तत्रैव सक्तं सकलजगदिदं धिङ् नृणां चेष्टितानि ॥६३॥

× × ×

अन्तिम मंगलाचरण एवं प्रशस्ति :—

सम्यक्त्वाङ्कुरसंभवः प्रविलसद्वैराग्यमूलान्वितः
शुद्धानन्दविलोलपल्लवकुलः कल्याणशाखान्वितः ।
ज्ञानोद्यत्कुसुमान्वितः शमफलाकीर्णो विचारास्पदम्
जीयादार्हतपारिजातविटपी संसारसन्तापहः ॥

नानानव्यरसास्पदं बुधजनानन्दाम्बुपूरप्रद:
भव्याह्लादसमर्पणैकनिपुणो ग्रन्थ: प्रबोधाकर: ।
युक्त्या श्रीजिनदत्तभूमिपमहावंशाब्धिपूर्णेन्दुना
पाण्ड्यक्ष्मापतिना विशुद्धमतिना सौख्याश्रयो निर्मित: ॥

आचन्द्रार्कं जगत्यस्मिन् धर्माधर्मसमन्विते ।
भव्यानन्दाभिधो ग्रन्थो भव्यानन्दाय वर्धताम् ॥

नम: श्रीशान्तिनाथाय कर्मारण्यदवाग्नये ।
धर्मारामवसन्ताय बोधाम्भोधिसुधांशवे ॥

इति श्रीमत्पाण्ड्यभूपतिविरचितो भव्यानन्द: समाप्त: ।

इस भव्यानन्द ग्रन्थ के कर्ता पाण्ड्य क्ष्मापति के परिचय के साथ साथ इनका कुछ वंशपरिचय भी दे देना मैं समुचित समझता हूँ। प्राचीन समय में उत्तर मधुरा (मथुरा) में उग्रवंशीय वीरनारायण आदि अनेक शासक हुए हैं। पीछे इस वंश का राजा साकार हुआ जो किसी समय एक भील लड़की पर आसक्त होकर अपनी धर्मपत्नी महिषी श्रीयला देवी एवं पुत्ररत्न जिनदत्त राय से उदासीन हो गया। बल्कि एक दिन उक्त भील की लड़की पद्मिनी के दुराग्रह से वह अपने प्रिय पुत्र जिनदत्त राय तक को भी मरवा डालने के लिये उतारू हो गया। पर भील कन्या के इस षड्यन्त्र का अपने कुलगुरु के द्वारा रानी श्रीयला को पता लग गया। तुरन्त ही उक्त रानी श्रीयला ने कुलदेवी पद्मावती की आज्ञा के साथ अपने प्रियपुत्र जिनदत्त राय को सुरक्षा के ख्याल से वहा से कहीं अन्यत्र भेज दिया। जिनदत्त राय मथुरा से चलकर कुछ दिनों के बाद वर्तमान मैसूर राज्यान्तर्गत पोम्बुच में पहुँच एवं वहीं राज्य स्थापित कर शासन करने लगे। इसके बाद इन्होंने दक्षिण मधुरा (मथुरा) के प्रसिद्ध पाण्ड्यवंशी राजा वीर पाण्ड्य की पुत्री पद्मिनी और मनोरमा के साथ विवाह किया। इस मधुरा पाण्ड्यवंश का विस्तृत वर्णन जो हिन्दी विश्वकोष के १३ वें भाग में छपा है उसी में इस वंश के राजाओं के नाम की एक लम्बी तालिका भी दी गयी है। तालिकान्तर्गत राजाओं के अतिरिक्त इसी वंश की एक शाखा वर्तमान दक्षिण कन्नड़ जिला में भी राज्य शासन करती रही। उसकी राजधानी बारकूर थी। उस समय यह बारकूर दक्षिण भारत में एक समृद्धिशाली नगरी मानी जाती थी[1]। दक्षिण के स्वर्गीय तातावार्य आदि कई सुप्रसिद्ध विद्वानों ने पाण्ड्यवंश को जैन

१—"वीर" वर्ष ७ अंक १२ १३ में प्रकाशित मेरा 'बारकूर' लेख देखें।

बतलाया है। हाँ, इसके सभी शासक तो जैन नहीं माने जा सकते किन्तु दक्षिण कन्नड प्रान्त में इस वंश के जितने राजा हुए हैं वे सब के सब जैन धर्मावलम्बी थे।

कुछ दिनों के बाद राजा जिनदत्त राय को पार्श्वचन्द्र तथा नेमिचन्द्र नामक दो पुत्र हुए। पार्श्वचन्द्र ने अपने शासन-काल मे अपने नाम के अन्त में "पांड्यभैरव राज" यह एक नूतन उपनाम जोड दिया। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि पूर्व में भैरवी पद्मावती के द्वारा अपने पिता की रक्षा एवं अपनी माता पाड्यवंशीय होने से ही इन्हों ने उक्त उपनाम को अपनाया। पीछे इस वंश के सभी राजा इस "पांड्यभैरव" उपनाम को बडे आदर के साथ अपने नाम के आगे जोडने लगे। उक्त जिनदत्त राय के वंश के राजा पीछे दक्षिण कन्नड जिला में भी शासन करने लगे। इन राजाओं की राजधानी वर्तमान कार्कल में थी। कार्कल में शासन करने वाले इस वंश के राजाओं की नामावली इस प्रकार है :—

(१) पांड्य देवरस अथवा पांड्य चक्रवर्त्ती, (२) लोकनाथ देवरस (३) वीरपांड्य देवरस (४) रामनाथ अरस (५) भैररस ओडेय (६) वीर पांड्य भैररस ओडेय (७) अभिनव पाड्य देव अथवा पांड्य चक्रवर्त्ती (८) हिरिय भैरव देव ओडेय (९) इम्मडि भैरव राय (१०) पाण्ड्यप्प ओडेय (११) इम्मडि भैरव राय (१२) रामनाथ (१३) वीर पाण्ड्य[१]।

उक्त तालिका में प्रतिपादित शासकों में से ही मुझे कविवर पाण्ड्य क्ष्मापति को खोजना है। पर खेद है कि इन्होंने अपनी रचना में कहीं भी अपना समय न देकर इस कार्य को कुछ गहन बना दिया है। खैर, इन्होने इस भव्यानन्द ग्रन्थ के प्रारंभिक ६ष्ठ एवं ७म श्लोकों में क्रमशः नागचन्द्रमती तथा देवचन्द्र इन दोनों का सादर स्मरण किया है। अब मुझे इन्हीं दोनों पाण्ड्य क्ष्मापति के स्मरणीय व्यक्तियों के समय के आधार पर इनका समय निर्धारित करना है। उल्लिखित नागचन्द्रजी वही नागचन्द्र हैं जिन्होंने धनंजयकृत विषापहार स्तोत्र की एक संस्कृत टीका लिखी है। वह टीका "भवन" मे मौजूद है और इसकी प्रशस्ति यथास्थान "भास्कर" की किसी किरण में दी जायगी। इस टीका से पता चलता है कि मूलसंघान्तर्गत देशीगण, पुस्तक गच्छ के ललितकीर्त्तिजी के आप अग्रशिष्य थे। साथ ही साथ नागचन्द्रजी ने अपनी टीका में यह साफ साफ लिख दिया है कि इनके गुरु ललितकीर्त्तिजी पनसोगे (मैसूर) के निवासी एवं तौळव देश के प्रवासी थे। दक्षिण कन्नड प्रान्त की बोल-चाल की भाषा 'तुळु' है इसी से यह तौळव देश कहलाता है। यही ललितकीर्त्ति जो तौळव देशान्तर्गत कार्कल के राज्यशासक भैरव

१—"दक्षिण कन्नड जिल्लेय प्राचीन इतिहास" देखें।

राजवंश के मनोनीत राजगुरु थे। बल्कि इन्हीं के समक्ष में शकसम्वत् १३५३ वि० सं० १४८८ में वीर पाण्ड्य के द्वारा कार्कल में बाहुबली स्वामी की विशाल प्रतिमा की प्रतिष्ठा की गयी थी। इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि नागचन्द्रजी विक्रमीय १४ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और १५ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के विद्वान् हैं। सुहृद्वर पं० जुगल किशोरजी ने "जैन हितैषी" भाग १२, अङ्क २ ३ में इनका जो समय विक्रमीय १६ वीं शताब्दी निर्धारित किया है वह मुझे ठीक नहीं जचता है। क्योंकि आपके इस समय-निर्णय से तो गुरु ललितकीर्त्ति और शिष्य नागचन्द्र में कम से कम सौ सवा सौ वर्षों का एक विशाल अन्तर पड़ जाता है। साथ ही साथ पं० जुगल किशोरजीने नागचन्द्र के मुनित्व पर जो सन्देह प्रकट किया है वह भी प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रारंभिक छठे श्लोक से दूर हो जाना चाहिये। क्योंकि इस पद्य द्वारा इन्हें 'यतिपुंगव' आदि विशेषणों से स्मरण किया है।

अब देवचन्द्रजी को लीजिये। यह देवचन्द्र इन्हीं नागचन्द्र के अन्यतम गुरु एवं उल्लिखित ललितकीर्त्तिजी के शिष्य हैं। नागचन्द्रजी ने अपनी विषापहार की टीका में इन्हें भी अपना गुरु स्पष्टतया लिखा है। बल्कि उल्लिखित ललितकीर्त्तिजी के शिष्य जिनयज्ञफलोदय के कर्त्ता मुनि कल्याणकीर्ति ने अपने ग्रन्थ के प्रारंभ में स्वगुरु की प्रशंसा करते हुए 'देवचन्द्रमुनीन्द्राख्यौ दयापाल' प्रसन्नधी' ' इस पद्यांश में उक्त देवचन्द्र का भी उल्लेख कर दिया है। इनका यह जिनयज्ञफलोदय ग्रन्थ शक १३५० में समाप्त हुआ था।* श्रवणबेलगोल के शक सम्वत् १३२० के नं० १०५ (२५४) वाले शिलालेख में प्रतिपादित नागचन्द्र और देवचन्द्र हमारे पूर्वोक्त नागचन्द्र—देवचन्द्र से प्राय' अभिन्न होंगे। क्योंकि दोनों के गणगच्छादि एक हैं और साथ ही साथ ३५ साल के समय का यह अन्तर भी कोई असम्भवपरक महान् अन्तर नहीं है।

अस्तु उल्लिखित प्रमाणों के आधार से मैं यह कह सकता हूँ कि ललितकीर्त्ति देवचन्द्र कल्याणकीर्त्ति नागचन्द्र और पाण्ड्य क्षमापति ये सब के सब लगभग सम सामयिक विद्वान् थे। सम्भव है कि ये लोग एक साथ कार्कल में रहे हों। साथ ही साथ यह भी सिद्ध हो जाता है कि देवचन्द्र नागचन्द्र और कल्याणकीर्त्ति ये तीनों ललितकीर्त्ति के शिष्य थे। इससे भव्यानन्द शास्त्र के कर्त्ता पाण्ड्य क्षमापति का समय भी एक प्रकार से हल हो जाता

---

* प्रशस्ति संग्रह पृष्ठ १८ देखें।

† देशीगणे रत्नगुणेऽन्वितपुस्तकाख्यगच्छेऽङ्गुलेश्वरबलिप्रवति प्रभूता।
सद्वासमाग-देवोदय रविजिन-भेय-प्रभा-चासचन्द्रा—

(जैनशिलालेख-संग्रह पृ २ )

है। मेरा अनुमान है कि अपने ग्रन्थ (भव्यानन्दशास्त्र) में नागचन्द्र-देवचन्द्र को स्मरण करने वाले यह पाण्ड्य क्ष्मापति ही बाहुबलीमूर्त्ति के प्रतिष्ठापक वीर पाण्ड्य भैररस (शक १३५३ सन् १४३१—३२) अथवा उनके उत्तराधिकारी अभिनव पाण्ड्यदेव या पाण्ड्यचक्रवर्ती (शक १३७९ सन् १४५७) हो।

मैंने पाण्ड्य क्ष्मापति का वंश परिचय जो ऊपर दिया है वह भव्यानन्द के अन्त के "नानानव्यरसास्पदं बुधजनानन्दाश्रुपूरप्रदो भव्याह्लादसमर्पणैकनिपुणो ग्रन्थ प्रबोधाकर । युक्त्या श्रीजिनदत्तभूमिपमहावंशाब्धिपूर्णेन्दुना पाण्ड्यक्ष्मापतिना विशुद्धमतिना सौख्याश्रयो निर्मित ॥ इस श्लोक के आधार पर। आशा है कि यह वंश-मन्तव्य आपत्तिजनक नहीं होगा।

---

(१४) ग्रन्थ नं० $\frac{२१७}{ख}$

# बीजकोश

कर्त्ता—

---

विषय—मन्त्रशास्त्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६।।। इञ्च चौडाई ६ इञ्च

---

*प्रारम्भिक भाग—*

तेजो भक्तिर्विनयः प्रणव ब्रह्मप्रदीपवामाश्च ।
वेदोऽब्जदहनध्रुवमादि (?) ओमिति ख्यातम् ॥
मायातत्व शक्तिर्लोकेशो ह्रीं त्रिमूर्त्तिबीजेशौ ।
कूटाक्षर क्षकारं मलवरयूं पिण्डमष्टमूर्त्तिश्च ॥
बाणा पञ्च द्रां द्रीं क्लीं ह्रीं सु इति ठवर्णमखिलेन्दुः ।
क्ष्वीं स्वीं ह स सुर्राममुद्राक्षरमथवाग्भक्ष्वैं (?) च ॥
द्विप क्रों स्वाहा बीजाः क्षितिजलदहनानीलाम्बरं क्रमशः ।
खगपतिपञ्चाक्षरमित्यां वा इं तत्कशां च स्यात् ॥

× × ×

*मध्यभाग (पूर्व पृष्ठ ३ पंक्ति ७)*

*अथ मन्त्र-व्याकरणम्*

अरहंता असरीरा आइरिया उवज्झया मुणिणो।
पढमक्खर णिप्पएणो ओंकारो पंचपरमेट्ठी॥
अकारादिहकारपर्यन्तमेकाक्षरलक्षणमुदाहरिष्याम'।

वृत्तासन गजवाहनं हेमवर्ण कुकुमगन्ध लवणास्वाद जम्बूद्वीपविस्तीर्णं चतुर्मुखं अष्टबाहुं कृष्णलोचनं जटामुकुटधारिण सितवस्त्र मौक्तिकाभरण अतीवबलगभीर पुल्लिङ्ग अकारस्य लक्षणं। पद्मासन गजव्यालवाहन सितवर्णं शंखचक्रवज्राङ्कुशधारिणं द्विमुखमष्टहस्तं अहिभूषणं शोभनाविमहाद्युति त्रिंशत्सहस्रयोजनविस्तीर्णं स्त्रीलिंगं आकारस्य माहात्म्यम्। कूर्मवाहनं चतुरस्रानन हेमवर्णं वज्रायुधं एकयोजनविस्तीर्णं द्विगुणायाममुत्सेध कषायस्वादं वज्रवैडूर्यवर्णालंकृत मदुस्वरं नपुंसकं सर्वप्रियमिकारस्य माहात्म्यम्।

× × ×

*अन्तिम भाग—*

पुटपल्लवदीपाश्च दर्भग्रथनरोधगा'।
वश्ये द्वेषे च शान्तौ च स्तम्भाकृष्टौ च पीडने॥
मन्त्रमध्यगतं नाम पुटमन्ते च पल्लवम्।
प्रारंभे दीपनं विद्धि द्व्युत्तरान्त विदर्भकम्।
एकाक्षरान्तरे नाम ग्रथन रोधनं पुन'॥
आद्यन्तसयुतं नाम तेष्विष्टं सम्यगाचरेत्।
वश्याकर्षणसंस्तम्भपीडाद्वेषापसारकम्॥
शान्तिपुष्टि क्रमात्सोमयमेन्द्रेशानवह्निषु।
भवत्यभ्यचनेभूत्यासु मुखं स्थीयते बुधै'॥
दिक्पालायनभिज्ञानं कार्यसिद्धिश्च निष्फला।
पूर्वाह्ने वश्यकर्माणि मध्याह्ने प्रेमनाशनम्॥
अपराह्णे प्रसार च पीडा सन्ध्यागता भवेत्।
शान्तिकर्मार्धरात्रे च प्रभाते पौष्टिक तथा॥
वश्य मुक्त्यान्यकर्माणि सव्यहस्तेन योजयेत्।
स्म कुशाम्बुजसल्लोघ प्रवालं पंचिशंखका॥
मुद्राकृष्टिवश्ये शान्तिविद्वेषे रोधपोडने।

कुण्डस्वस्तिकपंकजकुक्कुटकुलिशाख्यभद्रपीठानि ।
उदयार्करागशशधरधूमहरिद्रा सिता वर्णाः ॥
त्र्यस्रकं शस्यते कुंडं वश्याकर्षणपीडने ।
शान्तिपुष्टौ चतुष्कोणं वृत्तं द्वेषापसारके ॥
स्फटिकं च प्रवालं च मुक्ता स्वर्णं च बीजकम् ।
शान्तिपुष्टौ वशाकृष्टौ विद्वेषोच्चाटरोधने ॥
शान्तिपुष्टौ तु रुद्राक्षैः पद्माक्षैः स्फटिकैर्जपेत् ।
तद्वर्णयुतसत्पुष्पैर्जपः स्यात्सर्वकर्मणि ॥
मोक्षशान्तिवशाकृष्टे स्तम्भद्वेषेऽपसारके ।
अंगुष्ठमध्यमानामितर्जनीभिर्मणिं चरेत् ॥
अङ्गुलानि समुद्दिष्टं द्वाडशाकृष्टिवश्ययो ।
अष्टावेवाभिचारेषु नवशान्तिकपौष्टिके ॥
वषड् वश्ये फडुच्चाटे हुं द्वेषे पौष्टिके स्वधा ।
वौषडाकर्षणे स्वाहा शान्तिके घेऽथ पीडने ॥
शान्तिपुष्ट्यो सितं पुष्पं वश्याकृष्टौ च रक्तकम् ।
अभिचारे तु धूमं स्यात् स्तम्भने पीतमादिशेत् ॥
सर्वधान्यकृतैर्लाजैस्तण्डुलैर्गुडान्विते ।
चन्दनागुरुकर्पूरगुग्गुलाज्यघृतादिभिः ॥
पायसान्नादतैर्मिश्रैर्वा क्षीरवृक्षोद्भवादिभिः ।
समिद्भिश्च चरेद्धोमं प्रतिष्ठाशान्तिपौष्टिके ।

॥ इति षट्कर्मविधि समाप्त ॥

यह एक मन्त्र-शास्त्रान्तर्गत अल्पकाय ग्रन्थ है। इसका नाम "बीजकोष" है। देवताओं के मूल मन्त्र को बीज मन्त्र कहते है। यह इसी का संग्रह—कोश है। तन्त्र-शास्त्र में प्रत्येक देवता के भिन्न भिन्न बीजमन्त्र कहे गये है।

इसमें सर्व-प्रथम बीजाक्षर सामर्थ्य प्रकरण दिया गया है। इस प्रकरण में भिन्न भिन्न बीजाक्षरों की सामर्थ्य बतलायी है। जैसे ह्रीं आं ह्रीं स्मृतिनाशनम्, ह्रीं मां ह्रीं आकर्षणम्, ह्रीं ईं ह्रीं पुष्टिकरणम्, ह्रीं ईं ह्रीं आकर्षणम् आदि। दूसरा प्रकरण है बीजकोष। इसमें अन्यान्य बीजाक्षरों का उल्लेख मिलता है। जैसे—

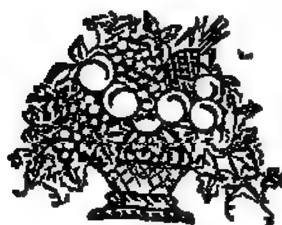
ओंकारं पृथिवीबीजं पकारं आपदुच्यते।
ओंकारं अग्निबीजं वा प्रणवं सर्वदर्शने॥

स्वाकारं मारुतं ज्ञेयं हकारं व्योमनिश्चयम्।
टकारं वह्निबीजं च क्रौं गजवशाङ्कुशे॥

तीसरा प्रकरण मन्त्र व्याकरण है। इस प्रकरण में अकारादि से लेकर क्षकार-पर्यन्त प्रत्येक बीजाक्षर का लक्षण बतलाया गया है। बल्कि इसी प्रकरण का आरम्भिक कुछ अंश अन्तिम भाग के पहले मध्य भाग शीर्षक में दे दिया गया है। इसके आगे अक्षरों के वर्ण लिङ्ग वश्य आकर्षण आदि कार्यभेद तथा पारस्परिक बीजाक्षरों की मित्रता शत्रुता आदि का उल्लेख किया गया है। अन्तिम मन्त्रपरीक्षा प्रकरण में मास-फल नक्षत्र-फल, राशिफल पञ्चमूल-फल आदि की चर्चा कर कौन कौन बीजाक्षर किन किन कार्यों में व्यवहरणीय हैं एवं उनकी क्या विधि है इत्यादि बातों पर संक्षेप में विचार किया गया है। साथ ही इसमें यह भी बतलाया है कि गुरु-मन्त्रोपदेश देने के पहले शिष्य की भले प्रकार से जाँच कर ले। अन्त में उच्चाटनादि प्रत्येक कर्म की दिशा काल मुद्रा आसन, हवनकुण्ड माला समिध् ( लकड़ी ) आदि आवश्यक बातों पर भी साधारण प्रकाश डाला गया है।

हिन्दू मन्त्रशास्त्र में भी मूल बीजाक्षरों पर काफी प्रकाश पड़ा है। जैसे—अन्नपूर्णा बीज शूलिनी बीज हयग्रीव बीज, नरहरि-बीज श्रीविद्या-बीज श्मशानकालिका-बीज चाण्डालिनी बीज कर्णपिशाची बीज मूषिकाविषहर-बीज सुखप्रसव बीज निगडबन्धन मोक्षण-बीज आदि।

अब रही बात इसके रचयिता के विषय में। किन्तु इस विषय के साधन के अत्यन्ताभाव से इस बीज कोश के कौन रचयिता है यह नहीं कहा जा सकता।



(१५) ग्रन्थ नं० २२२/ख

# प्रतिष्ठा-कल्पटिप्पणम् (जिनसंहिता)

कर्त्ता—कुमुदचन्द्र

विषय—प्रतिष्ठा

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३॥ इञ्च चौडाई ५॥। इञ्च पत्रसंख्या ३६

प्रारम्भिक भाग—

श्रीमाघनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्त्तितनूभवं
कुमुदेन्दुरहं वच्मि प्रतिष्ठाकल्पटिप्पणम् ॥१॥
विज्ञानं विमलं यस्य भासते विश्वगोचरम् ।
नमस्तस्मै जिनेन्द्राय सुरेन्द्राभ्यर्चिताङ्घ्रये ॥ २ ॥
प्रपश्यन्तु नः प्रज्ञां पञ्चापि परमेष्ठिनः ।
यद्वचोऽमृतसेकेन शीतीभूतमिदं जगत् ॥ ३ ॥
एवं जिनगुणस्तोत्रकृतमङ्गलसत्क्रियः ।
संग्रहीष्यामि भव्येभ्यो हिताय जिनसंहिताम् ॥ ४ ॥
शास्त्रावतारसम्बन्धं प्रथमं प्रतिपाद्यते ।
श्रेयोऽर्थिनः समाधाय चेतः शृणुत धीधनाः ॥ ५ ॥
इत्यनुश्रूयते वीरश्चरमस्तीर्थनायकः ।
विपुलाद्रौ सभां दिव्यामध्युवास कदाचन ॥ ६ ॥
तत्रासीनं तमभ्येत्य वन्दित्वा मगधेश्वरः ।
उपेत्य गणभृज्ज्येष्ठमप्राक्षीज्जिनसंहिताम् ॥ ७ ॥
चराचरजगद्बन्धुस्ततस्तां जिनसंहिताम् ।
भगवान्गौतम-स्वामी मागधं प्रत्यबूबुधत् ॥ ८ ॥
ततः प्रभृत्यविच्छिन्नसर्गपर्वक्रमागता ।
मयाधुना यथोक्तेन संहिता संप्रकाश्यते ॥ ९ ॥

मागधप्रश्नमुद्दिश्य गौतमः प्रत्यवोचत।
इतीदमनुसंधाय प्रबन्धोऽयं निबध्यते ॥ १० ॥
इंगत हितमेतस्यां भव्यानामितिसंहिता।
जिनसम्बन्धिनी सेयं नाम्ना स्याज्जिनसंहिता ॥ ११ ॥
हितार्थिनो ये जिनसंहितामिमा पठन्तु ते श्रद्दधत सहादरम्।
प्रकाशिता विश्वपदार्थदर्शिभिः प्रमाणभूतेषु यभैः कवीश्वरैः ॥१२॥
पूज्य पूजार्हमर्हन्तं प्राप्यपायादिसम्पदम्।
प्रणिपत्य प्रवक्ष्यामि पूजासार समुच्चयम् ॥ १३ ॥
पूज्यो जिनपतिः पूजा पुण्यहेतुर्जिनार्चना।
फलं स्याभ्युदया मुक्तिः भव्यात्मा पूजकः स्मृतः ॥ १४ ॥

× × × ×

मध्य भाग ( पत्र पृष्ठ १४ पंक्ति ३)

ओं शक्रवह्नियमनैऋ तिवार्धिवायुयक्षेशशेषशशिसंज्ञकलोकपालाः।
पूर्वादिकासु विभवेन दिशासु वेद्यास्तिष्ठन्तु लब्धकुसुमादिकयज्ञभागाः ॥
ओं भक्तित सुरवरैरिति पञ्चवर्णमाणिक्यचूर्णरजसा परिकल्पितायाः।
वेद्या विदिक्षु कुलिशान् विलिखेत् सुरेन्द्रो रुन्द्रश्रिया परिगतो वरवज्रचूर्णं ॥

अथैव वेदिकाविधानं परिसमाप्य तत्सम्मालाम नं पञ्चोपचारविधिना वेदिकायां लिखिततद्दलकोष्ठनिवासिदेवान् पञ्चगुरुमुख्यान् समाहूय संस्थाप्य सन्निधीकृत्य संपूज्य वेदिकामलङ्कृत्य वेदिकाविधानं कर्तव्यम्।

इति श्रीमाघनन्दिसुतश्रीवादिकुमुदचन्द्रपण्डितदेवविरचिते प्रतिष्ठाकल्पटिप्पणे वेदिका विधानम् समाप्तम्।

× × × × ×

*अन्तिम भाग—*

इति श्रीमाघनन्दिसिद्धांतचक्रवर्तिसुतचतुर्विधपाण्डित्यचक्रवर्तिश्रीवादिकुमुदचन्द्र पण्डितदेवविरचिते प्रतिष्ठाकल्पटिप्पणे यन्त्राद्यनविधिः समाप्त।

इसके रचयिता पण्डितदेव कुमुदचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती माघनन्दी के पुत्र हैं। यह बात मङ्गलाचरण के प्रथम श्लोकान्तर्गत 'तनूभव' एवं प्रशस्तिगत 'सुत' शब्द से स्पष्ट प्रतीत होती है। परन्तु पण्डित नाथूरामजी प्रेमी ने "माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला" में प्रकाशित 'सिद्धान्तसारादिसंग्रह' के 'ग्रन्थकर्ताओं का परिचय' में

'तनूभव' शब्द का उल्लेख करते हुए भी कोष्ठक में इन कुमुदचन्द्र को माघनन्दी सिद्धान्त-चक्रवर्त्ती का शिष्य लिखा है—यह बात विचारणीय है। संभव है कि कहीं कहीं * शिष्य के अर्थ में पुत्र शब्द का प्रयोग देख कर प्रेमीजी ने यह लिख दिया हो। किन्तु यहाँ तो "तनूभव" शब्द है, जिसका अर्थ एकान्ततः शरीरजन्मा अर्थात् आत्मज होता है। बल्कि प्रेमीजी ने मद्रास की ओरियन्टल लायब्रेरी में संगृहीत "प्रतिष्ठाकल्पटिप्पण" या "जिनसंहिता" के प्रारम्भिक भाग और प्रशस्ति को उद्धृत करते हुए जिस कुमुदचन्द्र को उस "परिचय" मे माघनन्दी का शिष्य बतलाया है उसी कुमुदचन्द्र को M. Rangacharya M A., और S Kuppuswami Shastri M.A, इन दोनों प्रख्यात पुरातत्त्ववेत्ताओं ने A Descriptive Catalogue of the Sanskrit manuscripts in the Government Oriental manuscript Library Madras नामक ग्रन्थतालिका में उक्त पुस्तक का उद्धरण कर सम्पादक की हैसियत से 6345 पृष्ठ में साफ साफ पुत्र लिखा है। सभव है कि सिद्धान्त-विपरीत समझ कर कोष्ठक में इन्हें प्रेमीजी ने शिष्य लिख दिया हो। परन्तु मैं यह समझता हूँ कि कुमुदचन्द्र जी ने वंश-परम्परागत पाण्डित्य-परिपाटी को प्रकटित करने के लिये ही गौरवरूप मे विद्वद्वर्य माघनन्दी का अपने को पुत्र होना स्वीकार किया है।

इसका मतलब यह नहीं है कि मैं प्रेमीजी के मन्तव्य का खण्डन कर रहा हूँ। इससे मेरा केवल यही अभिप्राय है कि उल्लिखित 'तनूभव' शब्द का अर्थ पुत्र होना चाहिये। बल्कि अन्यान्य विद्वानों ने भी इसका यही अर्थ किया है और माना है। मैं समझता हूँ कि प्रेमीजी भी उक्त शब्दो का अर्थ एकान्तत' शिष्य नहीं मानते। अन्यथा इसे कोष्ठक मे रखने की उन्हें जरूरत ही क्या थी? मैं ऊपर यह बात सप्रमाण लिख चुका हूँ कि कहीं कहीं पुत्र, सुत, अपत्य एव सूनु शब्द का प्रयोग शिष्य अर्थ में भी होता है। अत इस विषय पर मेरा सर्वथा कदाग्रह नहीं है, पर हाँ विचारणीय अवश्य है।

अस्तु माघनन्दी नाम के कई आचार्य हो गये है। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि कुमुदचन्द्र के पिता या गुरु कौन से माघनन्दी है। "कर्नाटक कविचरिते" के मतानुसार एक माघनन्दो का समय सन् १२६० (वि॰ स॰ १३१७) है। इन्होंने शास्त्र

* "दे [जी] यात् श्रीधरदेवशिष्यतिलक' श्रीवासुपूज्यो मुनि
त्रैविधस्तदपत्यमुत्पादयेन्दुख्यातसैद्धान्तिक ।
तत्पुत्र कुमुदेन्दुयोगितिलकस्तत्सूनुरत्युन्नत
सिद्धान्तार्णवचन्द्रमा सुखपद श्रीमाघनन्दी व्रती ॥"

(शास्त्रसारसमुच्चय की कन्नड टीका पृष्ठ ३२१)

सारसमुच्चय की एक कन्नड टीका लिखी है एवं माघनन्दी श्रावकाचार के कर्त्ता तथा पदार्थसार के टीकाकार भी आप ही हैं। शास्त्र सारसमुच्चय के मूल रचयिता भी माघनन्दी ही कहे जाते हैं *। शास्त्र सारसमुच्चय के टीकाकार ने अपनी गुरु परम्परा यों बतलायी है —

× × × × ( १ ) श्रीधरदेव ( २ ) वासुपूज्य ( ३ ) उदयेन्दु ( ४ ) कुमुदेन्दु या कुमुदचन्द्र ( ५ ) माघनन्दी। इससे सिद्ध होता है कि इस कन्नड टीकाकार माघनन्दी के गुरु कुमुदचन्द्र हैं। अगर प्रस्तुत प्रतिष्ठाकल्प के कर्त्ता यही कुमुदचन्द्र टीकाकार माघनन्दी के गुरु हों तो इनका भी समय लगभग यही होना चाहिये। श्रवणबेलगोळ के शिलालेख नं० १२१ ( ३३४ ) में भी एक कुमुदचन्द्र और माघनन्दी का उल्लेख मिलता है। इसमें कुमुदचन्द्र को माघनन्दी का गुरु† लिखा है। इस शिलालेख का समय शक सम्वत् १२०५ ई० सन् १२८२ है। शिलालेख-गत कुमुदचन्द्र और माघनन्दी मेरे प्रस्तावित कुमुदचन्द्र और माघनन्दी से अभिन्न मालूम होते हैं। बल्कि कन्नड कविचरिते के सुयोग्य सम्पादक आर० नरसिंहाचार्य एम० ए० भी इन्हीं कुमुदचन्द्र को शास्त्र-सारसमुच्चय के टीकाकार माघनन्दी का गुरु मानते हैं‡ उपर्युक्त शास्त्र सारसमुच्चय के टीकाकार माघनन्दी की गुरु परम्परा में कुमुदचन्द्र के पहले इनके पिता या गुरु माघनन्दी का नाम न मिलकर उदयेन्दु का नाम दृग्गोचर होता है, अतः इसी कुमुदचन्द्र को टीकाकार माघनन्दी का गुरु मानने में कुछ खटकता है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि पता नहीं लगता कि कुमुदचन्द्र के पिता या गुरु कौन से माघनन्दी हैं। बल्कि मेरे मन में यह भी विचार उठ खड़ा होता है कि शास्त्र सारसमुच्चय के मूल रचयिता एवं टीकाकार माघनन्दी एक ही हैं। अर्थात् कुमुदचन्द्र के शिष्य माघनन्दी ही शास्त्र सार समुच्चय के कर्त्ता हैं और इन्हीं की स्वोपज्ञ कन्नड टीका भी है। फिर भी इसे मैं अभी सिद्धान्त रूप में स्वीकार नहीं करता हूँ। इस विषय पर अभी खोज करने की जरूरत है। आश्चर्य नहीं कि

---

* श्रीमाघनन्दी योगीन्द्रः सिद्धांताम्भोधिचन्द्रमाः।
अचीकरद्विचित्रार्थं शास्त्रसारसमुच्चयम् ॥

(सिद्धांतसारादि संग्रह)

† नमः कुमुदचन्द्राय विद्याविशदमूर्त्तये।
यस्य वाक्चन्द्रिका भव्यकुमुदानन्दवर्द्धिनी ॥३॥
नमो नम्रजनानंदस्यन्दिने माघनन्दिने।
जगत्प्रसिद्धसिद्धान्तवेदिने चित्प्रमोदिने ॥४॥

‡ भास्कर भाग २ किरण ४ पृष्ठ १६२ देखें।

स्वगुरु कुमुदचन्द्र के समान शिष्य इस माघनन्दी ने स्व-रचित शास्त्र-सारसमुच्चय पर स्वयं कन्नड वृत्ति लिखी है।

"कर्नाटक कविचरिते" के मुख्य लेखक आर० नरसिंहाचार्य एम० ए० उक्त ग्रंथ के भाग २ पृष्ठ ११ में एक वादिकुमुदचन्द्र का परिचय इस प्रकार देते हैं।—"इन्होंने जिनसंहिता नामक प्रतिष्ठा कल्प पर कन्नड व्याख्यान लिखा है। उसके प्रारम्भ में यह श्लोक है" यों लिख कर प्रस्तुत प्रतिष्ठाकल्प में उद्धृत उल्लिखित प्रारम्भिक श्लोक एवं प्रशस्ति को ही प्रमाण रूप में आप प्रस्तुत करते हैं। यहाँ पर भी आपने मेरे पूर्व कथनानुसार कुमुदचन्द्र को माघनन्दी सिद्धान्त-चक्रवर्त्ती का शिष्य न लिख कर पुत्र ही लिखा है। बल्कि प्रेमी जी ने भी इसका अनुवाद करते हुए "अनेकान्त" वर्ष १ पृष्ठ ४६० में इन्हें पुत्र ही लिख कर मेरे मन्तव्य को और प्रशस्त कर दिया है। आर० नरसिंहाचार्य जिस वादिकुमुदचन्द्र को जिनसंहिता का कन्नड व्याख्याता बतलाते हैं वही कुमुदचन्द्र मेरी समझ में उसके मूल कर्त्ता भी हैं। क्योंकि टीकाकार के परिचय में आप ने जो प्रारम्भिक श्लोक और प्रशस्ति उद्धृत किये हैं वे ज्यों के त्यों मूलग्रंथ के हैं। अतः जिनसंहिता के मूलकर्त्ता तथा कन्नड व्याख्याता एक ही कुमुदचन्द्र कहने में मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं मालूम पड़ती। 'कवि-चरिते' के सम्पादक आगे लिखते हैं कि "देवचन्द्र के 'रामकथावतार' (ई० सन् १७१७) से मालूम होता है कि कुमुदचन्द्र ने एक रामायण भी लिखी है। इसका समय लगभग ई० ११०० होना चाहिये।" यहाँ विचारणीय बात यह उपस्थित होती है कि आप ही के लेखानुसार शास्त्र सार-समुच्चय के टीकाकार माघनंदी के समय (ई० सन् १२६० ) से इस वादिकुमुदचन्द्र (ई० सन् ११०० ) का समय बहुत पीछे पड़ जाता है, जिसे मैंने ऊपर जिनसंहिता के मूलकर्त्ता एवं इस माघनंदी का गुरु बतलाया है। पता नहीं कि आप ने किस प्रमाण के आधार पर उल्लिखित वादिकुमुदचन्द्र का समय ग्यारहवीं शताब्दी बतलाया है। मालूम होता है कि आप की दृष्टि में माघनन्दी के गुरु कुमुदचन्द्र और यह वादि-कुमुदचन्द्र भिन्न भिन्न व्यक्ति हैं।

इस जिनसंहिता में निम्नलिखित प्रकरण हैं —

(१) पूज्य पूजकपूजकाचार्य-पूजाफल-प्रतिपादन (२) त्रैवर्णिकाचार-विधि (३) सकलीकरण विधि (४) ध्वजारोहण-विधि (५) अङ्कुरार्पण-विधि (६) विमानशुद्धि (७) होमविधि (८) वेदिका-विधान (९) अभिषेक-मण्डप-विधान*। भवन की यह प्रति शुद्ध है तथा भाषा शैली परिमार्जित है। किन्तु अन्तिम भाग देखने से ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ अपूर्ण है।

---

* भवन की ग्रंथ-तालिका से।

(१६) ग्रन्थ नं०-$\frac{२२३}{ख}$

# पञ्चनमस्कार-चक्र

कर्ता—

विषय—मन्त्रशास्त्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—१४ इञ्च चौड़ाई—८ इञ्च पत्रसंख्या ५६

*प्रारम्भिक भाग—*

येनास्याभवसंसिण्यामाद्यात्पुत्पाद्य केवलम् ।
कृत्स्नो मन्त्रविधिः प्रोक्तस्तस्मै × × × × × ॥

ॐ णमो अरहन्ताणम् । ॐ णमो सिद्धाणम् । ॐ णमो आइरियाणम् । ॐ णमो उवज्झाया-
याणम् । ॐ णमो लोए सव्वसाहूणम् ।

शान्तिकपौष्टिकवशीकरणाकर्षणमोहनोच्चाटनविद्वेषणरक्षणाद्यनेकक्रियासाधनस्य चौरारि-
मारिकृतोपसर्गविनाशनस्य सर्वव्याधिविनाशनस्य व्याघ्राहिद्विपडाकिनीभूत राक्षसपिशाचादि
भयापहारस्य स शत्रु मदभञ्जनस्य स्वर्गापवर्गसाधनस्य इह लोकेऽभ्युदयावहस्य पञ्च
नमस्कारचक्रस्य विधान व्याख्यास्याम ।

× × × × × ×

*मध्यभाग (पूर्व पृष्ठ १५ पंक्ति १२)*

साधकनामगर्भ हकारमालिख्य बाह्ये ग्लौंकारेण प्रच्छाद्य तद्बाह्ये सानुस्वारहकार
छकाराभ्यामावेष्ट्य चतस्रर्व वज्रविद्ध कृत्वा बाह्ये पृथ्वीवलय लेख्य कुङ्कुमादिभिर्भूर्जे
लिखित्वा सूत्रेण सिक्थकेन वेष्टयित्वा जले प्रक्षिपेत् । अग्निस्तंभनम् ।

सम्यग्दृष्टिजनस्य एषा विद्या दातव्या । मिथ्यात्वनास्तिकयुक्ताना धर्मद्वेषिणां मिथ्या
दृशामपुण्यधर्माणाञ्च न दातव्या । कदाचिद्दत्ते(?) सति (?) तदा महापातकं प्रयुक्त भवति ।

एवं पञ्चनमस्कारचक्रं समाप्तमिति ।

यह पंचनमस्कार-चक्र मन्त्रशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ है। मन्त्र ग्रन्थों का मूल "विद्यानु
वाद" नाम का पूर्व कहा जाता है। जैन मंत्र साहित्य में 'नमस्कार-मन्त्रकल्प'

नाम का एक ग्रंथ है और इसके कर्त्ता सिंहनन्दी कहे जाते हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में कहीं भी कर्त्ता का उल्लेख नहीं है। इसलिये पता नहीं कि उक्त कल्प ही यह है या इससे भिन्न। इसका निर्णय दोनों ग्रन्थों के मिलाने से ही हो सकेगा। 'कल्प' भवन में नहीं रहने से इसके रचयिता के विषय में इस समय अधिक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में शान्ति, पौष्टिक, उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन एवं मोहनादि मंत्र-शास्त्र सम्बन्धी भिन्न भिन्न अनेक विषयों को प्रतिपादित करने की ग्रन्थकर्त्ता ने प्रतिज्ञा की है। पाँचवें पृष्ठ के पूर्व-पृष्ठ में पूर्वाह्न को वसन्त, मध्याह्न को ग्रीष्म, अपराह्न को प्रावृट्, प्रदोष को शिशिर, अर्धरात्रि को शरद्, प्रत्यूष को हेमन्त लिख कर शरद् में शान्ति, हेमंत मे पौष्टिक, वसंत में वश्य, फिर हेमत और शरद् में आकर्षण, ग्रीष्म में विद्वेषण, प्रावृट् में उच्चाटन एव शिशिर में मारण-विधान का सकेत किया गया है।

नवम पृष्ठ के पूर्व पृष्ठ मे कौन से ग्रह शरीर के किस अङ्गोपाङ्ग में कौन सी बाधा पहुँचाते हैं—इसका यों खुलासा किया है :—

सूर्य शिरोवेदना, चांद्र मुखपीडा, शुक्र पृष्ठ बाधा, भौम उदर-शूल, बुध हृदय-व्यथा, बृहस्पति कटिपीडा, शनि दोनों बगलो मे दर्द, राहु जङ्घावेदना तथा केतु पैरों मे पीडा पहुचाते हैं। इसी पृष्ठ में यह दिग्दर्शन कराया गया है कि सायकाल मे राहु और शनि की शांति के लिये नेमिनाथ की सूर्य और मङ्गल के शांत्यर्थ वासुपूज्य की, केतु की शांति के निमित्त पार्श्वनाथ की, शुक्र तथा चन्द्रमा की शांति के हेतु चांद्रप्रभ की एव गुरु की शांति के हेतु शांतिनाथ तीर्थङ्कर की पूजा करनी चाहिये।

फिर पृष्ठ दस में ग्रहों के दुष्परिणाम यों लिखे गये हैं :—

चांद्र और शुक्र से शिरःपीडा, बुध और बृहस्पति से हृदयशूल, शनि और राहु से उदरवेदना, सूर्य और मगल से हृदय-कम्पन, पुनः चन्द्र और शुक्र से जल से समुत्पन्न मौक्तिक आदि रत्न एवं सुन्दर धान्य आदि द्रव्यों का क्षय, बुध और बृहस्पति से सुवर्ण, रेशम, रत्न और चावल आदि पदार्थों की क्षति, शनि और राहु से नीलादि रत्न, तिल, मूग, उडद, चना एवं कोदो आदि अन्न का नाश तथा सूर्य और मंगल से सूर्यकांत, लालमणि, मूगा वगैरह द्रव्यों का क्षय होता है।

अन्यान्य कतिपय मत्र-शास्त्रों की तरह प्रस्तुत ग्रंथ मे भी कपाल, कफन, कई पशुओं की हड्डियों, रोओं, नररक्त, श्मशान की आग आदि अपवित्र वस्तुओं का भी प्रयोग लिखा मिलता है। हाँ इसमें विशेषता सिर्फ यही है कि मारण आदि क्रूर कर्म का विधान नहीं पाया जाता है। यंत्र-मत्र रचना-विधि मंत्र-साधन विधि, प्रत्येक तीर्थङ्कर के यक्ष-यक्षियों की मंत्र-सिद्धि भी सक्षेप मे इसमे प्रतिपादित की गयी है।

अन्त में यह स्पष्ट लिखा है कि इस ग्रन्थ-गत मंत्र शास्त्र का मर्म सम्यग्दृष्टि को ही देना चाहिये न कि नास्तिक, धर्मद्वेषी, मिथ्यादृष्टि और अपने धर्म में अविश्वास करने वालों को।

---

(१७) ग्रन्थ न०—२२४/क

# कल्याणकारक

कर्ता—उग्रादित्याचार्य

---

विषय वैद्यक

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—१३। इञ्च चौड़ाई—८। इञ्च पत्रसंख्या ११५

---

*प्रारम्भिक भाग—*

श्रीमत्सुरासुरनरेन्द्रकिरीटकोटि माणिक्यरश्मिनिकरार्चितपादपीठ: ।
तीर्थादिपूजितवपुर्वृषभो बभूव सासान्नकारणजगत्त्रितयैकबन्धु: ॥ १ ॥
तं तीर्थनाथमधिगम्य विनम्य मूर्ध्ना सत्प्रातिहार्यविभवादिपरीतमूर्तिम् ।
सप्रश्रयातिकरयोरकृतप्रणामा पप्रच्छुरित्थमखिलं भरतेश्वराद्या: ॥ २ ॥
प्राग्भोगभूमिषु जना जनितातिरागा: कल्पद्रुमार्पितसमस्तमहोपभोगा: ।
दिव्यं सुखं समनुभूय मनुष्यभावे स्वर्गं ययु: पुनरपीष्टसुखं सुपुण्या: ॥ ३ ॥
अत्रोपपादचरमोत्तमदेहवर्गा: पुण्याधिकास्त्वनपवर्त्य महायुषस्ते ।
अन्ये दराद्यपरमायुष एव लोके तेषां महद्भयमभूदिह दोषकोपात् ॥ ४ ॥
देव ! त्वमेव शरणं शरणागतानामस्माकमाकुलधियामिह कर्मभूमौ ।
शीतातिवातहिमवृष्टिनिपीडितानां कालक्रमात्कदशनाशनतत्पराणाम् ॥ ५ ॥
नानाविधामयभयाद्दतिदु:खितानामाहारभेषजनिरुक्तिमजानतां न: ।
तत्संस्यरक्षणविधानमिहातुराणां का वा क्रिया कथयतामथ लोकनाथ ॥ ६ ॥
विज्ञाप्य देवमिति विश्वजगद्धितार्थं तूष्णीं स्थिता गणधरप्रमुखप्रधाना: ।
तस्मिन्महासदसि दिव्यनिनादयुक्ता वाणी ससार सरसा वरदेवदेवी ॥ ७ ॥
तत्रादित: पुरुषलक्षणमामयानामप्यौषधान्यखिलकालविशेषणञ्च ।
संक्षेपत: सकलवस्तुचतुष्टयं सा सर्वज्ञसूचकमिदं कथयाञ्चकार ॥ ८ ॥

दिव्यध्वनिप्रकटितं परमार्थजातं साक्षात्तथा गणधरोऽधिजगे समस्तम्।
पश्चाद् गणाधिपनिरूपितवाक्प्रपञ्चमिष्टार्थनिर्मलधियो मुनयोऽधिजग्मुः ॥ ९ ॥
एवं जनान्तरनिबन्धनसिद्धमार्गादायातमायतमनाकुलमर्थगाढम्।
स्वायम्भुवं सकलमेव सनातनं तत्साक्षात् श्रुत श्रुतधरैः श्रुतकेवलिभ्यः ॥ १० ॥
प्रोद्यज्जिनप्रवचनामृतसागरान्त· प्रोद्यत्तरङ्गनिसृताल्पसुशीकरं वा।
वक्ष्यामहे सकललोकहितैकधाम कल्याणकारकमिति प्रथितार्थयुक्तम् ॥ ११ ॥
नवातिवाक्पटुतया न च काव्यदर्पाद्वैवान्यशास्त्रमदभजनहेतुना वा।
किन्तु स्वकीयतप इत्यवधार्य वर्यमाचार्यमार्गमधिगम्य विधास्यते तत् ॥ १२ ॥
स्वाध्यायमाहुरपरे तपसां हि मूलमन्ये च वैद्यवरवत्सलताप्रधानम्।
तस्मात्तपश्चरणमेव मया प्रयात्नादारभ्यते स्वपरसौख्यविधायि सम्यक् ॥१३॥
अत्रापि सन्ति बहवः कुटिलस्वभावा दुर्द्दृष्टयो द्विरसना' कुमतिप्रयुक्ताः।
छिद्राभिलापनिरता' परबाधकाश्च घोरोरगैरुपमिता' पुरुषाधमास्ते ॥१४॥
केचित्पुन स्वगृहमान्यगुणा परेषां दुष्यन्त्यशेषविदुषां न हि तत्र दोष·।
पापात्मनां प्रकृतिरेव परेष्वसूयापैशून्यवाक्परुषलक्षणलक्षितान्ता ॥१५॥
केचिद्विचाररहिता प्रथितप्रतापा' साक्षात्पिशाचसदृशा' प्रचरन्ति लोके।
तैं' किं यथा प्रकृतमेव मया प्रयोज्यं मात्सर्यमार्यगुणवर्ज्यमितिप्रसिद्धम् ॥१६॥
एवं विचार्य शिथिलीकृतमत्सरोऽहं शास्त्रं यथाधिकृतमेवमुदाहरिष्ये।
सर्वज्ञवक्त्रनिसृतं गणदेवलब्ध पश्चात्प्रजापतिपर परयावतीर्णम् ॥१७॥
विद्ये ति सत्प्रकटकेवललोचनाख्या तस्यां यदेतदुपपन्नमुदारशास्त्रम्।
दैवं वदन्ति पदशास्त्रविशेषणाज्ञा एतद्विदन्त्यथ पठन्ति च तेऽपि वैद्याः ॥१८॥
वेदोऽयमित्यपि च वेदविचारलाभस्तत्रार्थसूचकवच' खलु धातुभेदात्।
आयुश्च तेन सह पूर्वनिबद्धमुच्चच्छास्त्राभिधानमपरं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥१९॥
एवं विधस्य भुवनैकहिताधिकोयद्वैद्यस्य भाजनतया प्रविकल्पिता ये।
तानत्र साधुगुणलक्षणसाम्यरूपान् वक्ष्यामहे जिनपतिप्रतिपन्नमार्गान् ॥२०॥

× × × × ×

मध्यभाग (परपृष्ठ ५६ पंक्ति १६ श्लोक १ से)

जिनमनघमनन्तज्ञाननेत्राभिराम त्रिभुवनसुखसम्पन्मूर्त्तिमत्यादरेण।
प्रतिदिनमतिभक्त्यानम्य वक्ष्याम्युदारच्छजगतमुपदंशाख्यात्तशूकाभिधानम् ॥१॥
वृषणविधिविवृद्धिप्रोक्तदोषक्रमेण प्रकटतरचिकित्सामेहनोत्पन्नशोफी।
श्वितरतु विधियुक्तां चोपदंशाभिधाने निखिलविषमशोफेष्वेवमेव प्रयोगः ॥२॥

स भवति खलु शोफो द्विप्रकारो नराणामवयवनियतोऽन्यः सर्वदेहाद्भवश्च ।
सकलतनुगतो वा मध्यदेहाद्भर्ध्वदेहे श्वयथुरतिसुकष्टश्चिद्व्युत्केतरार्क्तः ॥३॥
श्वयथुरतिविशालो विद्रधिः कुम्भरूपो गुलरहिततया तु प्रन्थयः सम्प्रदिष्टा ।
गुलयुतपिन्काख्याः शोफकालानुरूपैरपहननविशेषैस्साधनैस्साधयेत्तम् ॥४॥
ज्वरयुतपरिदाहश्वासतृष्णातिसारप्रकटबलविहीनारोचकाङ्गारयुक्तः ।
यमसदनमवाप्नोत्याशु शून्याङ्गयष्टिमनुगतत्वनूनं ह्युष्कामोः मनुष्यः ॥५॥

× × × ×

*अन्तिम भाग —*

श्रीविष्णुराजपरमेश्वरमौलिमाला संलालिताङ्घ्रियुगल सकलागमज्ञ ।
आलापनीयगुणमुन्नतसन्मुनीन्द्रः श्रीनन्दिनन्दितगुरुगुरूर्जितोऽहम् ॥५१॥
तस्याज्ञया विविधभेषजदानसिद्ध्यै सद्वैद्यवत्सलतप परिपूरणार्थम् ।
शास्त्रं कृतं जिनमतोद्धृतमेतदुपत् कल्याणकारकमिति प्रथितं धरायाम् ॥५२॥
इत्येतदुत्तरमनुत्तरमुत्तमज्ञै विस्तीर्णमस्तु युतमस्तसमस्तदोषैः ।
प्राग्भाषितं जिनवरैरधुना मुनीन्द्रोग्रादित्यपण्डितमहागुरुभिः प्रणीतः ॥५३॥
सर्वार्धाधिकमागधीयविलसद्भाषाविशेषोज्वलत्
प्राणापायमहागमादवितथं संगृह्य संक्षेपतः ।
उग्रादित्यगुरुर्गुणैरुद्गणैरुद्भासि सौख्यास्पदम्
शास्त्रं संस्कृतभाषया रचितवान् इत्येष भेदस्तयोः ॥५४॥
सालंकारं सशब्दं श्रवणसुखमथप्रार्थितं स्वार्थविद्भिः
प्राणायुःसत्वबोधं प्रकटबलकरं प्राणिनां स्वास्थ्यहेतुः ।
विद्युद्भूतं विचारक्षमिमिति कुशला शास्त्रमेतद्यथावत्
कल्याणाख्यं जिनेन्द्रैर्विरचितमधिगम्याशु सौख्यं लभन्ते ॥५५॥
अत्याद्द्विसहस्रकैरपि तथा शीतोत्तरैर्भूते (?)
संचरितैरिहाधिकमहावृत्तैर्जिनेन्द्रोदितैः
प्रोक्तं शास्त्रमिदं प्रमाणनयनिक्षेपैर्विचार्यार्थवत् ।
स्थेयाच्छ्रीरविचन्द्रतारकमलं सौख्यास्पदं प्राणिनाम् ॥५६॥
इति जिनवक्त्रनिर्गतसुशास्त्रमहाम्बुनिधेः सकलपदार्थविस्तृततरंगकुलाकुलतः ।
उभयभवार्थसाधनतटद्वयभासुरतो निसृतमिदं हि शीकरनिभं जगदेकहितम् ॥५७॥

इत्युग्रादित्याचार्यकृतकल्याणकोत्तरे नानाविधकल्पकल्पनासिद्धये कल्पाधिकारः पञ्चमो ऽध्यायोऽप्यादितः पञ्चविंशपरिच्छेदः ।

× × × × × ×

शालाक्यं पूज्यपादप्रकटितमधिकं शल्यतन्त्रं च पात्र-
स्वामिप्रोक्तं विषोग्रग्रहशमनविधिः सिद्धसेनैः प्रसिद्धैः ।
काये या सा चिकित्सा दशरथगुरुभिर्मेघनादैः शिशूनाम्
वैद्यं वृष्यञ्च दिव्यामृतमपि कथित सिंहनादैर्मुनीन्द्रैः ॥
अष्टाङ्गमप्यखिलमत्र समन्तभद्रैः प्रोक्त सविस्तरवचोविभवैर्विशेषात ।
संक्षेपतो निगदितं तदिहात्मशक्त्या कल्याणकारकमशेषपदार्थयुक्तम् ।
वेङ्गीशत्रिकलिङ्गदेशजननप्रस्तुत्यसानूत्कट
प्रोद्यद्वृक्षलतावितानविरतैः सिद्धैश्च विद्याधरैः ।
सर्वैर्मान्दरकन्दरोपमगुहाचैत्यालयालङ्कृते
रम्ये रामगिराविदं विरचितं शास्त्रं हित प्राणिनाम् ॥*

इस वैद्यक ग्रन्थ कल्याणकारक के रचयिता आचार्य उग्रादित्य जी हैं। इस के प्रशस्तिगत ५१ वें श्लोक मे इन्हो ने अपने गुरु को श्रीनन्दि नाम से याद किया है। पता नहीं चलता कि यह श्रीनन्दि जी कौन हैं। हाँ श्रवणबेलोलस्थ शिलालेख नं० ४९३ ( शक १०४७ ) में एक श्रीनन्दि का उल्लेख मिलता है अवश्य, मगर इनके शिष्य उग्रादित्य न होकर सिंहनन्दि हैं। बल्कि इनकी शिष्यपरम्परा मे उग्रादित्य का नाम कहीं उपलब्ध नहीं होता।

प्रायश्चित्तचूलिका एव योगसार के कर्त्ता गुरुदास के गुरु का नाम भी श्रीनन्दि है। किन्तु यहाँ भी मालूम नहीं होता कि उग्रादित्य के गुरु यही है या दूसरे। भास्कर भाग १ किरण ४ पृष्ठ ७८ में प्रकाशित नन्दिसंघ की पट्टावली मे भी एक श्रीनन्दि का नाम आया है इसमें इनका समय वि० स० ७४९ अर्थात् ८ वीं शताब्दी बतलाया गया है। वहाँ इन्हें उज्जैनी के पट्टाधीश लिखा है। इसी प्रकार श्रीचन्द्र के ( वि० स० १०७० ) गुरु भी श्रीनन्दि कहे गये हैं। आचार्य वसुनन्दि ने अपने श्रावकाचार में एक श्रीनन्दि का उल्लेख किया है जो इनके प्रगुरु थे। अनुमानत इनका समय ११ वीं शताब्दी होता है। क्योंकि इनके प्रशिष्य वसुनन्दि १२ वीं शताब्दी के हैं। आचार्य उग्रादित्यजी अपने गुरु श्रीनन्दि के नामोल्लेख के साथ साथ इनके गण गच्छादि की भी चर्चा कर गये होते तो आपके बारे मे बहुत कुछ ऊहापोह करने की गुंजायश होती पर ऐसा नहीं होने से हमारे उग्रादित्य जी के श्रीनन्दि यों ही सन्देहास्पद बने रहते हैं। इन्हीं साधनों के अभाव मे उग्रादित्य जी के विषय मे भी कुछ नहीं लिखा जा सकता।

* ये अन्तिम तीन श्लोक 'भवन' की प्रति में नहीं हैं।

उल्लिखित ५१ वें श्लोक से यह भी विदित होता है कि उग्रादित्य के गुरु श्रीनन्दि जी को राजा विष्णुराज परमेश्वर बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे। पर ज्ञात नहीं कि यह विष्णुराज कौन हैं।

उग्रादित्य जी ने "वेङ्गीशत्रिकलिङ्गदेशजननप्रस्तुत्यसानूत्कटः" इत्यादि श्लोक में यह दरसाया है कि त्रिकलिङ्ग देश में रामगिरि पर्वत के ऊपर जिनमन्दिर में समस्त प्राणियों के हितार्थ यह ग्रन्थ रचा गया। हिन्दीविश्वकोष के विज्ञ सम्पादक के मत में 'त्रिकलिङ्ग जनपद (देश) मंद्राज के उत्तर पलिकट नामक स्थान से लेकर उत्तर गजाम और पश्चिम में तिपदि बेल्लारि, करनूल, विदर तथा चान्दा तक विस्तृत है'। परन्तु श्रीयुत नन्दूलाल दे, एम० ए० बी० एल० अपनी "The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India" नामक कोष में मध्य भारत को त्रिकलिंग मानते हैं। मुझे दे महोदय का मत ही युक्ति-युक्त जचता है। इसका कारण यह कि विश्वकोष के सम्पादक श्रीयुत नगेन्द्रनाथ वसु और उक्त भौगोलिक कोष के सम्पादक श्रीयुत नन्दूलाल दे दोनों महाशयों ने मध्य प्रान्तीय नागपुर से २४ मील उत्तर विद्यमान रामटेक को ही प्रसिद्ध प्राचीन रामगिरि माना है। हाँ हिन्दी विश्वकोष में मैसूर राज्यस्थ वेङ्गलूर जिला में भी एक रामगिरि लिखा मिलता है अवश्य मगर यह रामगिरि हिन्दी विश्वकोष के मान्य सम्पादक के द्वारा प्रतिपादित त्रिकलिङ्ग देश के अन्तर्गत नहीं आता। इसलिये इन उल्लिखित प्रमाणों के आधार पर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि कल्याणकारक के कर्ता उग्रादित्याचार्य के द्वारा निर्दिष्ट त्रिकलिङ्ग वर्तमान मध्य-प्रान्त एवं तदन्तर्गत रामगिरि नागपुर से २४ मील उत्तर अवस्थित रामटेक ही है। आज भी यहा पर पहाड़ी के नीचे कुछ प्राचीन दिगम्बर जैनमन्दिर मौजूद हैं। दिगम्बर जैन प्राचीन काल से ही इस स्थान को एक पवित्र क्षेत्र मानते आ रहे हैं। बहुत कुछ सम्भव है कि उग्रादित्य जी ने इसी सुप्रसिद्ध प्राचीन क्षेत्र को अपने ग्रन्थ-प्रणयन का एक प्रशान्त एवं पुनीत निवासोपयुक्त स्थान समझा हो।

कभी कभी यह बात भी ध्यान में आ जाती है कि उग्रादित्यजी के गुरु श्रीनन्दि के परम भक्त उपयुक्त विष्णुराज परमेश्वर शायद कलचूरि राजवंश के हों। क्योंकि यह कलचूरि राजवंश मध्यप्रान्त का सबसे बड़ा राजवंश था और इसका प्राबल्य ८ वीं ९ वीं शताब्दी में बहुत बढ़ा चढ़ा था। एक समय यह साम्राज्य बंगाल से गुजरात एवं बनारस से कर्नाटक तक फैल गया था। किन्तु बहुत दिनों तक इसका अस्तित्व नहीं रह सका। कलचूरि नरेशों में बहुतेरे नरेश जैनधर्म के प्रधान पृष्ठपोषक थे। साथ ही साथ कितने ही कलचूरि शासकों ने अपने को त्रिकलिङ्गाधिपति कहा है। कलचूरि नरेशों का जैन

धर्मावलम्बी होना एवं अपने को त्रिकलिङ्गाधिपति कहना ये दोनों उग्रादित्याचार्य के द्वारा कल्याणकारक में वर्णित विष्णुराज परमेश्वर को कलचूरि राजवंशीय सिद्ध करने में अवश्य सहायक हैं। हाँ, इस समय मेरे सामने मध्यप्रान्त में शासन करनेवाले भिन्न भिन्न राजाओं की वंश-तालिका नहीं रहने के कारण विष्णुराज परमेश्वर को निश्चित रूप से कलचूरि राजवंशीय लिखने से विरत होना पड़ता है।

उग्रादित्य जी ने अपने इस कल्याणकारक में निम्नलिखित आचार्यों के नाम लिये हैं:—

(१) पूज्यपाद (२ पात्रस्वामी सभवत पात्रकेशरी) (३) सिद्धसेन (४) दशरथ गुरु* (५) मेघनाद (६) सिंहनाद (७) समन्तभद्र। इनके अतिरिक्त आपने इस ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रयोगों मे यत्र-तत्र निम्नलिखित आचार्यों के दृष्टान्तरूप से वैद्यक-सम्बन्धी मत दरसाया है —

(१) श्रुतकीर्त्ति (२) कुमारसेन (३) वीरसेन (४) जटाचार्य। इन में पूज्यपाद, सिद्धसेन, समन्तभद्र, श्रुतकीर्त्ति, कुमारसेन, वीरसेन, जटाचार्य ये प्रसिद्ध आचार्यों में हैं। पात्रस्वामी प्राय' प्रख्यात पात्रकेशरी हों। अब रहे उल्लिखित मेघनाद एवं सिंहनाद। ये नाम तो मेरे लिये अपरिचित से ज्ञात होते हैं।

जैनवैद्यक शास्त्र बारहवें प्राणावायपूर्व से प्रादुर्भूत माना जाता है। अन्तिम पद्य से यह भी ज्ञात होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ अन्यान्य वैद्यशास्त्र के मर्मज्ञ पूर्व जैनाचार्यों के वैद्यक-ग्रन्थों का आश्रय लेकर ही प्रणीत हुआ है। वैदिक मतावलम्बी विद्वानो ने वैद्यशब्द की निष्पत्ति वेद से की है, पर उग्रादित्य जी केवलज्ञानरूपी विद्या से मानते हैं यह एक विशेषता है। इन्होंने अपने ग्रन्थ का नाम जो कल्याणकारक रक्खा है वह वैद्यक शास्त्र के लोककल्याणसम्पादक इस अनुत्तम ध्येय का विवेचन करके ही रक्खा है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में आप जैनवैद्यक शास्त्र की प्राचीनता, वैद्यकशास्त्र की व्युत्पत्ति, इसका उद्देश, चिकित्सा का प्रयोजन आदि विषयों पर भी प्रकाश डालने से विरत नहीं हुए हैं। प्रशस्तिगत श्लोक से ज्ञात होता है कि आचार्य पूज्यपाद जी ने शालाक्य, शिरोभेदन आदि, पात्रस्वामी आचार्य ने शल्यतन्त्र, आचार्य सिद्धसेन जी ने विष एवं ग्रह-शान्ति-विधान, आचार्य दशरथ गुरुजी और मेघनाद जी ने शारीरिक चिकित्सा, सिंहनाद जी ने महारोग-शान्ति-विधान एव आचार्य समन्तभद्र जी ने अष्टाङ्ग आयुर्वेद का प्रणयन किया है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त औषधकल्प, सिद्धान्त रसायनकल्प, भिषक्प्रकाश, जगत्सुन्दरी, कनक दीपक, रससार, सिद्धनागार्जुनकल्प, रसतन्त्र तथा मेरुतन्त्र आदि कई संस्कृत वैद्यक ग्रन्थों

* सेनगण के आचार्य वीरसेन के शिष्य एक दशरथ हुए हैं। (भास्कर भाग १, किरण १, पृष्ठ ४४)

का उल्लेख एवं कुछ ग्रन्थों का अंश यत्र तत्र उपलब्ध होता है। किन्तु खेद की बात है इन समुज्ज्वल जैनसाहित्य रत्नों की खोज एवं प्रकाशन की ओर अभीतक जैनसमाज का ध्यान नहीं गया है। कन्नड साहित्य में भी सोमनाथ के कल्याणकारक, पार्श्वदेव की सुकरयोगरत्नावलि चालुक्यवंशीय कीर्त्तिवर्मा के गोवैद्य, मंगराज के खगेन्द्रमणिदर्पण, अभिनवचन्द्र के हयशास्त्र देवेन्द्र मुनि की बालग्रह-चिकित्सा अमृतनन्दि मुनि का अकारादि वैद्यनिघण्टु एवं श्रीधरदेव के वैद्यामृत के नाम भी विशेष उल्लेखनीय हैं। बड़े हर्ष से यह कहने का सौभाग्य प्राप्त होता है कि उक्त इन ग्रन्थों में से आचार्य उग्रादित्य कृत यह कल्याणकारक सोलापुर के जिनवाणी के अनन्यभक्त सेठ रावजी सखाराम दोशी जी के सदुद्योग से एवं खगेन्द्रमणिदर्पण मद्रास के विश्वविद्यालय के ग्रन्थप्रकाशन विभाग से प्रकाशित हो रहे हैं।

साधनाभाव से उग्रादित्य के समय का पता लगाना असम्भव सा हो रहा है। इनके गुरु श्रीनन्दि और विष्णुराज परमेश्वर के विषय में कुछ पता लगने से इनके समय निर्णय करने में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। हाँ श्रुतकीर्त्ति और कुमार सेन का नाम जो आपने प्रशस्ति में लिया है सो उनका भी कुछ पता नहीं है—कहीं इनके गण गच्छ एवं गुरुपरम्परा की बातें जरा भी ज्ञात हो जातीं तो भी उग्रादित्य जी के समय सम्बन्धी प्रश्न को थोड़ा बहुत हल हो जाने की सम्भावना थी। क्योंकि एक नाम के अनेक जैनाचार्य हो गये हैं, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि ये अमुक श्रुतकीर्त्ति आदि ही हैं। श्रवणबेल्गोल के निम्न लिखित शिलालेखों में श्रुतकीर्त्ति के नाम कई जगह आते हैं। जैसे ४०, १०५ और १०८ में। इनका समय क्रमशः शकसम्वत् १०८५ १३२० और १३५५ है। इसी प्रकार कुमारसेन का नाम ५४ एवं ४९१ के शिलालेखों में आता है और इनका समय भी क्रमशः शकसम्वत् १०५० तथा १०४७ है। उल्लिखित और आचार्यों के १०वीं शताब्दी के पहले के होने के कारण उग्रादित्य के समयनिर्णायक समस्यामें उनका नाम नहीं लेकर इन्हीं दो बाद के आचार्यों का नाम लेना उचित समझा गया। उल्लिखित शिलाले खाङ्कित कुमारसेन का काल विक्रम सम्वत् ११८५ अर्थात् १२ वीं शताब्दी सिद्ध होता है*। इसी प्रकार उपर्युक्त शिलालेखों के आधार से शक सम्वत १०८५ में अङ्कित प्रथम श्रुतकीर्त्ति का समय विक्रम सम्वत् १२२० अर्थात् १३वीं शताब्दी एवं शकसम्वत

---

* भास्कर भाग १ किरण ४ पृष्ठ १ ८ में प्रकाशित काष्ठसंघ की पट्टावली में भी दो कुमारसेन के नाम आये हैं पर इनके समय का उल्लेख उसमें नहीं है।

सेनगण की पट्टावली से ज्ञात होता है कि इस गण में भी एक कुमारसेन हुए हैं। (भास्कर भाग १ किरण २ ३ पृष्ठ ३७)

१३२० और १३५५ में उद्धृत द्वितीय श्रुतकीर्त्ति का समय विक्रम संम्वत् १४५५ तथा १४६० अर्थात् १५ वीं शताब्दी सिद्ध होता है। क्योंकि वि० सं० १२२० के श्रुतकीर्त्ति का अस्तित्व वि० सं० १४६० में कायम रहना असम्भव समझ कर ही प्रथम और द्वितीय दो श्रुतकीर्त्ति सिद्ध करने पड़े हैं। भास्कर भाग १ किरण ४, पृष्ठ ७८ में प्रकाशित नन्दी-संघ की पट्टावली में भी एक श्रुतकीर्त्तिका नाम आया है। साथ ही साथ इसमें इनका समय वि० सं० १०७१ अङ्कित है और यह श्रुतकीर्त्ति भेलसा (C P) के पट्टाधीश बतलाये गये हैं। खैर उग्रादित्यजी के समय-निर्णय के लिये जो जो साधन मेरे दृष्टिगोचर हुए उन्हें पाठकों के समक्ष मैंने उपस्थित कर दिया ताकि इनके समय निर्धारित करने में विद्वानों को सहायता मिले। सम्भव है कि इस ग्रन्थ की आद्योपान्त आलोचना करने से कुछ साधन मिल जाय। क्योंकि ग्रन्थों के परिचय लिखने में मुझे प्रत्येक ग्रन्थ का आमूलाग्र अवलोकन करने का अवकाश नहीं मिलता।

जहाँतक मैं देख पाया हूँ इस ग्रन्थ की भाषा एवं रचनाशैली मुझे परिष्कृत ज्ञात हुई है। इस कल्याणकारक ग्रन्थ में निम्नलिखित प्रकरण हैं :—

(१) स्वास्थ्य-संरक्षण (२) गर्भोत्पत्तिविचार (३) स्वास्थ्यरक्षाधिकार-सूत्रवर्णन (४) धान्यादिगुणागुणविचार (५) अन्नपानविधि-वर्णन (६) रसायनविधि (७) व्याधि-समुद्देश (८) वातव्याधि-चिकित्सा (९) पित्तव्याधि-चिकित्सा (१०) श्लेष्मव्याधिचिकित्सा (११-१२) महाव्याधिचिकित्सा (१३-१४-१५ १६-१७) क्षुद्ररोग-चिकित्सा (१८) बालग्रह-भूतमन्त्राधिकार (१९) सर्पविषचिकित्सा (२०) शास्त्रसंग्रह-तन्त्रयुक्ति (२१) कर्म-चिकित्सा (२२) भैषजकर्मोपद्रवचिकित्सा (२३) सर्वौषधकर्मव्यापद्-चिकित्सा (२४) रसरसायनसिद्ध्यधिकार (२५) नानाविधकल्पाधिकार।

इस ग्रन्थ की श्लोक सख्या पाँच हजार बतलायी जाती है।



(१८) ग्रन्थ नं० $\frac{२२५}{ख}$

# जिनसंहिता

कर्ता—एकसंधि भट्टारक

विषय—संहिता (प्रतिष्ठा)

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—१४ इञ्च    चौड़ाई—८॥ इञ्च    पत्रसंख्या ८८

*प्रारम्भिक-भाग—*

मंगलं भगवानर्हन्मंगलं भगवान् जिनः ।
मंगलं प्रथमाचार्यो मंगलं वृषभेश्वरः ॥१॥
विज्ञानं विमलं यस्य भासते विश्वगोचरम् ।
नमस्तस्मै जिनेन्द्राय सुरेन्द्राभ्यर्चितांघ्रये ॥ ॥
वन्दित्वा च गणाधीशं श्रुतस्कंधमुपास्य च ।
संग्रहीष्यामि भव्यानां बोधाय जिनसंहिताम् ॥३॥
शास्त्रावतारसम्बन्धं तत्रादौ तावदुच्यते ।
श्रेयोऽर्थिनः समाधाय चेतः शृणुत धीधनाः ॥४॥
इत्यनुश्रूयते वीरः पुरा लोकत्रयीगुरुः ।
विपुलाद्रौ सभां दिव्यामध्युवास कदाचन ॥५॥
तत्रासीनं तमभ्येत्य मगधेन्द्रः कृताञ्जलिः ।
त्रिःपरीत्य समभ्यर्च्य स्तुत्वा नत्वा च पूरुषम् ६॥
ततोऽभ्येत्य गणाधीशं गौतमं मुनिपुंगवम् ।
नत्वा सप्रश्रयं धीमानप्राक्षीज्जिनसंहिताम् ॥७॥
भगवान् गौतमस्वामी मागधं प्रत्यबूबुधत् ॥८॥ (?)
ततः प्रभृत्यविच्छिन्नगुरुपर्वक्रमागता ।
सेयं मयाधुना साधु संक्षेपेण प्रकाश्यते ॥९॥
मागधप्रश्नमुद्दिश्य गौतमः प्रत्यभाषत ।
इदानीमनुसन्धाय प्रबन्धोऽयं निबध्यते ॥१०॥

× × ×

मध्य-भाग ( पृष्ठ ३८ पंक्ति १ श्लोक १ )

अथ मर्त्येश वक्ष्यामि शृणु तद्ग्रामलक्षणम् ।
यत्पृष्टमधुनाधीन त्वयावसरवेदिना ॥१॥
अस्मिन्नवसरे राजन् पूजादावाद्रिचक्रिणा ।
ग्रामभेदेषु कर्त्तव्य जिनधामेतिभाषिते ॥२॥
कीदृशं लक्षण तस्य ग्रामस्येति बुभुत्सुना ।
पृष्टः प्रसंगतोऽवोचद्गणीन्द्रो ग्रामलक्षणम् ॥३॥
तत्काल एव पृष्ट तद्भवतापि बुभुत्सुना ।
ततस्तु लक्षण तस्य सक्षेपेण निगद्यते ॥४॥
ग्राम॰ स्यान्नवधा ग्राम॰ पुर खेटश्च कर्वटम् ॥५॥
सवाह पत्तन द्रोण मठं व (?) घोष इत्यपि ॥५॥
ग्रामो वृत्ति परिक्षिति कुल सघात इत्यपि ।
स्याप्युचितं...... . ... ..............तत् ॥६॥
तदेव राजधानी स्यात्पुरं मर्त्येश्वरोचितम् ।
मध्ये जनपद क्लृप्त्वा दुर्गमुत्तुगगोपुरम् ॥७॥
गिरिनद्यावृतं खेट कर्वट पर्वतावृतम् ।
सवाहनामधेय स्याद्भू रे परिकलित ॥८॥
पत्तनं तत्समुद्रान्ते पञ्चोभिस्व (?) तीर्यते ।
द्रोणानामवगन्तव्यो नदीवारिधिवेष्टित ॥९॥
मठ वं (?) तद्भावयेधत्तु ग्रामपचतीवृतम् (?) ।
आश्रये घोष आभीरजनानामभिलप्यते ॥१०॥

× × ×

अन्तिम-भाग :—

पाठोत्सेधोष्टमात्रं स्यात्कुम्भमण्डयाद्रिसंयुत ।
पानिकान्ताश्रय कलस्तेषा नाह शराङ्गुल ॥'८।
उत्तर वियदोत्सेधधारने यत्र उच्छ्रय ।
मात्रा भर्द्ध कृता या स्युः कपोताश्रय उच्छ्रय ॥६९॥
यत्रो द्वौ निम्नउत्सेधप द्व नियत्रोच्छ्रयम् ।
प्रत्युत्सेधोर्द्ध मात्र स्याद्वृद्धियव पट्टिकोच्छ्रय ॥५०॥

कम्पोयद्वयोत्सेध उत्तरार्धं कवाक्षणि ।
आसैरायामि सघ विष्टमेतत्सुय　　येत् ॥७१॥
आयासाखिषु तेष्वतिविस्तारोऽकयवो भवेत् ।
अर्णाद्विद्वेतेवि　　　　　भूसम्मिते ॥७२॥
कोपोच्चयसपट्टं श्रयं　　येत्सुदृढं यथा ।
भमिकूपं खियोरूप दिक्षु　भद्रान्तरे भवेत् ॥७३॥
उपरि फलकान्यस्य　　　एयस्थुर्भिरन्तरम् ।
सम कुसुदक येन घन पश्चादपि स्थलम् ॥७४॥
नाटकस्थलतुल्यस्तत्पार्श्वभित्यक्षयो भवेत् ।
तद्भित्तिस्थलभित्ति च यथाशोभ प्रकल्पयेत् ॥७५॥
समद्रो वा कल्पोऽथ　　　　एयो भवेत् ।
वासोऽस्मिन्पञ्चताल स्यादुक्तार्थतापितोच्छ्रये ॥७६॥

× × – ×

जिनसंहिता (प्रतिष्ठापाठ) की इस भवन की प्रति में प्रशस्ति न होने की वजह से इसके प्रणेता भट्टारक एकसंधि के सम्बन्ध में सर्वथा मौनधारण करना पड़ रहा है। इधर उधर टटोलने से भी किसी उल्लेखनीय बातों का पता लगाने में सफलता नहीं मिली।

आयप अय्यपाय या अय्यपार्य नाम के विद्वान् के द्वारा शक सम्वत् १२४१* अर्थात् वि सम्वत् १३७६ में जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय नाम का एक ग्रन्थ रचा गया है। बल्कि इस ग्रन्थ का कुछ परिचय प्रशस्ति-संग्रह" पृष्ठ ८ १२ में दिया भी जा चुका है। इस ग्रन्थ में लेखक ने वीराचार्य आदि के साथ एकसन्धि भट्टारक का भी उल्लेख निम्न प्रकार से किया है —

"वीराचार्यसुपूज्यपादजिनसेनाचार्यसभाषितो
य पूर्व गुणभद्रसूरिवसुनन्दीन्द्रादिनन्द्यूर्जित ।
यश्चाशाधरहस्तिमल्लकथितो यश्चैकसन्धिस्तत
तेभ्य स्वाहृत्सारमध्यरचित स्याज्जैनपूजाक्रम ॥

बल्कि खेद के साथ लिखना पड़ता है कि 'प्रशस्ति संग्रह' में दिये गये ग्रन्थकर्ता के परिचय

---

*शाकाब्दे विधुवार्धिनेत्रहिमगौ सिद्धार्थसम्वत्सरे
माघे मासि विशुद्धपक्षदशमीपुष्यार्कवारेऽहनि ।
ग्रन्थो रुद्रकुमारराज्यविषये जैनेन्द्रकल्याणभाक्
सम्पूर्णोऽभवदेकशैलनगरे श्रीपालबन्धूर्जित ॥

में प्रमाद एवं दृष्टि-दोष से एकसन्धि भट्टारक के नाम पर मेरा ध्यान ही नहीं गया था। फल-स्वरूप उपर्युक्त श्लोक में नौ प्रतिष्ठा-पाठ के प्रणेताओं का स्पष्ट उल्लेख होते हुए भी वीराचार्य आदि आठ ही प्रतिष्ठापाठ रचयिताओं का मैंने नाम निर्देश कर दिया है। खैर प्रमाद का लक्ष्य होना हम जैसे अल्पज्ञ मानवों का प्रकृत धर्म है।

जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय (विद्यानुवादाङ्ग) के उल्लिखित श्लोक से प्रकट है कि जिनसंहिता के कर्त्ता एकसन्धि भट्टारक विक्रमसम्वत् १३७६ के पहले हो चुके हैं। बहुत कुछ सम्भव है कि यह पण्डित-प्रवर आशाधर जी के समकालीन १३ वीं शताब्दी मे या इससे भी कुछ पीछे हुए हों।

भवन की संगृहीत जिनसंहिता की यह प्रति भीषण अशुद्धियों से भरी पडी एवं अपूर्ण है। अत किसी शास्त्र-संग्रहीता के संग्रह मे यदि इस की पूर्ण प्रति हो तो उसका प्रशस्ति-मय अन्तिम भाग भेजकर भास्कर में प्रकाशित करा देने की कृपा करेंगे।

---

## (१९) ग्रन्थ नं० २२७/ख

# गीतवीतराग

कर्त्ता—पण्डिताचार्य चारुकीर्त्ति

विषय—जिनस्तुति

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३।।। इञ्च चौडाई ६।। इञ्च पत्रसंख्या ३३

*प्रारम्भिक-भाग —*

विद्याव्याप्तसमस्तवस्तुविसरो विश्वैर्गुणैर्भासुरो-
दिव्यश्रव्यवच प्रतुष्टसुर सद्ध्यानरत्नाकर.।
य' संसारविषाब्धिपारसुतरो निर्वाणसौख्यादर
स श्रीमान वृषभेश्वरो जिनवरो भक्त्यादरान् पातु न ॥१॥
पूर्वास्मिञ्जयवर्मनामनृपति विद्याधराधीश्वरम्
पश्चात्सल्ललिताङ्गदेवममल श्रीवज्रजङ्घाधिपम्।

आर्यं श्रीधरनिर्जरं च सुविधिं कल्यान्तदेवेश्वरम्
चक्राधीश्वरवज्रनाभिजनयं सर्वार्थसिद्धीश्वरम् ॥२॥
साकेताधिपनाभिराजतनयं कल्याणपञ्चाञ्चितम्
प्राप्तानन्तचतुष्टयं जिनवरं सौवर्णदेहावहम् ।
सौधर्मादिशतेन्द्रवृन्दविनताथीपादपद्मद्वयम् ।
वन्देऽहं वृषभेश्वरं गुणनिधिं सद्धर्मचक्राधिपम् ॥३॥
मेरोः पश्चिमगन्धिले जनपदे विद्याधराणां पद
स्याद्रेरुत्तरदिक्स्थिते सदलकानाम्ना प्रतीते पुरे ।
राजा शस्तमहाबलस्सचिवकैर्युक्तश्चतुर्भिस्सदा
राजन्त समुवाच धर्मसुफलं बुद्धस्वयंपृथक् ॥४॥

× × ×

*मध्य भाग (पत्पृष्ठ २५ पंक्ति ६ से)*

अष्टपदम्—सवरुणकिसलयचरणयुगेन मृदुसरसिजजयधृतसुभगेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥१॥
वतुलकान्तिसुवृत्तभरेण चित्तजबाणधिवृतिधरेण ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥२॥
मञ्जुलकान्तिसुवेशचयेन पुञ्जितकान्तसुमध्यशुभेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥३॥
नलिनसुबिसनिभभुजयुगलेन ललितसुरतरुविटपचलनेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥४॥
विचलितहारविलासशिवेन कुचयुगविलसदुरुविभवेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥५॥
शशधररुचिवरसुपममुखेन विशदकुमुदवनजनयनसखेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥६॥
अलिकुलकुन्तलभरनिटिलेन विलसितशशिदलसमकुटिलेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥७॥
कुवलयमर्दितश्रुतियमलेन खण्डितकुमतवचनसुबलेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥८॥

× × ×

अन्तिम-भाग—

गांगेयवंशाम्बुधिपूर्णचन्द्रो यो देवराजोऽजनि राजपुत्रः।
तस्यानुरोधेन च गीतवीतराग-प्रबन्धं मुनिपश्चकार ॥१॥
द्राविडदेशविशिष्टे सिंहपुरे लब्धशस्तजन्मोसौ।
वेळ्गोळपण्डितवर्यश्चकार श्रीवृषभनाथवरचरितम् ॥२॥
स्वस्तिश्रीवेळगुळे दोर्बलिजिनानिकटे कुन्दकुन्दान्वये योऽ-
भूत्स्तुत्य' पुस्तकाङ्कश्रुतगुणभरणः ख्यातदेशीगणार्यं '
विस्तीर्णाशेषरीतिप्रगुणरसभृत गीतयुग्वीतरागम्
शस्तादीशप्रबन्ध वुधनुतमतनोत् पण्डिताचार्यवर्यः ॥

इति श्रीमद्रायराजगुरुभूमण्डलाचार्यवर्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जन-चक्रवर्त्तिवल्लाळरायजीवरक्षापाल(?)कृत्याद्यनेकविरुदावलिविराजच्छ्रीमद्बेळगोळसिद्धसिंहासना-धीश्वरश्रीमदभिनवचारुकीर्त्तिपण्डिताचार्यवर्यप्रणीतगीतवीतरागाभिधानाष्टपदी समाप्ता ।

यह गीतवीतराग जयदेव (ई० ११८०) प्रणीत गीतगोविन्द के ढंग पर रचा गया है। जिस प्रकार गीतगोविन्द का अपर नाम अष्टपदी प्रसिद्ध है उसी प्रकार इस गीतवीतराग का भी दूसरा नाम अष्टपदी ही है। इस बात का खुलाशा इसके रचयिता पण्डिताचार्य चारुकीर्ति जी ने अपनी इस कृति में स्वय कर दिया है। गीतगोविन्द महाकाव्य मे गिना जाता है। इसके प्रणेता जयदेव वंग के लक्ष्मण सेन (ई० १११६—११६६) के सभा-पण्डित थे। इनके पिता का नाम भोजदेव एव माता का राधादेवी था। यह किन्दुबिल्व के निवासी थे। किन्दुबिल्व वंगदेश के वीरभूम जिले में है। यह जयदेव श्रीकृष्ण के अनन्यभक्त थे। भक्तिमाला में इनकी भक्ति की अनेक कथाएँ मिलती है। इनका विरचित एक हिन्दी ग्रन्थ भी है, जो सिक्खो के आदि ग्रन्थों में सब से प्राचीन माना जाता है। संस्कृत में जयदेव-विरचित सस्कृत का यह छोटा सा एक ही महाकाव्य होने पर भी इस कवि का यश इतना प्रसृत हुआ है कि कवि के जन्म-स्थान पर इनकी पुण्यतिथि के उपलक्ष में अभीतक बडा भारी उत्सव मनाया जाता है, जिसमें गीतगोविन्द के पद्य गाये जाते है। ई० १४९९ में उत्कल के प्रताप रुद्रदेव ने सब वैष्णवनर्तक तथा गायकों को सदैव गीतगोविन्द के ही पद्य गाने की आज्ञा दी थी। गेटे सदृश पाश्चात्य रसिक-शिरोमणियो ने कालिदास के साथ इस कवि की भूरि भूरि प्रशसा की है। गीतगोविन्द १२ सर्गों का महाकाव्य है। इस में श्रीकृष्ण और राधिका का प्रेम वर्णित है। प्रतिसर्ग के पद्य के पूर्व में राग ताल आदि दिये गये है। इससे यह अनुमान होता है कि इसके रचयिता वडे भारी गवैया थे। इस में विप्रलंभ

और संभोग शृङ्गार का बड़ी सुन्दरता से वर्णन किया गया है। इस काव्य की लोकप्रियता इसकी टीका की संख्या से भी विदित होती है। इस काव्य पर ३० टीकायें उपलब्ध होती हैं। इन टीकाकारों में उदयनाचार्य और शङ्कर मिश्र सदृश बड़े बड़े नैयायिक और गागाभट्ट सदृश मीमांसक भी हैं।*

इस गीतवीतराग में प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव का चरित्र चित्रित है। इस में भी प्रत्येक पद्य के पूर्व में राग ताल आदि दिये गये हैं। इससे जयदेव के समान इस गीतवीतराग के कर्त्ता पण्डिताचार्य चारुकीर्ति जी भी संगीत के मर्मज्ञ विदित होते हैं। इन्होंने अपने गीतवीतराग में गीतगोविन्द का खाका खींचने का प्रचुर प्रयास किया है। बल्कि इस विषय में इन्होंने सफलता भी प्राप्त की है। इसकी संस्कृत भाषा भी मंजी हुई एवं प्रशस्त है। संख्या की दृष्टि से इसमें ५७२ पद्य माने जाते हैं। गीतवीतराग के प्रणेता चारुकीर्ति जी 'दिगम्बर जैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' के मतानुसार (१) पार्श्वाभ्युदय की टीका (२) चन्द्रप्रभ काव्य की टीका† (३) आदिपुराण (४) यशोधर चरित (५) नेमिनिर्वाणकाव्य की टीका के भी कर्त्ता हैं। इनमें आदिपुराण यशोधर चरित और नेमिनिर्वाण काव्य की टीका अभी तक मुझे दृष्टिगोचर नहीं हुई है। बल्कि भवन में चारुकीर्ति के रचित अर्थ प्रकाशिका और प्रमेयरत्नमालालङ्कार नाम के सुप्रसिद्ध प्रमेयरत्नमाला नामक न्यायग्रन्थ के दो टीका ग्रन्थ भी संगृहीत हैं। जिनका परिचय यथावसर इसी प्रशस्ति संग्रह में प्रकाशित किया जायगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उल्लिखित इन ग्रन्थों के रचयिता चारुकीर्ति जी एक बहुदर्शी एवं विविध विषयों के मर्मज्ञ उद्भट संस्कृत के विद्वान् थे।

इस गीतवीतराग के कर्त्ता चारुकीर्त्ति जी ने द्राविड़ (मद्रास) देशान्तर्गत सिंहपुर को अपना जन्मस्थान बतलाया है। यह सिंहपुर सम्भव है कि टिण्डीवनम तालुक के अन्तर्गत सिंगवरम् हो। बाद आप लोक विश्रुत श्रवणबेल्गोळ मठ के अधीश बनाये गये। चारुकीर्त्ति जी रायराजगुरु भूमण्डलाचार्य महावादवादीश्वर आदि अनेक उपाधियों के धारक थे। पर ये सभी उपाधियाँ पट्टपरम्परागत हैं। बल्कि इनकी 'बल्लाळ जीवरक्षक' जो एक विशिष्ट उपाधि है वह विष्णुवर्द्धन के बड़े भाई बल्लाल प्रथम (११००—११०६) को एक भयानक रोग से मुक्त करने के उपलक्ष में तत्कालीन श्रवणबेल्गोळ के मठाधीश चारुकीर्त्ति जी को प्राप्त हुई थी।‡

* देखें— संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त-इतिहास,' पृष्ठ १७१ से १८१।

† देखें—"प्रशस्ति-संग्रह" पृष्ठ १—४।

‡ देखें—श्रवणबेल्गोल के शिलालेख नं २५७ (१०५) सन् १३१८ तथा २५८ (१०८) सन् १३३२

इस की प्रशस्ति से यह भी ज्ञात होता है कि गंगवंशज राजकुमार देवराज के अनुरोध से ही आपने इस "गीतवीतराग" का प्रणयन किया है। इस गंगवंश का राज्य मैसूर प्रान्त में लगभग ईसा की ४थी शताब्दी से ११वीं शताब्दी तक रहा। आधुनिक मैसूर का अधिकांश भाग गंगवश के राज्य के अन्तर्गत था जो गंगवाडि ९६००० कहलाता था। मैसूर में जो आजकल गङ्गडिकार (गंगवाडिकार) नामक किसानों की भारी जनसंख्या है वे गंगनरेशों की प्रजा के ही वंशज हैं।

गंगवंशीय राजाओं की प्राथमिक राजधानी 'कुवलाल' या 'कोलार' थी। यह पूर्वी मैसूर मे पालार नदी के तट पर अवस्थित है। पीछे यह राजधानी कावेरी के तट पर 'तलकाड' नामक स्थान में आ गयी। आठवीं शताब्दी मे श्रीपुरुष नामक गंगनरेश सुविधा के लिये अपनी राजधानी का कार्य बेङ्गलूरु के समीपस्थ मण्णे या मान्यपुर से भी सञ्चालित करते थे। गंगवंश के अभ्युदय का यह मध्याह्न समय था। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब तलकाड चोलनरेशों के हस्तगत हुआ तभी से गंगराज्य की इति श्री हुई। शुरू से ही गंगराज का जैनधर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। श्रवणबेळगोळ के शिलालेख नं० ५४ (६७) के उल्लेख से ज्ञात होता है कि गंगराज्य की नींव डालने मे जैनाचार्य सिंहनन्दी जी का अधिक हाथ था। आचार्य सिंहनन्दी जी की इस सहायता की चर्चा गंगनरेशों के भिन्न भिन्न शिलालेखों मे भी पायी जाती है।* इसके अतिरिक्त गोम्मटसार की वृत्ति के प्रणेता अभयचन्द्र त्रैविद्यचक्रवर्ती ने भी अपने ग्रन्थ की उत्थानिका मे इस बात का उल्लेख किया है। कहा जाता है कि आचार्य पूज्यपाद इसी वंश के सातवें नरेश दुर्विनीत के राजगुरु थे। गंगवंश के अन्यान्य प्रकाशित लेखों से भी जैनाचार्यों का सम्बन्ध सिद्ध होता है।

पर इस वंश में देवराज का कुछ पता नहीं लगता। पुरातत्त्व के सहृदय मर्मज्ञ मित्रवर गोविन्द पै का भी कहना है कि तलकाड के पश्चिम गंगवंश मे देवराज नामक शासक का नाम मिलता नहीं है। हाँ, कलिङ्ग के पूर्व गंगवंश मे देवेन्द्र वर्म नामक शासक ई० सन् १०७० में सिंहासनारूढ हुआ था अवश्य (Historical inscriptions of southern India page 358 & 346—348, 415—416)

किन्तु चारुकीर्त्ति जी के द्वारा "गीतवीतराग" में प्रतिपादित देवराज प्रायः यह नहीं हो सकता है। इसीलिये साधनाभाव से देवराज के सम्बन्ध मे इस समय कुछ भी नहीं लिखा जा सका। अस्तु इस "गीतवीतराग" के प्रणेता भट्टारक चारुकीर्त्ति जी शक सम्वत् १३२१ के बाद के हैं।

* देखें "जैन शिलालेख-संग्रह" पृष्ठ ७३—७४

## (२०) ग्रन्थ नं० $\frac{२२१}{ख}$

# अर्थप्रकाशिका (प्रमेयरत्नमाला की टीका)

कर्ता—पण्डिताचार्य चारुकीर्ति

विषय—न्याय

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८॥ इञ्च   चौड़ाई ६।।। इञ्च   पत्रसंख्या २४९

*प्रारम्भिक-भाग —*

श्रीमन्नेमिजिनेन्द्रस्य वन्दित्वा पादपङ्कजम्।
प्रमेयरत्नमालार्थः संक्षेपेण विविच्यते ॥१॥
प्रमेयरत्नमालाया व्याख्याः सन्ति सहस्रशः।
तथापि पण्डिताचार्यकृतिर्ग्राह्यैव कोविदैः ॥२॥
भानौ देदीप्यमानेऽपि सर्वलोकप्रकाशके।
न गृह्यते किं भुवने जनेन करदीपिका ॥३॥

प्रारिप्सितस्य प्रबन्धस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं स्वेष्टदेवतानमस्काररूपं मंगलमाचरन् शिष्यशिक्षायै ग्रन्थतो निबध्नाति।

नतामरेति। अस्मिन् श्लोके वृत्त्यनुप्रासशब्दालंकारः। रेफादिवर्णानामसकृदैक प्रयादिवर्णानामावृत्तौ वृत्त्यनुप्रासस्य अभिहितत्वात्। तदुक्तं—"एकद्विप्रमुखा वर्णा व्यवधानेन यत्र वै। आवर्तन्ते तथा तत्र वृत्त्यनुप्रास इष्यते॥" कर्मारातीन् जयतीति जिनः। कर्मारातिजेतृत्वमेव जिनपदशक्यतावच्छेदकम्। एतच्च दुर्वारमारवीरमदच्छिदे इत्यनेन समर्थितमिति पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमर्थालङ्कारः। "हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम्" इति लक्षणात्। अनयोश्शब्दार्थालङ्कारयोस्संसृष्टिः तिलतण्डुलन्यायेन उभयोर्मेलनात्। "तिलतण्डुलन्यायेन मेलनं संसृष्टिः" इतिलक्षणात्। अकलङ्क इति। अत्र रूपकालङ्कारः—वचसि अम्भोधित्वस्य रूपणात्। उपमानोपमेययोरभेदकथनं हि रूपकम्। तदुक्तम्—'विषय्य भेदताद्रूप्यरञ्जनं विषयस्य यत् रूपकं तत्" इति। न्यायविद्यामृतमित्यत्राप्ययमेव रूपकालङ्कारो बोध्यः। प्रभेन्दुवचनेनेति। प्रभेन्दुवचनोदारचन्द्रिकेत्यत्र निरुक्तमेव रूपकम्। ज्योतिरिङ्गणसन्निभा इत्यत्र उपमालङ्कारः। 'उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः' इतिलक्षणात्।

श्रीमदित्यादि। अवगाहनमन्तःप्रवेशः। स च निगूढतत्त्वकलनरूपः। तात्पर्यविषयीभूतार्थज्ञानसम्पादनमिति यावत्। पोतप्रायम् पोतसदृशम् तत्प्रतिपाद्यार्थैकदेशं प्रति सम्पादकमिति यावत्। तत्प्रकरणस्येति। सम्बन्धादिविषयकज्ञानरूपकारणाभावे प्रवृत्तिरूपकार्यं न स्यादिति भावः। अयमर्थ "स्तत्प्रकरणस्य" इत्यत्र षष्ठ्यर्थो विषयत्वम् प्रेक्षावतामिति षष्ठ्यर्थः सम्बन्धितत्त्वम्। तथा च यतत्प्रकरणविषयकप्रेक्षावत्सम्बन्धिप्रवृत्तिर्न जन्यत इति शास्त्रविषयकप्रवृत्तित्वावच्छिन्नं प्रति सम्बन्धादिज्ञानानां कारणतायाः व्यवस्थापयिष्यमाणात्। प्रेक्षावन्तो ज्ञानिनः तत्र योऽनुवाद इति। अनुवादो नाम अत्र न निष्ठप्रकारताशालिबोधजनकशब्दप्रयोगः। ननु पूर्वमुक्तस्य पुनरपि कथनं तस्य प्रकृतेरसंभवात्। संबन्धादीनां प्रमाणादिति श्लोकात् पूर्वं मूलकृतानुक्तेः। अतः सम्बन्धादित्रयनिष्ठ प्रकारताशालिबोधजनकशब्दप्रयोग एव अत्रानुवादशब्दार्थो ग्राह्यः।

× × × × × ×

*मध्य-भाग (परपृष्ठ ११८ पंक्ति ५)*

प्राकट्यं फलजनकत्वावस्था। तथा च अव्यवहितोत्तरक्षणे फलजनकत्वरूपोद्बोधनविशिष्टसंस्कारजन्या स्मृतिरित्यर्थः। एवं च संस्कारजन्यत्व स्मृतेर्लक्षणम् इतरत्स्वरूपकीर्त्तनमिति योज्यम्। "दर्शनस्मरणकारणकम्" इत्यादि। इदमिति प्रत्यक्ष तदिति स्मरणमेतदुभयजन्यं तदिदमिति यज्ज्ञानं जायते तत्प्रत्यभिज्ञानम्। तत्र सकलनमिति स्वरूपकथनम्। तथा च प्रत्यक्षजन्यत्वे सति स्मरणजन्यत्वं प्रत्यभिज्ञानस्य लक्षणम्। प्रत्यक्षजन्यत्वमात्रोक्तौ अवग्राहात्मकप्रत्यक्षजन्येहात्मकप्रत्यक्षेतिव्याप्तिः। अतः स्मरणजन्यत्वं स्मरणजन्यत्वमात्रोक्तौ स्मरणध्वंसेऽतिव्याप्तिः। अत प्रत्यक्षजन्यत्वं तत्र दर्शनस्मरणकारणकत्वादिति सर्वत्र ग्रन्थान्तरेषु शास्त्रान्तरेषु च। तदिदं सोऽयं देवदत्त इत्यादि तत्रेदन्तावग्राहिज्ञानस्यैव प्रत्यभिज्ञानत्वमुक्तम्। तद्देशतत्कालसंबंधित्वं तत्ता एतद्देश एतत्कालसम्बन्धित्वं इदन्ता। तथा च कथमस्मिन्सूत्रे तत्सदृशं तद्विलक्षणमित्यादिज्ञानानामपिप्रत्यभिज्ञानत्वमुच्यते इति शंका। तत्र च दर्शनस्मरणकारणक यज्ज्ञानं तत्सर्वं प्रत्यभिज्ञानमिति तावत्केषु च ग्रन्थेषु कंठतः उक्तं केषुचिच्च सूचिता। तथा च तदिदमित्यादिज्ञानस्यैव तत्सदृशमित्यादिज्ञानस्यापि दर्शनस्मरणकारणकत्वाविशेषात् सूक्तमितिसूत्राशयः।

× × × × ×

*अंतिम-भाग* —(पूर्वपृष्ठ २४८, पंक्ति ७)

इन्द्रशक्रपुरन्दरादिशब्दा इन्दनशकनपूर्दारणादिपर्यायभेदेन भिन्नार्थबोधका इति ज्ञानं हि समभिरूढनयः। तादृशज्ञाने पर्यायभेदप्रयोज्यो योऽर्थभेदः इन्दनादिरूपपर्यायभेदप्रयोज्य इन्द्रशक्रादिपदार्थभेद तद्बोधकत्वनिष्ठविशेष्यताशालिज्ञानत्वसत्वाल्लक्षणसमन्वयः। समभिरूढनयाभासस्तु इन्द्रशक्रपुरन्दरादिशब्दाः अभिन्नार्थबोधका इति ज्ञानादिति। इत्थम्भूतनयस्तु शक्रादिशब्द शकनक्रियास्थितिक्षण एव शक्रबोधकः न पूजादिष्विति ज्ञानम्। तल्लक्षणन्तु तत्तत्पर्यायसमानकालीनार्थबोधकत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितशब्दनिष्ठविशेष्यताशालिज्ञानत्वं सकनकाल एव शक्रबोधक इति ज्ञाने शकनरूपपर्यायकालीनार्थबोधकत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितशब्दनिष्ठविशेष्यताशालिज्ञानत्वम्। शकनकाल एव शक्रबोधक इति ज्ञाने शकनरूपपर्यायकालीनार्थबोधकत्वप्रकारकस्य सत्वाल्लक्षणसंगतिः। अथवा शक्रपद शकरूपार्थबोधकमिति ज्ञानमित्थम्भूतनयाभासमित्यत्र विस्तरः।

× × ×

---

(२१) ग्रन्थ नं० $\frac{२२६}{ख}$

# प्रमेयरत्नमालालंकार

कर्ता—पण्डिताचार्य चारुकीर्ति

---

विषय—न्याय

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८॥ इन्च चौड़ाई ६॥। इन्च पत्रसंख्या ३७६

---

*प्रारम्भिक-भाग*—

भक्त्युद्रेकनमत्सुराधिपलसत्कोटीरकोटीलसन्-
माणिक्याम्बुजभाग्भवांशुनिकरस्मेराङ्घ्रिपंकेरुहम्।
तत्ताद्गुणभृन्मुखाम्तिकपसद्योगीन्द्रचित्ताम्बुज
व्यूहानन्ददिवाकरं हृदि सदा श्रीवर्धमानं भजे ॥१॥

पृथ्वीमण्डलमण्डनायितमहाराजाधिराजोत्तम-
श्रीराजद्धिमशीतलक्षितिपतेर्गोष्ठीमते सौगतान् ।
वादायापततो-मदोद्धततया यो वाग्भरैर्जित्वरैः
जित्वा श्लाघ्यतमोऽभवत्सपदि त वन्देऽकलकं मुनिम् ॥२॥
यत्सूत्रव्रजचन्द्रिकारसभर नित्यं समास्वादयन्
भव्योत्तंससुधीचकोरनिकरस्सर्वोऽपि संमोदते ।
सोऽयं सार्वपदीनधीवुधमनस्सौधाग्रकेलीशुको
हर्षं वर्षतु सन्तत हृदि गुरुर्माणिक्यनन्दी मम ॥३॥
जयतु प्रमेन्दुसूरि प्रमेयकमलप्रकाण्डमार्त्तण्डेन ।
यद्वदननिस्सृतेन प्रतिहतमखिल तमो हि वुधवर्गाणाम् ॥४॥
श्रीचारुकीर्त्तिधुर्यस्सन्तनुते पण्डितार्यमुनिवर्यः ।
व्याख्यां प्रमेयरत्नालङ्काराख्यां मुनीन्द्रसूत्राणाम् ॥५॥
माणिक्यनन्दिरचितं क्वनुसूत्रवृन्दं
क्वाल्पीयसी मम मतिस्तु तदीयभक्त्या ।
तादृक्प्रमेन्दुवचसां परिशीलनेन
कुर्वे प्रमेन्दुमधुना वुधहर्षकन्दम् ॥६॥
"प्रमाणादर्थसंसिद्धि तदाभासाद्विपर्यय ।
इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्मसिद्धमल्पं लघीयसः ॥"

श्रीमन्न्यायमहार्णवस्याखिलप्रमेयरत्नगर्भस्यावगाहनमव्युत्पन्नप्रज्ञैः कर्तुमशक्यमितिमन्यमाने न्यायशास्त्रप्रवर्तनशिरोमणिभिर्भट्टाकलङ्कमुनिभिस्तदवगाहनाय पोतप्राये निखिलवस्तुस्वरूपप्रकाशनप्रवणे प्रकरणप्रणीते तत्रापि मन्दमतीनां दुरवगाहनतामालोच्य कारुणिको माणिक्यनन्द्याचार्यः सुस्पष्टं तदर्थं प्रतिपादयितुं परीक्षामुखनामकं सूत्रात्मक प्रकरणमिदं प्रणिनाय। तत्र सम्बन्धाभिधेयेष्टसाधनत्वक्षातिसाध्यत्वाना प्रेक्षावत्प्रवृत्त्यर्थं अवश्यं प्रतिपाद्यत्वात् तत्प्रतिपादकं सकलशास्त्रार्थसंग्राहक श्लोकमादावचोकथत् ।

× × × × × ×

*मध्य-भाग (पूर्वपृष्ठ १३९, पंक्ति १०)*

ब्रह्माद्वैतवादिनस्तु—सत्तारूपं ब्रह्मैव सर्वसाक्षात्कारि सर्वावच्छिन्नचैतन्याभिन्नत्वात्। चैत्रस्य घटादिसाक्षात्कारित्वं हि घटावच्छिन्नचैतन्याभेद एव घटसाक्षात्कारकाले इन्द्रियद्वारा मन्तःकरणवृत्तेर्घटादिविषयदेशगमनेन घटावच्छिन्नचैतन्यस्य रूपांत.करणावच्छिन्नचैतन्येना-

भेदोत्पत्तेः एकदेशस्योपाध्योः भेदकत्वायोगात् गृहावच्छिन्नाकाशे घटावच्छिन्नाकाशे मगावच्छिन्नाकाशभेदवत्। मायावच्छिन्नचैतन्ये घटावच्छिन्नचैतन्याभिन्नरूपं सत्साक्षात्कारित्वं च घटस्सन् पटस्सन् इत्यादि प्रत्यक्षेण गृह्यते। घटस्सन्निति प्रतीतौ घटसतोः तादात्म्यभानात्। तादात्म्यस्य च भिन्नत्वे सत्यभिन्नसत्ताकत्वरूपत्वेन घटावच्छिन्न सत्तारूपचैतन्याभेदस्य ब्रह्मरूपे सति भानात्। न च घटादिरूपभेदस्य प्रत्यक्षगम्यत्वे आगमस्याद्वैतबोधकत्वं न सम्भवति प्रत्यक्षविरुद्धार्थे आगमस्य प्रामाण्यायोगादिति वाच्यम्। प्रत्यक्षं हि सविकल्पकं निर्विकल्पकं चेति द्विविधम्। तत्र चक्षुरुन्मीलनानन्तरं सन्मात्रविषयकं निर्विकल्पकं जायते तदेव प्रमाणभूतं प्रत्यक्षम्। तत्र भेदो न भासते। अप्रमाणभूतसविकल्पकप्रत्यक्षे च भेदो भासत इति न तेनागमस्य बाधः। तदुक्तं "अस्ति ह्यालोचनाज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पकम्। बालमूकादिविज्ञानसदृशं शुद्धवस्तुजम्॥ आहुर्विधातृप्रत्यक्षं न निषेद्धृ विपश्चितः। नैकत्वे आगमस्तेन प्रत्यक्षेण प्रबाध्यते॥ प्रत्यक्षं विधातृविधायकं सन्मात्रग्राहकमेवाहुः। न निषेद्धृ न निषेधकं न भेदग्राहकम्। तेन कारणेन एकत्वे प्रतिपादकतासम्बन्धेन विद्यमान आगमो न प्रत्यक्षेण बाध्यत इति श्लोकार्थः। तथा च प्रत्यक्षस्यापि सन्मात्रग्राहित्वेन तद्विरोधाभावात्। 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इति श्रुत्याऽद्वैतं ब्रह्म सिध्यति। ब्रह्मणोऽद्वैतत्वं च सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यत्वम्। तदुक्तम्—'वृक्षस्य स्वगतो भेदः पत्रपुष्पफलादितः। वृक्षान्तरात्सजातीयो विजातीयश्शिलादितः। एवं भेदत्रयं प्राप्तं श्रुत्वा ब्रह्मणि वार्यते। एकावधारणद्वैतप्रतिषेधैस्त्रिभिः क्रमात्" इति।

× × × ×

अन्तिम भाग (पूर्व पत्र ३७५, पंक्ति ५)—

मादृशस्संविद इति—अत्रापि हेयोपादेयतत्त्वयोरित्यनुपश्यते। मादृशमन्दप्रज्ञस्य हेयोपादेयतत्त्वज्ञानार्थं शास्त्रकरणमित्यर्थः। नन्वल्पप्रज्ञस्य कथं महाशास्त्रकरणं तत्करणे वा कथं अल्पप्रज्ञत्वं परस्परविरोधादिति चेन्न पूर्वाचार्यापेक्षया अल्पप्रज्ञत्वस्य विवक्षितत्वात्। आत्मन औद्धत्यपरिहाराय प्रथकृता तथोक्तिसम्भवाच्च। यद्वा मादृशोबालः इत्यत्र अबाल इति पदच्छेदः। एवञ्च शास्त्रकरणेन अनल्पप्रज्ञोऽहं शास्त्रार्थप्रज्ञो अनल्पप्रज्ञस्य शिष्यस्य हेयोपादेयज्ञानार्थमिदं शास्त्रं कृतवानस्मीत्यर्थः।

इति श्रीमद्देशिगणाग्रगण्यस्य श्रीमद्बेल्गुळपुरनिवासरसिकस्य चारुकीर्तिपण्डिताचार्यस्य कृतौ परीक्षामुखसूत्रव्याख्यायां प्रमेयरत्नमालालङ्कारसमाख्यायां षष्ठः परिच्छेदः समाप्तः।

मिथ्यावादतमश्छटाद्विनमणोर्माणिक्यनन्दिप्रभोः
यच्छास्त्रं विमलं विराजितमहायुक्तिप्रजैर्भासुरम्।

तद्व्याख्यानमभूत्प्रभेन्दुवचनोदारार्थसंशीलनात्
किञ्च श्रीगुमटेश्वरस्य कृपया विन्ध्याद्रिचूडामणेः ॥
श्रीमद्बेळ्गुळमध्यभासुरमहाविन्ध्याद्रिचिन्तामणि
श्रीमद्बाहुबली करोतु कुशलं भव्यात्मना सन्ततम् ।
यत्पादाम्बुरुह सुरेन्द्रमुकुटीमाणिक्यनीराजितम्
कल्पद्रुप्रकरायते शुभदशां पूजां सदा तन्वताम् ॥

बहुत कुछ संभव है कि गीतवीतराग, पार्श्वाभ्युदय की टीका, चन्द्रप्रभकाव्य की टीका, आदिपुराण, यशोधरचरित और नेमिनिर्वाण काव्य की टीका* इन ग्रन्थों के रचयिता चारुकीर्ति ही उल्लिखित अर्थप्रकाशिका एवं प्रमेयरत्नमालालङ्कार के प्रणेता हों। चारुकीर्ति यह श्रवणबेळगोळ के पट्टाधीशों का परम्परागत नाम है। वहाँ के आधुनिक मठाधीश भी चारुकीर्ति के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। इसीलिये विशेष प्रमाण के अभाव में स्पष्टतया लिखना बड़ा दुरूह है कि अमुक चारुकीर्ति ही अमुक ग्रन्थ के रचयिता हैं। फिर भी इन ग्रन्थों के वाक्य-विन्यास की ओर ध्यान देने पर उल्लिखित मेरा अनुमान निराधार नहीं कहा जा सकता। साधनाभाव से इस समय इस पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला जा सका। मालूम होता है कि ये दोनों ग्रन्थ "प्रमेयरत्नमाला" के अन्तर्गत जटिल गुत्थियों को सुलझाने के लिये ही प्रणीत हुए हैं। "प्रमेयरत्नमाला" दिगम्बर जैनदर्शन का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। अपनी विशेषताओं के कारण कई प्रसिद्ध परीक्षा-संस्थाओं की पाठ्य पुस्तकों में भी यह सन्निविष्ट है। क्या ही अच्छा होता परीक्षामुख-सूत्र पर जितनी ये छोटी मोटी टीकायें उपलब्ध होती हैं वे एकीकरण-रूप में प्रकाशित होतीं। तुलनात्मकदृष्टि से अध्ययन करनेवालों को इसमें विशेष लाभ होता। साथ ही साथ प्रमेयरत्नमाला जो एक गम्भीर ग्रन्थ है इस पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता। विद्यालय के अध्यापकों को भी पढ़ाते समय इन सभी टीकाओं का उपयोग करना चाहिये। इससे ग्रन्थगत विशेषता अध्ययनावस्था में ही तुलनात्मक अध्ययन का विचार रखनेवाले विद्यार्थियों को ज्ञात हो जाती। बल्कि श्रीयुत एस० सी० घोषाल, एम० ए० बी० एल० का जैनगजट में "Pareekshámukham" नाम से जो इस सूत्र का धारावाहिक रूप से अंग्रेजी अनुवाद निकल रहा है उसमें उन्होंने "भवन" की "अर्थप्रकाशिका" एवं "न्यायमणिदीपिका" का जहाँ तहाँ उपयोग किया है। कारणवश उन दिनों में आपके पास "प्रमेयरत्नमालालङ्कार" नहीं भेज सका। अस्तु, इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन ग्रन्थों के रचयिता चारुकीर्ति जी एक बहुदर्शी एवं संस्कृत के प्रौढ़ विद्वान थे।

* देखें—"दिगम्बर जैन ग्रंथकर्त्ता और उनके ग्रंथ।"

(२२) ग्रन्थ नं० २३०/ख

# प्रमेयकण्ठिका

कर्त्ता—शान्तिवर्णी

विषय—न्याय

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—८॥ इन्च | चौड़ाई—७ इन्च | पत्रसंख्या १८

*प्रारम्भिक भाग—*

श्रीवर्द्धमानमानम्य विष्णुं विश्वसृजं हरम् ।
परीक्षामुखसूत्रस्य ग्रन्थस्यार्थं विवृण्महे ॥१॥

अथ स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणमिति प्रमाणलक्षणम् बाधातीतं नान्यत् किं श्रुतबाधितत्वात् । ननु स्वापूर्वार्थेति लक्षणे यानि विशेषणान्युपात्तानि तानि निरर्थकानीति चेन्न परप्रतिपादितानेकदूषणवारकत्वेन तेषां सार्थकत्वात् । तथा हि किं तद् प्रमाणमिष्टरूपं तदनिष्टं "ज्ञानं प्रमाणम्" इत्युक्ते निर्विकल्पकज्ञानस्यापि प्रामाण्यं स्यादित्यापादनमेवा निष्कस्माकं जैनानां ततस्तद्व्यभिचारकत्वेन व्यवसायविशेषणस्य सार्थकत्वम् । एवमितरेषां विशेषणानां सार्थकत्वं योजनीयम् ।

× × × ×

*मध्यभाग (पर पृष्ठ १६, पंक्ति ६)—*

अविसंवादिज्ञानं सौगतीयं प्रमाणं तदपि न परप्रतिपादितदूषणगणप्रसंगात् । तथा हि अविसंवादित्वं ज्ञाने तत्काले ज्ञानान्तरेणाबाध्यत्वं तस्य कदाचिद्भ्रमेऽपि सम्भवात्तस्यापि प्रामाण्यप्रसंगात् । किञ्चाविसंवादित्वाभावः विसंवादित्वं बाध्यत्वम् । तच्च सतो न सम्भवति स्थितिक्षणस्यत्वया भङ्गीकारात् । नाप्यसतो सम्भवात् । तथा चाप्रसिद्धस्य विसंवादित्वस्याभावः कथं निरूपणीयातिप्रसंगात् । ततो विसंवादिविज्ञानं प्रमाणमिति प्रमाणलक्षणमविचारितरमणीयमेव ।

इति शान्तिवर्णिविरचितायां प्रमेयकण्ठिकायां द्वितीयः स्तबकः ।

*अन्तिम भाग—*

श्रीशान्तिवर्णिविरचितायां प्रमेयकण्ठिकायां पञ्चमः स्तबकः समाप्तः ।

प्रमेयकण्ठिका जीयात्प्रसिद्धानेकसद्गुणा ।
लसन्मार्तण्डसाम्राज्ययौवराज्यस्य कण्ठिका ॥
सनिष्कलङ्कं जनयन्तु तर्के वा बाधितर्का मम तर्करत्ने ।
केनानिशं बहलहतः कलङ्कश्चन्द्रस्य किं भूषणकारणं न ॥

इस प्रमेयकण्ठिका के प्रणयन-द्वारा श्रीशांतिवर्णी जी ने माणिक्यनन्दिकृत परीक्षामुख-सूत्र के आधार पर अन्यान्य सांख्य, सौगत, भाट्ट एवं प्रभाकरादि दार्शनिकों के प्रमाणलक्षण आदि सदोष सिद्ध किये हैं। गुरुपरम्परा एवं गण गच्छादि की चर्चा इस ग्रन्थ में नहीं होने के कारण शांतिवर्णी जी के विषय में अभी कुछ कहना असम्भव है। इसमें पाँच स्तबक हैं। प्रत्येक में अपने दार्शनिक सिद्धांत का मण्डन तथा अन्य मत का खण्डन है। रचना-शैली परिष्कृत है।

---

(२३) ग्रन्थ नं० $\frac{२३१}{ख}$

# शृंगारार्णवचन्द्रिका

कर्त्ता—विजयवर्णी

---

विषय—अलङ्कार

भाषा—संस्कृत

*लम्बाई—८॥ इञ्च* चौडाई—७ इञ्च *पत्रसंख्या १०९*

---

*प्रारम्भिक भाग—*

जयति ससिद्धका(?)न्तालापपमार्कण्यम (?)
षड्गुणयुतजीवन्मुक्तिपंम्म ।
रत्नागोमार्गनिकागारम्यो—
जिनपतिरत्नत्रयमथाभूतानि (?) नत्ये ॥१॥

अमन्दानन्दसन्दोहपीयूषरसदायिनीम् ।
स्तवीमि शारदां दिव्यां सज्ज्ञानफलशालिनीम् ॥२॥
समन्तभद्रादिमहाकवीश्वरैः कृतप्रबन्धोज्ज्वलसत्सरोवरे ।
लसद्रसालंकृतिनीरपंकजे सरस्वती क्रीडति भावबंधुरे ॥३॥
श्रीमद्विजयकीर्तीन्दोस्सूक्तिसन्दोहकौमुदी ।
मदीय धात्मसन्ताप हृत्वानन्दं ददा त्वरम् ॥४॥
श्रीमद्विजयकीर्त्याख्यगुरुराजपदांबुजम् ।
मदीयचित्तकासारे स्थेयात्सं शुद्धधीजले ॥५॥
मलयानिलसंकाशो गुणसौरभवद्धकः ।
सन्तापहज्जगानन्दः सुजनो जीवताच्चिरम् ॥६॥
गुणवर्मादिकर्णाटकवीनां सूक्तिसञ्चय ।
वाणीविलास संदेयाद् रसिकानन्ददायिनम् ॥७॥
राजनीतिमहाशास्त्रनिरूपितफलप्रदाम् ।
नानातरुकृतासारनवीवनविभूषिताम् ॥८॥
सं दे पुरसंकाशनानानगरभासुराम् ।
जिनराजमहाधर्मश्रावकोत्तमराजिताम् ॥९॥
अष्टदशमहाश्रेणीभूषितां श्रीमतीतराम् (?) ।
पश्चिमार्णवपर्यन्तां दशां सुखसुखप्रदाम् ॥१०॥
श्रीमद्भरतराजेन्द्रनामचक्रधरोपम ।
श्रीवीरनरसिंहाख्यबंगभूमीश्वरो महान ॥११॥
पालयत्यमलो बंगवाडीपुरसमन्विताम् ।
कादम्बवंशजनितानेकभूमीशपालिताम् ॥१२॥
तस्यानुजो गुणा दी पाण्ड्यनरेश्वरः ।
सत्येन रामचन्द्रोऽभूद्धर्मेण भरतेश्वरः ॥१३॥
रत्नत्रयमहाधर्मरत्नको राजशेखरः ।
महाकविजनस्तूयन् (?) मानसत्कीर्तिनायकः ॥१४॥
सोऽपि श्रीपाण्ड्यबंगोऽयं जिनपादाब्जषट्पदः ।
अनुक्रमगतां भूमिं पूर्वोक्तां रक्षतिस्म वै ॥१५॥
तस्य श्रीपाण्ड्यबंगस्य भागिनेयगुणाग्रणीः ।
विट्ठलाम्बा महादेवी पुत्रो राजेन्द्रपूजितः ॥१६॥

श्रीकामरायबगोऽभून्नाम्ना नृपतिकुञ्जरः ।
वैरिसन्दोहगन्धेभघटाकण्ठीरवोपमः ॥१७॥
क्रमागतामिमां भूमिं पश्चिमाम्भोधिभूषिताम् ।
श्रीकामिरायबगेन्द्रः पालयत्यमलश्रियम् ॥१८॥
सराजकां ··गोष्ठीषु सभाजनविभूषितः ।
अपृच्छद्वितीय (?) नाम्ना कविताशक्तिभासुरम् ॥१९॥
काव्यस्य लक्षणं किम्वा वर्णाशुद्धिश्च कीदृशी ।
रसभावौ कथम्भूतौ ते नृभेदाश्च कीदृशाः ॥२०॥
कीदृश्यलंकृती रीतिः कीदृग्वृत्तिश्च कीदृशी ।
कीदृग्दोषो गुणो कीदृक् पृच्छतिस्मेति मां नृपः ॥२१॥
इत्थं नृपप्रार्थितेन मयाऽलङ्कारसंग्रहः ।
क्रियते सूरिणा(?) नाम्ना शृङ्गारार्णवचन्द्रिका ॥२२॥

× × ×

मध्य भाग (परपृष्ठ ३९, पंक्ति २)

सुकुमारत्वमौदार्यं श्लेषः कान्तिः प्रसन्नता ।
समाधिरोजोमाधुर्यमर्थव्यक्तिस्तु साम्यकम् ॥४॥
एते दशगुणाः प्रोक्ता दश प्राणाश्च भाविताः ।
यथासंख्यं मया तेषां लक्षणं प्रतिपाद्यते ॥५॥
श्रुतिचेतोद्वयानन्दकारिणां कोमलात्मनाम् ।
वर्णानां रचना-न्यासः सौकुमार्यं निरूप्यते ॥६॥
श्रीरायबगक्षितिनायकस्य कीर्त्तिर्विशाला वरचन्द्रिकेव ।
न चेत्त्रिलोकीजनचित्तजात सन्ताप-जालं क निराकरोति ॥७॥
अर्थन्चारुत्वगमक पदान्तरविराजितम् ।
पदानां यदुपादान तदौदार्य मत यथा ॥८॥
शब्दानामभिधेयानां गुणोत्कर्षो यथाथवा ।
तदौदार्यं मत लोके तदुदाहरणं यथा ॥९॥
कादम्बनाथस्य मदान्धशूरक्षोणीधरोत्तुंगमहागजेन्द्रः ।
दिग्दन्तिनैरावतनामकेन स्पर्धां विधत्ते जगदद्भुतोऽसौ ॥१०॥
परस्परं प्रयुक्तानि स्यूतानीव पदानि वै ।
निबिडानि प्रवर्त्तन्ते यत्र स श्लेष उच्यते ॥११॥

यस्योत्तुङ्गविशालकीर्त्तिविसरं दृष्ट्वा जगन्मोदते
जीयाद्भिर्दिगिभो(?) महाधवलिमा व्योमापगा बन्धुरा।
नानाकारविचित्रशारदमहामेघावलीप्रोल्लसत्
कैलाशाचलभूरिसारमिति का मत्वा(?)जगज्जृम्भितम् ॥१२॥

× × × ×

अन्तिम भाग :—

निर्दोषे सगुणे काव्ये साल‍ङ्कार रसान्विते।
रायवगमहीनाथ तव कीर्त्तिः प्रवर्त्तताम् ॥११४॥
स्याद्वादधर्मपरमामृतदत्तचित्तः सर्वोपकारिजिननाथपदाब्जभृङ्गः।
कादम्बवंशजलराशिसुधामयूखः श्रीरायवंगनृपतिर्जगतीह जीयात् ॥११५॥
गर्वारूढविपक्षवर्गबलसंघाताद्भुताडम्बर
मन्त्रोद्भूर्जनघोरनीरदमहासन्दोहझञ्झानिल।
प्रोद्यद्भानुमयूखजालविपिनव्रातानलज्वालसद्
दृश्योद्गालुरवीरविक्रमगुणस्ते रायवंगोद्भय ॥११६॥
कीर्तिस्ते विमला सदा परगुणा वाणी जयश्रीपरा
लक्ष्मीः सर्वहिता सुखं सुरसुखं दानं विधानं महत्।
ज्ञानं पीनमिदं पराक्रमगुणस्तुङ्गो नयः कोमलं
रूपं कान्ततरं जयन्तमिव(?) भो श्रीरायभूमीश्वर ॥११७॥

इति परमजिनेन्द्रवदनचन्द्रविनिर्गतस्याद्वादचन्द्रिकाचकोरविजयकीर्त्तिमुनीन्द्रचरणाब्जचञ्चरीकविजयवर्णिविरचिते श्रीवीरनरसिंहकामिरायनरेन्द्रशरदिन्दुसन्निभकीर्त्तिप्रकाशके शृङ्गारार्णवचन्द्रिकानाम्नि अलङ्कारसंग्रहे दोषगुणनिर्णयो नाम दशमः परिच्छेदः समाप्तः।

सुप्रसिद्ध प्राचीन अलङ्कारग्रन्थ 'साहित्यदर्पण' की तरह इस में भी भिन्न भिन्न नाम के निम्नलिखित दश परिच्छेद हैं पर है यह स्वतन्त्र पर सरल अलङ्कार-ग्रन्थ :—

(१) वर्ण गण-फल निर्णय (२) काव्यगत शब्दार्थ-निर्णय (३) रस-भाव-निर्णय (४) नायक भेद-निर्णय (५) दश-गुण निर्णय (६) रीति-निर्णय (७) वृत्ति निर्णय (८) शय्या-भाग निर्णय (९) अलङ्कार-निर्णय (१०) दोष-गुण-निर्णय।

मंगलाचरण के पाँचवें श्लोक से ज्ञात होता है कि इस 'शृङ्गारार्णवचन्द्रिका' के प्रणेता विजयवर्णी विजयकीर्त्ति के शिष्य थे। किन्तु इन विजयकीर्त्ति के सम्बन्ध में साधनाभाव

के कारण इस समय कुछ भी नहीं लिखा जा सका। दक्षिण कन्नड जिला में शासन करनेवाले जैनराज-वंशों में बंगवंश तुळु राज्य में सर्वमान्य सम्मान प्राप्त किये हुआ था। यह सम्मान आज भी इस वंश को पूर्ववत प्राप्त है। शालिवाहन शक १०७९ (ई० सन् ११५७) के पहले का इस वंश का कोई विश्वस्त परिचय नहीं मिलता। बंगवंश के मूल चरित्र के सम्बन्ध में ऐतिहासिक विद्वानों में मतभेद है। इसीलिये शालिवाहन शक १०७९ (ई० सन् ११५७) से इस वंश का प्रामाणिक चरित्र वीरनरसिंह बंगराज से प्रारंभ होता है। बल्कि इस चरित्र में किसी को कोई आपत्ति भी नहीं है। मैसूर में जो गंगवंश चिरकाल तक शासन कर चुका है वही यह बंगवंश माना जाता है। वास्तव में 'गंग' और 'बंग' इन नामों में अक्षर-साम्य स्पष्टतया प्रतीत होना ही इसके एकीकरण का समर्थन करता है।

इनके वंशज पहले मैसूर प्रांतान्तर्गत गंगवाडि नामक स्थान में दीर्घकालतक राज्यशासन करते रहे। पीछे होयिसळ राजा विष्णुवर्द्धन के द्वारा युद्ध में इन वीरनरसिंह के पूज्यपिता चन्द्रशेखर के मारे जाने पर वहाँ का राज्यशासन-सूत्र विष्णुवर्द्धन के हस्तगत हुआ। इनके बाद स्वर्गीय चन्द्रशेखर के शुभ-चिन्तक मन्त्री पुरोहित आदि इनके पुत्र वीरनरसिंह को लेकर कुछ कालतक मलेनाडु में छिप-लुक कर जीवन विताते रहे। पश्चात विष्णुवर्द्धन के लोकान्तरित होने पर ये निर्भीक होकर पश्चिम-घाटी से उतर कर बंगवाडि (दक्षिण कन्नड जिला) में आकर रहने लगे। ज्ञात होता है कि 'गंग' 'बंग' के नामानुकूल ही क्रमशः इनकी राजधानी का नाम गंगवाडि एवं बंगवाडि रक्खा गया था। वास्तव में बाद की यह बंगवाडि उनकी पूर्वराजधानी गंगवाडि की याद दिला रही है।

अस्तु, एक समय विष्णुवर्द्धन के पुत्र त्रिभुवनमल्ल अपनी प्रजाओं की देख-रेख करने के निमित्त जब दक्षिण कन्नड जिला में आये तब वह बंगवाडि भी गये। इस सुअवसर को पाकर मन्त्री पुरोहित आदियों ने राजकुमार को उक्त त्रिभुवनमल्ल के समक्ष उपस्थित कर दिया। इन्होंने इस राजकुमार को होनहार देख एवं प्रसन्न हो इन्हें उस प्रांत का शासक बनाकर अपने ही नामानुसार इनका नाम भी वीरनरसिंह रक्खा। इनका भी पूरा नाम त्रिभुवनमल्ल वीरनरसिंह ही था। यह बातें बंगचरित्र आदि पुस्तकों में विस्तृतरूप से प्रतिपादित हैं।

शालिवाहन शक ११३० (ई० सन् १२०८) में इन वीरनरसिंह का पुत्र चन्द्रशेखर बंग सिंहासनारूढ हुए। इनके बाद शालिवाहन शक ११४७ (ई० सन् १२२४) में इनके छोटे भाई पाण्ड्यप्प बंग शासक हुए। इनके बाद शालिवाहन शक ११६२ (ई० सन् १२३९) में इनकी बहन विट्ठलादेवी राज्यशासन की सञ्चालिका नियत हुई। तत्पश्चात् शालिवाहन

शक ११६६ (ई० सन् १२६४) में इनका पुत्र प्रथम कामरायबंग राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। इन्हीं की प्रेरणा एवं प्रार्थना से श्रीमान् कविवर विजयवर्णी जी ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है। उल्लिखित ये ऐतिहासिक बातें इनकी प्रतिपादित राजपरम्परा-वर्णन से भी अंशतः मिलती हैं। इस अलंकार ग्रन्थ में गुण रीति दोष एवं अलङ्कारादि के लक्षणों के जितने उदाहरण दिये गये हैं वे सभी अपने प्रेरक कामराय बंग के प्रशंसा-परक पद्यमय हैं। कवि के 'श्रीवीर-नरसिंह-कामरायबंगनरेन्द्रशरदिन्दुसन्निभकीर्तिप्रकाशके शृङ्गारार्णव चन्द्रिकानाम्नि अलङ्कारसंग्रहे" इस अन्तिम वाक्य से भी उक्त राजा का प्रशंसा-परक काव्य लिखना ही सिद्ध होता है। कवि वर्णी जी प्रारम्भिक सातवें पद्य में सुप्रसिद्ध कन्नड़ कवि गुणवर्मा का भी स्मरण करना नहीं भूले हैं। इसी के प्रारम्भिक अन्यान्य कई पद्यों से बंगवाडि की प्राचीन समृद्धि स्पष्ट झलकती है। बारहवें पद्य से कदम्बराजवंश भी इस प्रांत का शासक रह चुका है—यह बात पुष्ट होती है। ग्यारहवें से १७वें तक के पद्यों में वीरसिंह पांड्यप्पबंग एवं कामराय की विशेष रूप से प्रशंसा की गयी है। वर्णी जी ने इस ग्रन्थ के कई पद्यों में छन्दोभंग न हो इस लिहाज से 'श्रीराय' 'रायराट्' आदि संक्षिप्त संकेतों के द्वारा ही अपने आश्रयभूत कामराय का उल्लेख किया है। १९५ के पद्यगत "कादम्बवंश-जलराशिसुधामयूख" इस कथन से तो यह बंगवंश 'गंग' वंश न होकर 'कदम्ब' सा ज्ञात होता है—यह बात अवश्य विचारणीय है।

---

(२४) ग्रन्थ न० २३५/ख

# त्रैवर्णिकाचार

कर्ता—ब्रह्मसूरि

विषय—श्रावकाचार

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १७ इञ्च | चौडाई ७ इञ्च | पत्रसंख्या ५९

*प्रारम्भिक भाग—*

अथोच्यते त्रिवर्णानां शौचाचारविधिक्रमः।
शौचाचारविधिप्राप्तो देहं संस्कर्तुमर्हति ॥१॥

संस्कृतो देह एवासौ दीक्षणाद्यभिसम्मतः ।
विशिष्टान्वयजोऽप्यस्मै नेष्यतेऽयमसंस्कृतः ॥२॥
असंस्कृता सुभूमिश्च नहि शस्यप्रवृद्धये ।
सुवस्तुनिर्मितादर्शो मलसङ्गान्नहीक्ष्यते ॥३॥
दीक्षणं जिनदीक्षात ततोहि परमं तपः ।
ततो दुष्कृतिनाशः स्यात्ततो हि परमं सुखम् ॥४॥
सुखं वाञ्छन्ति सर्वेऽपि जीवा दुःखं न जातुचित् ।
तस्मात्सुखैषिणो जीवा संस्कारायाभिसम्मताः ॥५॥
शौचमाचारवारोऽपि संस्कार इति भाषितः ।
अस्मादेव वहिश्शुद्धिरुदिता गृहचारिणाम ॥६॥
अन्तश्शुद्धिस्तु जीवानां भवेत्कालादिलब्धिता ।
एषा मुख्यापि संस्कारे वाह्यशुद्धिरपेक्ष्यते ॥७॥
बीजस्याङ्कुरशक्तिस्तु विद्यमानापि वृद्धये ।
सुभूमिलेखातोयादिबाह्यहेतुरपेक्ष्यते ॥८॥
देहद्वारविशुद्धिश्च स्नानमाचमनादिकम् ।
सूतकाद्युपशुद्धिश्च शौचमित्यत्र भाषितम् ॥९॥
आचारो बहुधा प्रोक्तो गर्भाधानादिभेदतः ।
वक्ष्यतेऽसाविदानीन्तु शौचस्य विधिरुच्यते ॥१०॥

× × ×

*मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ २२, पंक्ति ४)—*

अथ नत्वा जिनाधीशमनघं विश्ववेदिनम् ।
ब्राह्मणादित्रिवर्णानामघभेदोऽभिधीयते ॥
इज्यादि कर्म घटते नास्मिन्निति निरुच्यते ।
अघमाशौचशब्देनाप्येतदेवाभिलष्यते ॥
चतुर्विधं भवेदेतदार्तवादिविभेदतः ।
आर्तवं सौतिकं आर्तं तत्संसर्गजमित्यपि ॥
आर्तवं पुष्परजसि ऋतुश्चेत्यभिधीयते ।
प्रकृतं विकृतं चेति स्त्रीणां तद् द्विविधं भवेत् ॥
मासे मासे समुद्भूतं प्रायः प्रकृतमुच्यते ।
द्रव्यरोगादिभिर्जातमकाले विकृतं रजः ।

कालजे त्र्यहमाशौचं तद्वद्दोवृक्षनात्परम् ।
अथरात्रात्परं तच्चेत्प्रभाताद्यमिष्यते ॥

× × ×

अंतिम भाग —

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः ।
इत्याश्रमास्तु चत्वारो जैनानामागमोदिताः ॥

तत्रोपनयादारभ्य समावर्तनपर्यन्तमुपनयनब्रह्मचारी। स्त्रीसेवां कुर्वाणो जुगुप्सया गुरुसमक्षे तन्निवृत्तः आलम्बनब्रह्मचारी। विवाहपूर्वकं निधुवनपरिग्रहारम्भादिक्रियाप्रवृत्तो गृहस्थः । परिग्रहानुमत्युद्दिष्टनिवृत्ताः वानप्रस्थाः । वैराग्यदीक्षितो महाव्रती भिक्षुः । इत्याश्रमलक्षणम् ।

आद्याद्याचारवर्यांघ्रियुगः सम्यग्धर्मशुद्धमव्रतानामिधाम (?)
भव्यः सेव्यो यतिभिर्वन्द्यमानं यास्यत्यतो (?) ब्रह्मसौख्यास्पदं तत् ॥

इति ब्रह्मसूरि विरचिते जिनसंहितासारोद्धारे प्रतिष्ठा (?) तिलकनाम्नि त्रैवर्णिकाचारश्च ये (संग्रहे) गर्भाधानादिविवाहपर्यन्तकर्मणां मन्त्रप्रयोगो नाम पञ्चम पर्व समाप्तम् ।

इस त्रैवर्णिकाचार के कर्ता श्रीब्रह्मसूरि हैं। इसमें इन का कोइ आत्मपरिचय नहीं है किंतु इन्हीं के प्रणीत 'प्रतिष्ठासारोद्धार' नामक प्रतिष्ठा-ग्रन्थ में जो इनका परिचय उपलब्ध होता है—वह इस प्रकार है —

पाण्ड्य देश में गुडिपत्तन नामका एक द्वीप था। वहाँ का शासक पाण्ड्य नरेन्द्र था। यह बड़ा ही धर्मात्मा शूरवीर कला-कुशल और पण्डितसेवी रहा। वहीं वृषभ तीर्थङ्कर का एक मनोज्ञ रत्न एवं सुवर्णग्रथित मन्दिर था; उसमें विशाखनन्दी आदि अनेक परम विद्वान् मुनिगण निवास करते थे। इसके बाद यह आगे सुप्रसिद्ध पुराण-प्रणेता जिनसेनाचार्य की आम्नाय परम्परागत गोविन्दभट्ट को ही अपना पूर्वपुरुष व्यक्तकर निम्न रीति से अपनी वंशपरम्परा का उल्लेख करते हैं —

उक्त गोविन्दभट्ट के श्रीकुमार, सत्यवाक्य देवरवल्लभ उदयभूषण हस्तिमल्ल और वर्द्धमान नाम के छः लड़के थे। प्रख्यात कवि हस्तिमल्ल का पुत्र पण्डित पार्श्व भी थे। यह अपने पिता के समान ही यशस्वी, धर्मात्मा एवं शास्त्रमर्मज्ञ विद्वान् थे। पीछे यह पार्श्व पण्डित वशिष्ठ काश्यपादि गोत्रज अपने बन्धुबान्धवों के साथ होयिसल देश में जाकर रहने लगे। यह होयिसळ राजवंश पश्चिमी घाटी की पहाड़ियों में कडूर जिले के

मञ्जुगिरि तालुक मे अङ्गडि नामक स्थान से प्रादुर्भूत हुआ था। इसीका प्राचीन नाम शशकपुर रहा। यहाँ पर सळ नाम के सामन्त ने व्याघ्र से एक जैन मुनि की रक्षा करने के कारण पोयिसळ (होयिसळ) नाम प्राप्त किया। विद्वानो का कहना है कि प्रारम्भ में यह वंश पहाडी था, पीछे विनयादित्य के उत्तराधिकारी वल्लाळ ने अपनी राजधानी शशकपुर से वेलूर मे हटाली। द्वारसमुद्र (हळेवीडु) मे भी उनकी राजधानी थी। इस वंश के विष्णुवर्द्धन के समय मे होयिसळ नरेशो का प्रभाव बहुत ही बढ गया था। इसी समय गंगवाडि का पुराना राज्य भी सब उनके अधीन हो गया था और उन्होने कई प्रदेशों को विजय-द्वारा हस्तगत कर लिया था। प्रारम्भ मे विष्णुवर्द्धन जैन रहा, किन्तु पीछे वैष्णव हो गया था। पर फिर भी इनकी तथा इनके परिवार-वर्ग की जैनधर्म से सदा सच्ची सहानुभूति रही। होयिसळ राज्य पहले चालुक्य साम्राज्य के अन्तर्गत था, बाद नरसिंह के पुत्र वीरवल्लाळ के समय मे यह राज्य स्वतन्त्र हो गया। यह वंश सदा से जैनियो का प्रधान पृष्ठ-पोषक रहा।

उल्लिखित राज्य की राजधानी ग्रन्थकर्त्ता ब्रह्मसूरि जी ने 'छत्र-त्रयपुरी' लिखा है। परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणो से इस वंश की राजधानी सिर्फ तीन स्थानो मे ही सिद्ध होती है, जिनके नाम क्रमश (१) शशकपुर (२) वेलूरु (३) और द्वारसमुद्र या हळेवीडु है। पता नहीं कि सूरि जी द्वारा निर्दिष्ट छत्रत्रयपुरी कहाँ थी और कब इस राज्य के अन्तर्भुक्त हुई। सभव है कि द्वारासमुद्र को ही इन्होने छत्रत्रयपुरी लिखा हो। क्योकि एक जमाने मे यह द्वार-समुद्र जैनियों का केन्द्र सा बन गया था। बल्कि कहा जाता है कि उन दिनो वहाँ साढे सात सौ भव्य जिनमन्दिर थे और वैष्णव धर्म स्वीकार करने के बाद विष्णुवर्द्धन ने ही इन भव्य मन्दिरो को तहस-नहस कर दिया। वहाँ के जिनमन्दिरो के ध्वसावशेष से भी यह पता चलता है कि उल्लिखित घटना वास्तविक है। अब हळेवीडु मे केवल आदिनाथ, शान्तिनाथ एवं पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर के तीन ही मनोज्ञ मन्दिर रह गये है, जो भारतीय शिल्पकला के आदर्शभूत बने हुए है। कविवर हस्तिमल्ल जी के सुपुत्र निर्दिष्ट पार्श्वपण्डित के चन्द्रप, चन्द्रनाथ और वैजय्य नामक तीन पुत्र थे। इनमे चन्द्रनाथ और इनके परिवार पीछे हेमाचल (होन्नूरु) मे जा बसे। अवशिष्ट दो भाई भी अन्यान्य स्थानो मे जाकर बस गये। चन्द्रप के पुत्र विजयेन्द्र हुए और इन्हीं के सुपुत्र इस त्रैवर्णिकाचार ग्रन्थ के प्रणेता पण्डित ब्रह्मसूरि जी है।

सूरि जी ने पूर्वोक्त प्रतिष्ठाग्रन्थगत अपनी वंश-प्रशस्ति मे अपने पूर्वजो का निवास-स्थान पाण्ड्य देशान्तर्गत 'गुडिपत्तन द्वीप' बतलाया है। वर्तमान तंजोर जिलान्तर्गत 'दीपनगुडि' का ही यह प्राचीन 'गुडिपत्तन द्वीप' होना बहुत कुछ सम्भव है। मालूम होता है कि

लेखक की कृपा से ही 'वीपन' का 'द्वीप' लिखा गया है। क्योंकि यहाँ पर द्वीप का होना किसी तरह से सिद्ध नहीं होता। इस स्थान म जैनियों का प्रभाव अच्छा रहा है।

जैन समाज के कुछ विद्वान् इस ग्रन्थ को प्रामाणिक मानने के लिये सहमत नहीं हैं। क्योंकि उनका कहना है कि जैन सिद्धान्त के प्रतिकूल श्राद्ध तथा गो-दान आदि कइ बात इस म विधिरूप म पायी जाती हैं। उन विद्वानों का कहना है कि भद्रसूरि जी के मूल पूर्वज हिन्दू धर्मावलम्बी थे—इससे इनके रचे ग्रन्थ पर हिंदुत्व की छाप पड़ गयी है। कुछ विद्वान इस आक्षेप का उत्तर यह देते हैं—प्रत्येक धर्म पर देश काल आदि का बिना प्रभाव पड़े नहीं रह सकता इसलिये इस अनिवार्य नियमानुसार बहुत कुछ सम्भव है कि बहुसंख्यक हिन्दू समाज में अपनी सत्ता कायम रखने और हिंदुओं से सहानुभूति प्राप्त करने के लिये तात्कालिक कुछ जैनग्रन्थ-कर्त्ताओं को कुछ आचार ग्रन्थों में आपद्धर्म के रूप में उनका उद्देश जैनधर्मके अनुकूल बता कर स्थान देना पड़ा होगा।

---

(२५) ग्रन्थ नं० $\frac{२२०}{ख}$

# रत्नमञ्जूषा

कर्त्ता— ×

---

विषय छन्द

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८।। इञ्च चौड़ाई ६।।। इञ्च पत्रसंख्या १५

---

*प्रारम्भिक भाग—*

यो भूतभव्यभवदर्थयथार्थवेदी देवासुरेन्द्रमुकुटार्चितपादपद्मः।
विद्यानदीप्रभवपर्वत एक एष स श्रीवर्धमानजिनपो(?) प्रणमामि वीरम् ॥

मायाका—मायाका इत्यस्य सज्ञगुरुलिकस्य आकार संज्ञा भवति ककारो वा स्वरोन्त्यस्तदन्तस्य व्यञ्जनं चेतिवचनात्। सचिमुखिया इत्याकारस्य भद्गविपादविकिर इति ककारस्य। अत्रैव माया इति गुरुद्वयस्य यकारः संज्ञा भवति व्यञ्जनञ्च तदन्तस्येति वचनादेरावियमिति। पुनश्च त्रैव मा इति गुर्वन्तस्य मकारः संज्ञा भवति। अयवर्ग च

तदन्तस्येति वचनादेव। म इति अक्षरे एकस्मिन्नप्याद्यन्तवद्भावात्। सयोगे नपिमिति। अत्राह—नत्वाकारादयस्तेषामेवाक्षराणां सज्ञा यथा वृद्धिरादैजिति वृद्धिसज्ञा तेषामेवाक्षराणां इति न तद्रूपसज्ञाकरणे प्रयोजनाभावात्तन्मात्राणाम्। यान्यत्र तेषु त्रिकेष्वक्षराण्युपदिष्टानि तेषां सज्ञाकरणानि प्रयोजनमितितन्मात्राणां सर्वासां सज्ञास्ता प्रत्यवगन्तव्या। अथवा शालिनि मालयेदित्यत्र छेदवचन ज्ञापकमन्येषां इति तन्मात्राणां सज्ञा इति। यदि तेषामेव सज्ञा मायाका इति छेदवचनमनर्थक भवति तस्मात्तन्मात्राकरणमेव।

× × × ×

*मध्य भाग (पृष्ठ ४६ पंक्ति ३०)*

उपेन्द्रवज्रा शरे—यदि शरे इति न्यासो भवति, भवति उपेन्द्रवज्रा नाम।

उपेन्द्रवज्रायुतपाण्डवेषु स्थितेष्वपि ख्यातपराक्रमेषु।
पुराभिमन्यु यदि चेज्जयेनां जगद्रथो रक्षति कङ्कमन्यः॥

इन्द्रमाला द्वयम्—यदीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रे सहैकस्मिन् श्लोके भवत, भवति इन्द्रमाला नाम।

अम्लानमाला सुरसुन्दरीभि वृतेन्द्रमाला च्यवते दिवश्चेत्।
कालेन नार्या इव भुक्तमाला मर्त्या वय किं जलबुद्बुदाभा॥

दोधक लुपे—यदि लुपे इति न्यासो भवति, भवति दोधक नाम।

कालविधाविव नाटकवृत्त दर्शयितु भुवि सर्वजनेभ्यः।
अम्बररगमसो गिरिकूटात् सूर्यनट प्रविशन्निव भाति॥

रथोद्धता तिलौ—यदि तिलाविति न्यासो भवति, भवति रथोद्धता नाम।

सर्वभावविधितत्त्वदर्शिन सर्वसत्त्वहितधर्मदेशिन।
अर्हतोऽहमघपाशिनाशिन सस्तुवे त्रिभुवनप्रकाशिन॥

स्वागता तिले—यदि तिले इति न्यासो भवति, भवति स्वागता नाम।

धर्मतीर्थकरमुख्य नमस्ते नाथ नष्टभवबीज नमस्ते।
वद्धसर्वजनवृत्त नमस्ते हेमनाभजिनमान नमस्ते॥

× × × ×

*अन्तिम भाग।—*

एकद्व्यादिलगक्रियांकसमसख्यानेषु कोष्ठान्तरे-
ष्वेकादीन्द्विगुणानधो विरचयेत्तांश्चोर्ध्वमेकोनकान्।
इत्यन्तावधिमेरुरेष महित स्याद्धर्ममानाह्वय
छन्दःस्वेकलगादिवृत्तजननस्थान त्विह ज्ञायते॥९॥

एकद्व्यादिलगक्रियासगणनामानप्रमाणालये
मेरुक्ष्माधरवद्विरच्य खटिकोत्कीर्णैरथाधालये ।
वृत्त यस्य तदादिम द्विगुणयस्तस्याप्यधः स्थापये
देकोनेन तदोपरि परिलिखेदेव हि मेरुक्रिया ॥१०॥

खण्डमेरुप्रस्तारो यथा—

सैकामेकगणोज्ज्वलामभिमतच्छन्दोऽक्षरागारिका
मेकां श्रेणिमुपदिपश्चधरतोऽप्येकैकहीनाश्च ताः ।
ऊर्ध्वं द्विद्विगृहांकमेलनमधोधः स्थानकेष्वालिखे
देकच्छन्दसि खण्डमेरुरमलः पुंनागचन्द्रोदितः ॥११॥

एतत्पथोक्तक्रमेण प्रस्तारे कृते विवक्षितछन्दसः लगक्रियया सह तत पूर्वस्थितसकल छन्दसां लगक्रियाः सर्वाः समायान्तीत्यर्थः ॥

इनके नीचे प्रस्तार के तीन कोष्ठक भी है)

दिगम्बर जैन साहित्य-भाण्डार में छन्दोग्रन्थ-सम्बन्धी अजितसेन के छन्दःशास्त्र वृत्तवाद एवं छन्दःप्रकाश आशाधर के वृत्तप्रकाश चन्द्रकीर्ति के छन्दःकोष (प्राकृत) एवं वाग्भट के प्राकृतपिङ्गल सूत्र ये ही नाम मिलते हैं। परन्तु इन में अभीतक कोई ग्रन्थ मुद्रित नहीं हुआ है। अब रही प्रस्तुत पुस्तक 'रत्न मञ्जूषा' की बात। पं० नाथूराम जी प्रेमी के द्वारा संगृहीत "दिगम्बर जैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ" इस ग्रन्थतालिका में इसके कर्त्ता हेमचन्द्र कवि बतलाये गये हैं। परन्तु इस छन्दोग्रन्थ के अन्तिम भाग के अन्तिम श्लोकान्तगत 'पुंनागचन्द्रोदित' इस वाक्य से तो ज्ञात होता है कि पुंनागचन्द्र या नागचन्द्र ही इसके प्रणेता हैं। प्रेमी जी के कथनानुसार अगर इस 'रत्नमञ्जूषा' के रचयिता हेमचन्द्र कवि होते तो 'पुंनागचन्द्रोदित' के स्थान पर बड़ी आसानी से 'श्रीहेमचन्द्रोदित' लिख देते। क्योंकि ऐसा करने से छन्दोभंग का उन्हें जरा भी भय नहीं रह जाता था। साधनाभाव से इस समय इसके कर्त्ता के बारे में कुछ भी प्रकाश नहीं डाला जा सका। यदि थोड़ी देर के लिये अर्थात् प्रेमी जी ने किस आधार पर इस का कर्त्ता हेमचन्द्र कवि लिखा है—यह बात जब तक स्पष्ट नहीं होती तब तक के लिये नागचन्द्र को ही इसका प्रणेता माना जाय तो महाकवि धनंजय कृत विषापहार स्तोत्र के संस्कृत टीकाकार कवि नागचन्द्र* की ओर मेरी दृष्टि कुछ कुछ आकृष्ट हो जाती है। पर यह एक अनुमान

* देखें—'प्रशस्ति संग्रह' पृष्ठ १०।

मात्र है। जब तक इस सम्बन्ध में कोई सबल प्रमाण नहीं मिलता है तबतक इसे कोई मानने को तैयार क्योंकर हो सकता है ?

अब रहा इस छन्दोग्रन्थ का विषय। यह ग्रन्थ छोटे छोटे आठ अध्यायों में विभक्त है। इस प्रति को मैसूर राजकीय 'प्राच्यपुस्तकागार' से मैंने ही कन्नड लिपि से नागराक्षर में प्रतिलिपि कराई थी। इसके अष्टम अध्याय का कुछ अंश लुप्त सा ज्ञात होता है। इस लुप्तांश के बाद ही तीन पृष्ठों में मेरुसम्बन्धी प्रस्तार के पद्यबद्ध लक्षण सकोष्ठक दिये गये हैं। कवि ने इस ग्रन्थ में प्राय: प्रत्येक छन्द पर अच्छा प्रकाश डाला है। इसके छन्दो-लक्षण पिंगलसूत्र के समान सूत्रमय हैं जो नितांत स्वतन्त्र हैं। छन्दों के दिये गये दृष्टांतों में यत्र-तत्र जैनत्व की छाप सुस्पष्ट प्रतिभासित होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस के कर्त्ता काव्यशास्त्र के एक उद्भट मर्मज्ञ थे। इसकी अन्यान्य प्रतियाँ जहाँ तहाँ से अन्वेषण एवं मिलान कर इस रत्नभूत 'रत्नमंजूषा' के प्रकाशन से दिगम्बर जैनसाहित्य के एक अङ्ग की पूर्ति हो जायगी। अन्यान्य पुस्तक-प्रकाशन-संस्थाओं और जैन परीक्षालयों को इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये। क्योंकि आजतक सभी जैन परीक्षालयों के पाठ्य ग्रन्थों में जैनेतर छन्दोग्रन्थ ही समाविष्ट होते आ रहे हैं।

---

(२६) ग्रन्थ नं० २३७/ख

# सरस्वतीकल्प

कर्त्ता—मलयकीर्त्ति

विषय—मन्त्रशास्त्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६।।। इञ्च    चौडाई ६ इञ्च    पत्रसंख्या ७

प्रारम्भिक भाग—

वारहअंग गिज्जा दसणतिलया चरित्तवत्थहरा।
चउदसपुव्वाहरणा ठावे दव्वाय सुददेवी ॥
आचारशिरसं सूत्रकृतवक्त्रां (सरस्वतीं) सकण्ठिकाम्।
स्थानेन समयोद्ध्य (स्थानांगसमयांश्रि ता) व्याख्याप्रज्ञप्तिदोर्लताम् ॥

एकद्व्यादिलगत्रियासगणनामानप्रमाणालये
मेरुक्ष्माधरयद्विरच्य खनिकोत्कोर्णैस्याघालये ।
वृत्ते न्यस्य तदादिमं द्विगुणयस्तस्याप्यधः स्थापये
देकोनेन सदोपरि परिलिखेदेव हि मेरुक्रिया ॥१०॥

खण्डमेरुप्रस्तारो यथा—
सैकामेरगणो ज्वरामभिमतच्छन्दोऽक्षरागारिका
मेकां श्रेणिमुपलिपधरतोऽप्येकैकहीनाश्च ताः ।
ऊर्ध्व द्विद्विपूर्वांकमेलनमधोध स्थानकेष्वालिखे
देकच्छन्दसि खण्डमेरुरमलः पुनागचन्द्रोदितः ॥११॥

एतस्य पोक्तक्रमेण प्रस्तारे कृते विवक्षितच्छन्दसः लगक्रियया सह ततः पूर्वस्थितसकल छन्दसां लगक्रियाः सर्वाः समायान्तीत्यर्थः ॥

*इनके नीचे प्रस्तार के तीन कोष्ठक भी है)*

दिगम्बर जैन साहित्य-भाण्डार में छन्दोग्रन्थ सम्बन्धी अमितसेन के छन्दःशास्त्र वृत्तवाद एवं छन्दःप्रकाश आशाधर के वृत्तप्रकाश चन्द्रकीर्ति के छन्दःकोष (प्राकृत) एवं पाम्मग के प्राकृतपिङ्गल सूत्र ये ही नाम मिलते हैं। परन्तु इन में अभीतक कोई ग्रन्थ मुद्रित नहीं हुआ है। अब रही प्रस्तुत पुस्तक 'रत्नमञ्जूषा' की बात। पं० नाथूराम जी प्रेमी के द्वारा संगृहीत दिगम्बर जैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ इस ग्रन्थतालिका में इसके कर्त्ता हेमचन्द्र कवि बतलाये गये हैं। परन्तु इस छन्दोग्रन्थ के अन्तिम भाग के अन्तिम श्लोकान्तर्गत 'पुनागचन्द्रोदित' इस वाक्य से तो ज्ञात होता है कि पुनागचन्द्र या नागचन्द्र ही इसके प्रणेता हैं। प्रेमी जी के कथनानुसार अगर इस 'रत्नमञ्जूषा' के रचयिता हेमचन्द्र कवि होते तो 'पुनागचन्द्रोदित' के स्थान पर बड़ी आसानी से 'श्रीहेमचन्द्रोदित' लिख देते। क्योंकि ऐसा करने से छन्दोभंग का उन्हें जरा भी भय नहीं रह जाता था। साधनाभाव से इस समय इसके कर्त्ता के बारे में कुछ भी प्रकाश नहीं डाला जा सका। यदि थोड़ी देर के लिये अर्थात् प्रेमी जी ने किस आधार पर इस का कर्त्ता हेमचन्द्र कवि लिखा है—यह बात जब तक स्पष्ट नहीं होती तब तक के लिये नागचन्द्र को ही इसका प्रणेता माना जाय तो महाकवि धनञ्जय-कृत विषापहार स्तोत्र के संस्कृत टीकाकार कवि नागचन्द्र* की ओर मेरी दृष्टि कुछ कुछ आकृष्ट हो जाती है। पर यह एक अनुमान

* देखें—'प्रशस्ति संग्रह' पृष्ठ ३०।

मात्र है। जब तक इस सम्बन्ध में कोई सबल प्रमाण नहीं मिलता है तबतक इसे कोई मानने को तैयार क्योंकर हो सकता है?

अब रहा इस छन्दोग्रन्थ का विषय। यह ग्रन्थ छोटे छोटे आठ अध्यायों में विभक्त है। इस प्रति की मैसूर राजकीय 'प्राच्यपुस्तकागार' में मैंने ही कन्नड लिपि से नागराक्षर में प्रतिलिपि कराई थी। इसके अष्टम अध्याय का कुछ अंश लुप्त सा ज्ञात होता है। इस लुप्तांश के बाद ही तीन पृष्ठों में मेरुसम्बन्धी प्रस्तार के पद्यबद्ध लक्षण सकोष्ठक दिये गये हैं। कवि ने इस ग्रन्थ में प्रायः प्रत्येक छन्द पर अच्छा प्रकाश डाला है। इसके छन्दो-लक्षण पिंगलसूत्र के समान सूत्रमय हैं जो नितांत स्वतन्त्र हैं। छन्दों के दिये गये दृष्टांतों में यत्र-तत्र जैनत्व की छाप सुस्पष्ट प्रतिभासित होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस के कर्त्ता काव्यशास्त्र के एक उद्भट मर्मज्ञ थे। इसकी अन्यान्य प्रतियाँ जहाँ तहाँ से अन्वेषण एवं मिलान कर इस रत्नभूत 'रत्नमंजूषा' के प्रकाशन से दिगंबर जैनसाहित्य के एक अङ्ग की पूर्त्ति हो जायगी। अन्यान्य पुस्तक-प्रकाशन-संस्थाओं और जैन परीक्षालयों को इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये। क्योंकि आजतक सभी जैन परीक्षालयों के पाठ्य ग्रन्थों में जैनेतर छन्दोग्रन्थ ही समाविष्ट होते आ रहे हैं।

---

## (२६) ग्रन्थ नं० २३७/ख

# सरस्वतीकल्प

कर्त्ता—मलयकीर्त्ति

विषय—मंत्रशास्त्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६।।। इञ्च  चौडाई ६ इञ्च  पत्रसंख्या ७

*प्रारम्भिक भाग—*

वारहअंगंगिज्जा दंसणतिलया चरित्तवत्थहरा।
चउदसपुव्वाहरणा ठावे दव्वाय सुददेवी॥
आचारशिरसं सूत्रकृतवक्त्रां (सरस्वतीं) सकण्ठिकाम्।
स्थानेन समयोद्भव (स्थानांगसमवायांगि तां) व्याख्याप्रज्ञप्तिदोर्लताम्॥

वाग्देवतां ज्ञातृकथोपासकाध्ययनस्तनीम् ।
अन्तकृद्दशसन्नाभिमनुत्तरदशांगताम् ॥
सुनितम्बां सुजघनां प्रश्नव्याकरणाश्रिताम् ।
विपाकसूत्रदृग्वादचरणां चरणाम्बराम् ॥
सम्यक्त्वतिलकां पूर्वचतुर्दशाभिभूषणाम् ।
तावत्प्रकीर्णकोद्दीर्णचारुपत्राङ्कुरश्रियम् ॥

× × ×

*मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ८ पंक्ति ७)—*

स्याद्वादकल्पतरुमूलविराजमाना स्तवयाम्बुजसरोवरराजहंसीम् ।
अङ्गप्रकीर्णकचतुर्दशपूर्वकायामाम्नायवाङ्मयवधूमहमाह्वयामि ॥

शारदाभिमुखीकरणम्—

अविरलशब्दमहौघा प्रक्षालितसकलभूतलकलङ्का ।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितम् ॥
ॐ ह्रीं श्रीं मन्त्ररूपे विबुधजननुते देवि देवेन्द्रवंद्ये
चञ्चच्चन्द्रावदाते क्षपितकलिमले हारनीहारगौरे ।
भीमे भीमाट्टहासे भवभयहरणे भैरवि भीरु धीरे
ह्रां ह्रीं ह्रूंकारनादे मम मनसि सदा शारदे तिष्ठ देवि ॥

× × × ×

*अंतिम भाग—*

परमहंसहिमाचलनिर्गता सकलपातकपंकविवर्जिता ।
अमितबोधपयःपरिपूरिता दिशतु मेऽभिमतानि सरस्वती ॥
परममुक्तिनिवाससमुज्ज्वलं कमलयाकृतवासमनुत्तमम् ।
वहति या वदनाम्बुरुहं सदा दिशतु मेऽभिमतानि सरस्वती ॥
सकलवाङ्मयमूर्त्तिधरा परा सकलसत्वहितैकपरायणा ।
नारदतुम्बुरुसेविता दिशतु मेऽभिमतानि सरस्वती ॥
मलयचन्दनचन्द्ररजःकणा प्रकरशुभ्रदुकूलपरावृता ।
विशदहंसकहारविभूषिता दिशतु मेऽभिमतानि सरस्वती ॥
मलयकीर्तिकृतामितिसंस्तुतिं (पठति यो) सततं मतिमानरः ।
विजयकीर्तिगुरुकृतमादरात् स मतिकल्पलताफलमश्नुते ॥

इस 'सरस्वतीकल्प' के अन्तिम पद्य से इसके रचयिता मलयकीर्त्ति ज्ञात होते हैं। साथ ही साथ इसी पद्य से यह भी विदित होता है कि यह मलयकीर्त्ति प्राय' विजयकीर्त्ति-गुरु के शिष्य हैं। पर "विजयकीर्त्तिगुरुकृतमादरात्" इस चतुर्थ चरण का सम्बन्ध किसके साथ है—यह अभी ठीक नहीं समझ पडता। बहुत कुछ संभव है कि इस श्लोक की प्रतिलिपि करने मे लेखक ने भूल की हो। इसलिये जबतक इसकी शुद्ध प्रति नहीं मिलती तबतक सन्देह-निवृत्ति होती नहीं दीख पडती।

अस्तु, 'एपिग्राफिका कर्नाटिका' जिल्द ८ के शिलालेख न० १०४ मे एक विजयकीर्त्ति-गुरु का उल्लेख मिलता है। मलयकीर्त्ति के द्वारा प्रतिपादित विजयकीर्त्तिगुरु यदि यही हो तो उक्त शिलालेख के ही आधार से इनका समय सन् १३५४ अर्थात् १४ वीं शताब्दी सिद्ध होता है।* अत इस सरस्वतीकल्प के रचयिता मलयकीर्त्ति का समय भी लगभग यही होना चाहिये। अस्तु, अर्हद्दास-रचित भी एक 'सरस्वतीकल्प' सुना जाता है। वह इससे भिन्न होना चाहिये। इस कृति के आदि और अन्त मे 'सरस्वतीकल्प' लिखा मिलता है। मन्त्रशास्त्र मे कल्प का लक्षण यों बतलाया है—जिन ग्रन्थों में मन्त्र-विधान, यन्त्र-विधान, मन्त्र-यन्त्रोद्धार, बलिदान, दीपदान, आह्वान, पूजन, विसर्जन और साधनादि बातों का वर्णन किया गया हो वे ग्रन्थ 'कल्प' कहलाते हैं।† प्रधानतया इस प्रस्तुत कृति को एक मन्त्र-स्तोत्र ही कहना चाहिये। फिर भी यन्त्रोद्धार, जाप्य एवं होममन्त्र आदि का इसमें उल्लेख पाया जाता है—इसी से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता ने कल्पनाम की सार्थकता समझी होगी। मन्त्रशास्त्र के जिज्ञासुओं के लिये इसके निम्नलिखित कतिपय श्लोक उपयोगी हैं —

"जाप्यकाले नम शब्द मन्त्रस्यान्ते नियोजयेत्।
तदन्ते होमकाले तु स्वाहा शब्द नियोजयेत्॥
सवृन्तक समादाय प्रसून ज्ञानमुद्रया।
मन्त्रमुच्चार्य सन्मन्त्री मुञ्चेदुच्छ्वासरेचनात्॥
महिपाक्षगुग्गुलेन प्रविनिर्मितचणकमात्रवटिकानां।
मधुरत्रययुक्तानां होमैर्वागीश्वरी वरदा॥
दिक्कालमुद्रासनपल्लवानां भेद परिज्ञाय जपेत् स मन्त्री।
न चान्यथा सिध्यति तस्य मन्त्र कुर्वन् सदा तिष्ठतु जाप्यहोमम्॥

* देखें— मद्रास व मैसूर प्रान्त के प्राचीन जैन स्मारक' पृष्ठ ३११

† मन्त्रशास्त्र के विषय में विशेष बात जानने के इच्छुक विद्वान् भास्कर भाग ४, किरण ३ में प्रकाशित 'जैनमन्त्र-शास्त्र' शीर्षक लेख देखें।

द्वादशसहस्रजाप्यैर्ना(?)ङ्गहोमेन सिद्धिमुपयाति ।
मन्त्रो गुरुप्रसादात् ख्यातस्त्रिभुवने सारः ॥
अकारोऽनन्तवीर्यात्मा रफो विश्वावलोकदृक् ।
हकारः परमो बाधो विदुः स्यादुत्तम सुखम् ॥
नादो विश्वात्मकः प्रोक्तो विन्दुः स्यादुत्तम पदम् ।
कलाद्यायूपनिःस्यन्दीत्याहुरर्थं जिनोत्तमाः ॥"

इसकी रचना साधारणतया अच्छी है।

---

(२७) ग्रन्थ नं० ४४१/ख

# वज्रपंजराधना-विधान

कर्त्ता— ×

---

विषय—आराधना

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६।।। इञ्च चौड़ाई ६ इञ्च पत्रसंख्या ६

---

प्रारम्भिक भाग —

चन्द्रपुरप्रभुविव म च मक च द्रकान्तसंकाशम् ।
चन्द्रप्रभजिनमंचे कुन्देन्दुस्फारकीर्तिकान्ताशान्तम् ॥
ॐ ह्रीं चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रागच्छ—
तीर्थोपनीतैर्घनसारशीतैः पातप्रपापैः घुसृणाद्युपेतैः ।
चन्द्रप्रभाभास्करदिव्यदेहं महामि चन्द्रप्रभतीर्थनाथम् ॥
ओं ह्रीं चन्द्रप्रभजिनदेवाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।
हुग्धसारैर्घनगन्धसारैः सिताभ्रभारैः सितधामगौरैः ।
चन्द्रप्रभाभास्करदिव्यदेहं महामि चन्द्रप्रभतीर्थनाथम् ॥ गन्धम्
शाद्यसतैरक्षतमौक्तलक्ष्मीकम्पाविदेपयलक्षकन्तैः ॥
चन्द्रप्रभाभास्करदिव्यदेहं महामि चन्द्रप्रभतीर्थनाथम् ॥ अक्षतान्

× × × ×

मध्य भाग (परपृष्ठ ३, पंक्ति ३)

इत्थं श्रीपद्मनन्दिप्रवचनवदि (?) भिर्यन्त्रपजप्रवृत्तौ
वृद्धार्याराधित यो विधिवदिह सदा पूजयन्त्यादरेण।
तैर्भव्यैर्धर्मनिष्ठैरमृतपदसुख प्राप्तुमिच्छद्भिरपात्
ध्यान निःश्रेयसाती त्रिभुवनमहिता प्राप्यते मोक्षलक्ष्मी ॥

× × × ×

अन्तिम भाग :—

यस्यार्थं क्रियते पूजा सुप्रीतो नित्यमस्तु ते।

ॐ ह्रीं र र र र ज्वालामालिनि ह्रां आं क्रों द्रीं ह्रीं क्लीं ब्लू द्रां द्रीं हलवर्यू ह्रां ह्रीं ह्रं ह्रौं ह्रः ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल धग धग धू धू धूम्रांधकारिणि शीघ्र यन्त्राधिपतये देवदत्तस्य सर्वग्रहोच्चाटन कुरु कुरु हू फट नम स्वाहा। मन्त्रपुष्पम्।

इस आराधना-विषयक २ टुकलेवर पुस्तिका मे सर्वप्रथम चन्द्रप्रभ प्रतिबिम्ब का अभिषेक, भूमिशुद्धि, पच-गुरुपूजा, चत्तारि अर्घ्य का विधान बतलाया गया है। इसके बाद चन्द्रप्रभ तीर्थङ्कर की पूजा उनकी स्तुति, श्याम यक्ष, ज्वालामालिनी यक्षी की पूजा एव पच-परमेष्ठी की पूजा दी गई है। आगे वज्रपजरयन्त्र का फल, यन्त्र या यन्त्र की अधिष्ठात्री देवी ज्वालामालिनी और अष्टमातृका की पूजा निर्दिष्ट है। फिर यन्त्रस्थ प्रत्येक पिण्डान्तर्गत बीजाक्षरोंका आह्वान, स्थापन एव अर्घ्यादि वर्णित है। अनन्तर ब्रह्म यक्ष, पद्मावती यक्षी की पूजा तथा अन्त मे मन्त्रपुष्प का मन्त्र दिया गया है। यन्त्रका फल ग्रह, रोग, महामारी, चौरादि की शान्ति बतलायी गयी है।

इस मे ग्रन्थकर्ता का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। किन्तु मध्य भाग-गत श्लोक से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता श्री पद्मनन्दी है। मगर पता नहीं कि यह पद्मनन्दी कौन हैं। क्योंकि इस नाम के अनेक ग्रन्थकार हुए है। 'दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ' नामक ग्रन्थ-तालिका मे एक पद्मनन्दी ( भट्टारक ) वि० स० १३६२ का उल्लेख मिलता है, साथ ही साथ उनकी कृतियों मे 'आराधनासग्रह' नामक एक आराधनाग्रन्थ का जिक्र भी उपलब्ध होता है। बहुत कुछ सभव है कि यही पद्मनन्दी भट्टारक इस 'वज्रपजराराधनविधान' के रचयिता हों। मल्लिषेण और इन्द्रनन्दि के नाम से भी 'वज्रपञ्जराराधना पूजा' प्राप्त होती है।

---

(२८) ग्रन्थ नं० २४२/ख

# मृत्युंजयाराधना-विधान

कर्ता— ×

विषय—आराधना

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इञ्च　चौड़ाई ६ इञ्च　पत्रसंख्या ७

प्रारम्भिक भाग—

चन्द्रनाथस्य गणधरमृत्युंजययन्त्रमित्येतेषामभिषेकं कृत्वा भूमिशुद्धिचतार्थ्यानन्तरं चन्द्रप्रभपूजा।

चन्द्रपुरस्युधिचन्द्र चन्द्रार्क चन्द्रकान्तसंकाशम्।
चन्द्रप्रभजिनमर्चे कु न्देदुस्फारकीर्तिकान्ताशान्तम्॥
नानामणिप्रचयभासुरकण्ठपीठभृंगारनालकलितामलदिव्यतोयैः।
संसारतापविनिवारणहेतुभूतं श्रीचन्द्रनाथपदपद्मयुगं यजेऽहम्॥ (जलं नि०)
नाकाङ्गनाकरसरोरुहमध्यवर्तिकपूरकुंकुमविमिश्रितदिव्यगन्धैः।
मुक्तोपमानवरगन्धरमासमेतं श्रीचन्द्रनाथपदपद्मयुगं यजेऽहम्॥ (गन्ध नि०)

× × ×

मध्य भाग (पत्रपृष्ठ ३ पंक्ति ७)—

यस्यार्थे क्रियते पूजा सुप्रीतो नित्यमस्तु ते
चन्द्रोज्ज्वलां चक्रशरासिपाशां वामत्रिशूलेषु झषासिहस्तां।
श्रीज्वालिनीं सार्धधनुश्शतोच्चजिनानतां कोणगतां यजामि॥

× × ×

अंतिम भाग—

अत्यन्तभक्त्यानतदेवचन्द्रसूर्याभिवन्द्याप्रजिनेन्द्रभक्ताः।
ब्रह्माणिकाद्या उररीकृतार्घ्याः सर्वापमृत्युं विनिवारयन्तु॥
ॐ ह्रीं क्रों अष्टमातृकाभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामि स्वाहा।
अणिमादिगुणैश्वर्यशालिन्येत्यष्टमातरः।
याजकानां सुशान्त्यर्थं सुप्रसन्ना भवन्तु ताः॥

इष्टप्रार्थनाय पुष्पांजलिः। ॐ नमो भगवते देवाधिदेवाय सर्वोपद्रवविनाशनाय सर्वापमृत्युंजयकारणाय सर्वमन्त्रसिद्धिकराय ह्रीं द्रीं क्रों अस्य देवत्तस्य सर्वापमृत्युं घातय घातय आयुष्यं वर्द्धय वर्द्धय म्त व ह्वः पः हः म्वीं क्ष्वीं ह सः असिआउसा अर्हन्नमः स्वाहा।१०८ मन्त्रपुष्पार्चनम्।

इस 'मृत्युजयाराधना' के प्रारभ में चन्द्रनाथ, श्रुत, गणधर एव मृत्युंजय यन्त्र का अभिषेकपूर्वक भूमिशुद्धि, चत्तारि अर्घ्य तथा चन्द्रप्रभ स्वामी की पूजा अङ्कित की गयी है। बाद श्यामयक्ष, ज्वालामालिनी यक्षी की पूजा दी गयी है। इसके पश्चात् मृत्युंजय यंत्र मे लिखे जानेवाले बीजाक्षरोके क्रमादि बतलाये गये हैं। साथ ही साथ इस यत्र की पूजा विधि भी निर्दिष्ट है। सर्वान्त मे अष्टमातृका की पूजा देकर यह कृति समाप्त की गयी है।

जैनसमाज में एक ऐसा भी पक्ष है जो आराधना ग्रन्थो को उपेक्षा-दृष्टि से देखता है। इसका कहना है कि ये जो आराधनायें हैं वे जैनियो के मौलिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं और कर्मसिद्धान्त के एकान्त अनुयायी जैनी इन आराधनाओ को मानने को तैयार नहीं हो सकते। साथ ही इसका यह भी कहना है कि ये आराधनायें जैनेतर आराधनाओं के अनुकरण हैं। किन्तु दूसरे पक्ष का यह कहना है कि एक गृहस्थ जैनी अपने परिवार मे आये हुए आगन्तुक उपद्रवों की शान्ति के लिये अगर इन आराधनाओ से लाभ उठाता है तो अनुचित नहीं है। अन्यथा कर्मसिद्धान्त के एकान्त अनुसरण का परिणाम यही होगा कि कच्चे दिलवाले जैनी अपने ऊपर आई हुई असाताजन्य दुर्घटनाओं को दूर करने के लिये आर्त्तावस्था में अन्यान्य तामसिक देव-देवियों की आराधना आरभ कर देंगे और यों करते-करते अन्तत विपथगामी होने का उन्हें अवसर मिल जायगा। आज भी ऐसे अनेकों दृष्टान्त हम लोगों की नजरो से गुजरते रहते हैं। बहुत कुछ सभव है कि तम प्रकृतिक देव-देवियों की ओर लोकिक सिद्धि के लिये दौड़ पडने और चंचलचित्त वाले जैनियों को स्वधर्म में स्थिर रखने की दूर दर्शिता से ही कुछ ग्रन्थकर्त्ताओं ने आराधनाओं की सृष्टि की होगी। जब वे अपने धर्म का सैद्धान्तिक मर्म समझने लगेंगे तब तो आप ही आप ये आराधनायें इनसे दूर भाग खड़ी होंगी। व्यवहारिक दृष्टि से यह नीति लचर नहीं कही जा सकती क्योंकि पीने मे सुविधाजनक होनेके लिये ही वैद्य कड़वी दवा मे शक्कर मिला देते हैं। अस्तु अभी इसके कर्त्ता का पता आदि नहीं लग सका।

---

(२६) ग्रन्थ नं० २४३/ख

# सहस्रनामाराधना

कर्त्ता— ×

विषय—आराधना

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इञ्च चौड़ाई ६ इञ्च पत्रसंख्या ६०

*प्रारम्भिक भाग*—

सुत्रामपूजितं पूज्यं शुद्धं सिद्धं निरंजनम्
अमहाहविनाशाय नौमि प्रारब्धसिद्धये ॥ १ ॥
तदक्त्रां नमस्कुर्वे शारदां विश्वसारदाम् ।
गौतमादिगुरून् सम्यक्दर्शनज्ञानमण्डितान् ॥ २ ॥
एतेषां सुप्रसादेन रचयामि प्रपूजनम् ।
सहस्रनामयुक्तस्य जिनेन्द्रस्य गुणाम्बुधे ॥ ३ ॥

× × ×

*मध्य भाग* (पूर्वपृष्ठ ३५, पंक्ति ७)

धृतकमलपरागै सज्जलैस्तीर्थजातै कनककलशशस्तै तापसन्तापनाशै ।
सुरनिकरसुमेरुस्नापितान्तै पयोधे सकलविमलबोधं श्रीजिनं पूजयामि ॥
ॐ ह्रीं जलं निर्वपामीतिस्वाहा ।
मलयगिरिसुजातै सद्द्रवै कुङ्कुमाद्यै रविकुलकलितोद्यद्गुञ्जितैरिन्दुयुक्तै ।
सहजसुरभिदेहं मुक्तिकान्ताकृताभं सकलविमलबोधं श्रीजिनं पूजयामि ॥ (गन्धम्)
धवलशदकपुञ्जैमञ्जुलै पुण्यपुञ्जैरिव कृतजनतोषैर्मुक्तमालिन्यदोषै ।
स्वपरहितपदेशं(?) दत्तभव्योपदेशं सकलविमलबोधं श्रीजिनं पूजयामि ॥(अक्षतान्)
कमलबकुलजातीकेतकीचम्पकाद्यै सुरभिगुणसुदेवानन्दकै सुप्रसूनै ।
दलितकुसुमबाणं सर्वविद्याप्रमाणं सकलविमलबोधं श्रीजिनं पूजयामि ॥ (पुष्पम्)
दधिकृतसहितान्नै शर्करापायसान्नै मधुपघटकषड्भ्यं व्यञ्जनै सन्निवेद्यै ।
सकलविमलबोधं श्रीजिनं पूजयामि ॥ (चरुम्)

तुहिनजगृहरत्नैः निर्जितामर्त्यरत्नैः सकलसदृशपीतैः वातघातैरधूतैः'
विदितसकललोक दिव्यमान विलोक सकलविमलबोध श्रीजिनं पूजयामि ॥ (दीपम्)
अगरुजवरधूपैर्धूपिताशामुखाभैः अमरनिकरनाथानिष्टधूमैर्मनोज्ञैः ।
वसुविधदुरिताधदाहकं दाहमुक्तं सकलविमलबोध श्रीजिनं पूजयामि ॥ (धूपम्)
वकुलजलबलीश (?) दाडिमस्वादुकाम्रक्रमुकसुफलपूराद्यैरनिन्द्यैः फलौघैः ।
शिवसुखफललब्धिं सर्वतत्त्वेद्धबुद्धिं सकलविमलबोध श्रीजिनं पूजयामि ॥ (फलम्)
अमलकमलगन्धाज्जुगातराडु(?)लपुष्पैश्चरुगृहमणिदीपैः धूपकृत्सत्फलार्घ्यैः ।
शतमखनुतभेदारूपरत्नत्रयाढ्यं सकलविमलबोधं श्रीजिन पूजयामि ॥ (अर्घ्यम्)

× × × ×

*अन्तिम भाग :—*

विशालकीर्तिर्वरपुण्यमूर्तिः शतेन्द्रसचर्चितपादपद्मः ।
श्रीमज्जिनेन्द्रः सुसहस्रनामा जिनेश्वरः पातु स भव्यलोकान् ॥
पद्मषष्ठिसूत्रोक्तपदप्रमाणा त्र्यष्टयाधिकं चात्र सहस्रयुक्तम् ।
मद्धे द्विरष्टौ (?) च पदानिलुप्ता (?) पद्म च कृत्वाष्टदलाष्टक वै ॥
इत्थ पुरोत्थ पुरुदेवयन्त्र सम्भाव्य मध्ये जिनमर्चयामि ।
सिद्धादिधर्मादिजिनालयान्त पत्रेषु नामाङ्कितत्पदेषु ॥

इस 'सहस्रनामाराधना' में जिनसेनकृत सहस्रनामान्तर्गत प्रत्येक नाम के लिये प्रत्येक अर्घ का विधान पद्यमय अङ्कित है। यह ग्रन्थ दश परिधियों (मण्डलों) मे विभक्त है। प्रत्येक परिधि के प्रारम्भ मे जिनेन्द्र का प्रत्येक अष्टक (पूजा) निर्दिष्ट है। साथ ही साथ प्रत्येक परिधि की समाप्ति मे जयमाला भी अन्तर्भुक्त की गयी है। अर्थात् प्रत्येक परिधि के प्रारम्भ मे जिनेन्द्र भगवान् की पूजा, (अष्टक) उस परिधि के अन्तर्गत नामों के लिये अर्घ्य एवं अन्त में पूर्णार्घ और जयमाला है। इस हिसाब से दस अष्टक साधिकसहस्र अर्घ्य और दस जयमालायें हैं। इस में ग्रन्थकर्त्ता के विषय में कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु १म और ९म को छोड कर प्रत्येक परिधि के अन्त मे कुछ हेर-फेर करके दिये गये निम्नाङ्कित पद्य अवश्य विचारणीय है :—

"मुनीन्द्रदेवेन्द्रसुकीर्त्तये तत् श्रीधर्मचन्द्रः कृतधर्मभूषः ।
सुरेन्द्रकीर्त्तिवरधर्ममूर्त्तिः वभुजिनेन्द्रा वरसवशान्त्यै ॥"

(द्वितीय परिधि का अन्तिम श्लोक)

"इत्थं स्तुतो जिनवरो जगतां विहर्ता भव्याब्धिषु नृणां पतवा (?) सुकर्ता।
सद्धर्मचन्द्र इह धर्मसुभूषणाढ्यो देवेन्द्रकीर्तितयशा द्युवतां सतां सः॥
(३य परिधि का अन्तिम श्लोक)

"इति वरस्तुतिपूर्यो देवदेवेन्द्रवृन्दैर्विगतसकललोको ज्ञानरूपो जिनेन्द्रः।
प्रथयतु शुभलक्ष्मीं धर्मचन्द्रो मुनीन्द्रस्तुतपदकमलोऽसौधर्मभूपस्तु नयाम्॥"
(४थ परिधि का अन्तिम श्लोक)

"श्रीधर्मचन्द्रः श्रुतसिन्धुचन्द्रो विमुक्तदोषावरधर्मभूपः।
मुनीन्द्रदेवेन्द्रयशःस्वरूपः स पातु शश्वज्जिनसौख्यरूपः।"
(५म परिधि का अन्तिम श्लोक)

"इतिस्तुतोऽभूत्त्रितयैकभूषणः सुधर्मचन्द्राश्रितधर्मभूषणः।
मुनीन्द्रदेवेन्द्रयशःस्वरूपः स पातु शश्वज्जिनसौख्यरूपः॥
(६ष्ठ परिधि का अन्तिम श्लोक)

'सुधर्मचन्द्रो जिनचन्द्रभूपो देवेन्द्रसत्कीर्तितपादपद्मः।
सुरेन्द्रनागेन्द्रनरेन्द्रपूज्यः पायात् स वः श्रीजिनपः पवित्रः।"
(७म परिधि का अन्तिम श्लोक)

"संसारमुक्तो जिनधर्मचन्द्रः सद्धर्मभूपो वरधर्ममूर्तिः।
देवेन्द्रकीर्तिः कृतदेवकीर्तिः पायाज्जिनो वो नरनाथपूज्यः॥"
(८म परिधि का अन्तिम श्लोक)

विशालकीर्तिर्वरपुण्यमूर्तिः शतेन्द्रसंचर्चितपादपद्मः।
श्रीमज्जिनेन्द्रः सुसहस्रनामा जिनेश्वरः पातु स भव्यलोकान्॥'
(१०म परिधि का अन्तिम श्लोक)

परिधियों के उल्लिखित इन अन्तिम श्लोकों की ओर ध्यान देने से यह पता लगता है कि इसके कर्ता देवेन्द्रकीर्ति हैं और इन्होंने जिनेन्द्र भगवान् के विशेषणरूप में अपना, अपने गुरु का एवं प्रगुरु का क्रमशः—धर्मचन्द्र धर्मभूषण देवेन्द्रकीर्त्ति इन नामों से उल्लेख किया है। देवेन्द्रकीर्ति के नामसे कई व्यक्ति हुए हैं इसलिये नहीं कहा जासकता कि अमुक देवेन्द्रकीर्त्ति ही इसके प्रणेता हैं।

---

(३०) ग्रन्थ नं० $\frac{२४४}{ख}$

# कलिकुण्डाराधनाविधान

कर्त्ता— ×

विषय—आराधना

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इञ्च चौड़ाई ६ इञ्च पत्रसंख्या १३

प्रारम्भिक भाग—

सत्पुष्पवाम्ना(?)प्रविराजितेन पुष्पेण पूर्णेन सुपल्लवेन।
सन्मङ्गलार्थं कलिकुण्डदेवमुपाग्रभूमौ समलङ्करोमि॥

(कलशस्थापनम्)

शुद्धेन शुद्धह्रदकूपवापीगङ्गातटाकादिसमावृतेन।
शीतेन तोयेन सुगन्धिनाहं भक्त्याभिषिञ्चे कलिकुण्डयन्त्रम्।

(तीर्थोदकाभिषेक)

नीरै सुगन्धै कलमाक्षतौघै पुष्पैर्हविभिर्वरधूपधूमैः।
भास्वत्फलार्घ्यैः कलिकुण्डयन्त्रं सपूजयाम्यष्टतया सुभक्त्या॥

× × × ×

मध्य भाग (पूर्वपृष्ठ ६, पंक्ति ७)—

प्रणम्य देवेन्द्रनुत जिनेन्द्र सर्वज्ञमक्षप्रतिबोधसंज्ञम्।
स्तोष्ये सदाहं कलिकुण्डयन्त्रं सार्वं च विघ्नौघविनाशदक्षम्॥
नित्यं स्मरन्तोऽपि हितो (?) पि भक्त्या सदास्तुवन्तोऽपि जपं सुमन्त्रम्।
पूजां प्रकुर्वन् हृदये ददाति सच्चेप्सितं यच्छतु यन्त्रराजम्॥
गृहांगणे कल्पतरुप्रसून चिन्तामणिश्चिन्तितदानदाने।
गावश्च तुल्याश्च हि कामधेनुर्यस्यास्ति भक्ति कलिकुण्डयन्त्रे॥
नमामि नित्यं कलिकुण्डयन्त्रम् सदा पवित्र कृतरत्नपात्र।
रत्नत्रयाराधनभावलभ्यम् सुरासुरैर्वन्दितमाद्य मोक्ष·········॥

सिंहेभसर्पाग्निजलाब्धिचौरैर्विपाद्यो ऽन्ये च समूहविघ्ना ।
व्याध्याद्यो राजकुलोद्भवं भय भज्यत्यवश्यं कलिकुण्डपूजया ॥

× × × ×

अंतिम भाग—

कलिलदहनदक्षं योगियोगोपलक्ष्यम्
प्रथितकुलककलिकुण्डो दण्डपार्श्वप्रचण्डम् ।
शिवसुखमभवन्ना दासवल्लीवसन्तम्
प्रतिदिनमहमोहे वर्धमानस्य सिद्ध्यै ॥

इस 'कलिकुण्डाराधना' के आदि में कलिकुण्डयन्त्र एवं श्रीपार्श्वनाथ की प्रतिमा का अभिषेक, भूमिशुद्धि, पञ्चगुरुपूजा और अक्षतादि अर्घ्य निर्दिष्ट हैं। बाद पार्श्वनाथ पूजा एवं इन्हीं की मन्त्रस्तुति धरणेन्द्र यक्ष और पद्मावती यक्षी की पूजा तथा इनके मन्त्र-स्तोत्र दिये गये हैं। इसके उपरांत मंत्र लिखने की विधि और फल इत्यादि का निर्देश करते हुए प्रस्तुत यन्त्र की पूजा बतलायी गयी है। अन्त में यन्त्रीय मंत्र की स्तुति, यंत्रस्थ पिण्डाक्षरों का अर्घ, अष्टमातृका की पूजा, मन्त्रपुष्प और जयमाला लिखी गयी है। इसके कर्ता भी अभी अज्ञात ही हैं।

---

(३१) ग्रन्थ नं० २४१/ख

# गणधरवलयकल्प

कर्ता— ×

---

विषय—मन्त्रशास्त्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इञ्च चौड़ाई ५ इञ्च पत्र संख्या ९

---

प्रारम्भिक भाग—

देवदत्तस्य नामाहङ्कारेण वेष्टयेत् ।

ततोऽन्नाहतेन तस्याधः कर्मसमार्थं अर्धमात्रस्थ पद्मासनम्। शांतिकपौष्टिकसाध्यस्वतार्थ श्रींकारासनम्। शत्रुविनाशार्थं कृत्याभिचरणार्थं च ह्रूंकारासनम्। ततः ओं ह्रीं अर्ह यत्रो

अरहन्ताण, ओं ह्रीं अर्हं णमो सिद्धाण, ओं ह्रीं अर्हं णमो आइरियाण, ओं ह्रीं अर्हं णमो उवज्झायाणं ओं ह्रीं अर्हं णमो साहूण इति पञ्चपदैर्वेष्टयेत्। ततः षट्कोणयन्त्रं लिखेत्। अग्रे स्वस्तिक लाञ्छित ततः षट्कोणेषु सव्यक्रमेण अप्रतिचक्रे फट् इति मन्त्रावयवस्यैक-कोणेऽप्येकैकाक्षर दद्यात्।

× × × ×

*मध्यभाग (परपृष्ठ ५, पंक्ति ४)—*

मध्ये षट्कोणचक्रं लिखितजिनपतेः (?) क्ष्माधर पीडवंधम्
वामे ह्रीं दक्षिणे भ्वीं श्रियमधरतले तेषु सव्यापसव्यम्।
कोष्ठेष्वप्रतिचक्रे फडिति सविचक्राय होमान्तमन्त्रम्
देवीनां चैव पराणां बहिरपि विलिखेन्मन्त्रमग्रे च कोणे॥

× × ×

*अन्तिम भाग—*

अन्तश्चन्द्रावृत हस इति युतमतो दिक्षु प व विदिक्षु
नालाग्रे भ्र्वीं तदादावमृतमतिसित ससपत्र क्षिपद्मम्।
ल पीताम्भोजपत्रे मुखकमलदले व षटीरूपयन्त्रम्
म्ह क्ष्म ह्व ठः पोहोग्रे गतमुदवपु सक्षमेतत्प्रशस्तम्॥

यन्त्रमध्ये ल वं म्हं व क्ष्म ह्व ठः प ह म्र्वीं क्ष्वीं ह सः देवदत्तस्य शीतोष्णज्वरहरं कुरु कुरु स्वाहा। इति संलिख्य ततो म्र्वीं क्ष्वीं हसः इत्येतैर्बहिरावेष्ट्य बाह्ये कलशाकार संवेष्ट्य तस्य नालाग्रे म्र्वीं नालादौ क्ष्वीं पीठगतसप्तपत्रेषु प्रतिपत्र ल। मुखगतसप्तदलानां मध्ये व तदग्रेषु म्ह व क्ष्म ह ठ प ह इत्येकैकमक्षरमग्र प्रति संलिखेत्॥

इस 'कल्प' में सर्वप्रथम यन्त्र लिखने का क्रम, मूलमन्त्र, इन मूलमन्त्रों के वश्यादि प्रत्येक कार्य मे जपने की विधि एव आगे गणधरयन्त्र का उल्लेख किया गया है। इसी यन्त्र-प्रकरण में अक्षि, कुक्षि, कर्ण एव शिरोरोग आदि के लिये प्रत्येक मन्त्र का जप निर्दिष्ट है। इसके अतिरिक्त ज्ञानवृद्धि, आयुःपरिज्ञानादि के लिये भी जाप्य मन्त्र दिये गये हैं। बाद गणधरवलययन्त्र की पूजा, नवग्रह पूजा के साथ विस्तार से बतलायी गयी है। इसमें किस किस ग्रह के लिये किस किस वृक्ष की लकडी एव कुण्ड की किस दिशा में किन किन की स्थापना वैध है इत्यादि का भी दिग्दर्शन कराया गया है। आगे "जघया मध्यभागे तु सश्लेषो यत्र जघया। पद्मासनमिति प्रोक्त तदासनविचक्षणैः॥ तत्र पद्मासन पादौ जघाभ्यां श्रयतो यतः। ततोरूपर्यधोभागे पर्यङ्कासनमिष्यते॥" इत्यादि रूप से आसनों का लक्षण कहा गया है। पश्चात् प्रतिष्ठा, शान्ति आदि होम मे "सर्वधान्यकृतैर्लाजैस्तद्रजोभिर्गुडान्वितैः।

सिंहेभसर्पाग्निजलाब्धिचौरैर्विपादयोऽन्ये च समूहविघ्ना ।
व्याध्यादयो राजकुलोद्भव भय नश्यत्यवश्य कलिकुण्डपूजया ॥

× × × ×

अंतिम भाग—

कलिलवृहनवृत्तं योगियोगोपलक्ष्यम्
धायिकुल्यकलिकुण्डो दण्डपार्श्वप्रचण्डम् ।
शिवसुखमभवद्वा वासवल्लीवसन्तम्
प्रतिदिनमहमीडे वर्धमानस्य सिद्धयै ॥

इस 'कलिकुण्डाराधना' के आदि में कलिकुण्डयन्त्र एव श्रीपार्श्वनाथ की प्रतिमा का अभिषेक, भूमिशुद्धि पञ्चगुरुपूजा और चत्तारि अर्घ्य निर्दिष्ट हैं। बाद पार्श्वनाथ पूजा एवं इन्हीं की मन्त्रस्तुति धरणेन्द्र यक्ष और पद्मावती यक्षी की पूजा तथा इनके मन्त्र-स्तोत्र दिये गये हैं। इसके उपरांत मंत्र लिखने की विधि और फल इत्यादि का निर्देश करते हुए प्रस्तुत यंत्र की पूजा बतलायी गयी है। अन्त में यन्त्रीय मंत्र की स्तुति, यन्त्रस्थ पिण्डाक्षरों का अर्घ्य, अष्टमातृका की पूजा, मन्त्रपुष्प और जयमाला लिखी गयी है। इसके कर्त्ता भी अभी अज्ञात ही हैं।

---

(३१) ग्रन्थ नं० २४९/ख

## गणधरवलयकल्प

कर्त्ता— ×

---

विषय—मन्त्रशास्त्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इञ्च चौड़ाई ६ इञ्च पत्र संख्या १०

---

प्रारम्भिक भाग—

देवदत्तस्य नामाहंकारेण वेष्टयेत् ।

ततोऽर्हतेन तस्याधः कर्मसर्वार्थं अर्थंशास्त्रस्य पद्मासनम् । शांतिकपौष्टिकसारस्वताय श्रीकारासनम् । शत्रुविनाशार्थं कूष्माण्डिवश्यार्थं च हूंकारासनम् । तत ओं ह्रीं अर्ह णमो

अरहन्ताण, ओं ह्रीं अर्हं णमो सिद्धाण, ओं ह्रीं अर्हं णमो आइरियाण, ओं ह्रीं अर्हं णमो उवज्झायाणं ओं ह्रीं अर्हं णमो साहूण इति पञ्चपदैर्वेष्टयेत्। तत षट्कोणयन्त्रं लिखेत्। अग्रे स्वस्तिक लाञ्छित तत षट्कोणेषु सव्यक्रमेण अप्रतिचक्रे फट् इति मन्त्रावयवस्यैक-कोणेऽप्येकैकाक्षर दद्यात्।

× × × ×

*मध्यभाग (परपृष्ठ ५, पंक्ति ४)—*

मध्ये षट्कोणचक्रं लिखितजिनपतेः (?) क्ष्माधर पीडवंधम्<br>
वामे ह्रीं दक्षिणे भ्वीं श्रियमधरतले तेषु सव्यापसव्यम्।<br>
कोष्ठेष्वप्रतिचक्रे फडिति सविचकाय होमान्तमन्त्रम्<br>
देवीनां चैव पणां बहिरपि विलिखेन्मन्त्रमग्रे च कोणे॥

× × ×

*अन्तिम भाग—*

अन्तश्चन्द्रावृत हस इति युतमतो दिक्षु प व विदिक्षु<br>
नालाग्रे भ्वीं तदादावमृतमतिसित सप्तपत्र द्विपद्मम्।<br>
ल पीताम्भोजपत्रे मुखकमलदले व घटीरूपयन्त्रम्<br>
भ क्ष्म ह ठः पोहोग्रे गतमुदवपु संज्ञमेतत्प्रशस्तम्॥

यन्त्रमध्ये ल वं भं व क्ष्म ह ठः प ह भ्वीं क्ष्वीं ह स देवदत्तस्य शीतोष्णज्वरहरं कुरु कुरु स्वाहा। इति सलिख्य ततो भ्वीं क्ष्वीं हसः इत्येतैर्बहिरावेष्ट्य बाह्ये कलशाकार सवेष्ट्य तस्य नालाग्रे भ्वीं नालादौ क्ष्वीं पीठगतसप्तपत्रेषु प्रतिपत्र ल। मुखगतसप्तदलानां मध्ये व तदग्रेषु भ व क्ष्म ह ठ प ह इत्येकैकमक्षरमग्र प्रति सलिखेत्॥

इस 'कल्प' में सर्वप्रथम यन्त्र लिखने का क्रम, मूलमन्त्र, इन मूलमन्त्रों के वश्यादि प्रत्येक कार्य में जपने की विधि एव आगे गणधरयन्त्र का उल्लेख किया गया है। इसी यन्त्र-प्रकरण में अक्षि, कुक्षि, कर्ण एवं शिरोरोग आदि के लिये प्रत्येक मन्त्र का जप निर्दिष्ट है। इसके अतिरिक्त ज्ञानवृद्धि, आयुपरिज्ञानादि के लिये भी जाप्य मन्त्र दिये गये हैं। बाद गणधरवलययन्त्र की पूजा, नवग्रह पूजा के साथ विस्तार से बतलायी गयी है। इसमें किस किस ग्रह के लिये किस किस वृक्ष की लकडी एव कुण्ड की किस दिशा में किन किन की स्थापना वैध है इत्यादि का भी दिग्दर्शन कराया गया है। आगे "जघया मध्यभागे तु सश्लेषो यत्र जघया। पद्मासनमिति प्रोक्त तदासनविचक्षणै॥ तत्र पद्मासन पादौ जघाभ्यां श्रयतो यत.। ततोरुपर्यधोभागे पर्यङ्कासनमिष्यते॥" इत्यादि रूप से आसनों का लक्षण कहा गया है। पश्चात् प्रतिष्ठा, शान्ति आदि होम में "सर्वधान्यकृतैर्लाजैस्तद्रजोभिर्गुडान्वितैः।

चन्दनागरुकपूरगुग्गुलान्नघृतादिभिः ॥ पायसान्नादतैर्मिश्रै प्र हव्यैस्तोत्थवादिभि । सांम धाभिश्चरेद्धोमं प्रतिष्ठाशांतिपौष्टिके ॥ इस विधि से हवनद्रव्य का उल्लेख कर पौष्टिकादि कार्य के लिये "वश्याकृष्टिस्तम्भननिषेधद्वेषचलनशान्तिकपुष्टी । कुर्यात् सोमयमामरहरामिमरुद्धिपनिम्नु तदिग्वदन ॥" इस प्रकार अलग अलग दिशायें बतलायी गयी हैं। बाद में प्रत्येक कार्य के लिये समय आसन मुद्रा पीनादर आदि का विशद विवेचन किया गया है। वश्याकर्षण कार्य में त्रिकोण, चतुष्कोण आदि भिन्न भिन्न कुण्ड तथा भिन्न भिन्न वर्ण वाले पुष्पों की उपयोगिता लिखी गयी गयी है। किस किस कर्म के लिये किस किस अङ्गुली से जप करना विधेय है इस बात को मोक्षशान्त्योवशाकर्षेस्तम्भद्वेषायसारके। अङ्गुष्ठमध्यमानामितजनीभिर्मणिं चरेत् । यों अङ्कित किया है। अन्त में षोडशोपचार के द्रव्यों को गिना कर अग्निमण्डलों का लक्षण दिया गया है। अस्तु इसके कर्त्ता अज्ञात हैं पर निम्न लिखित तीन विद्वान गणधरवलय पूजा के कर्त्ता अब तक प्रसिद्ध हैं —(१) भट्टारक धर्मकीर्ति (२) शुभचन्द्र (३) हस्तिमल्ल।

---

(३४) ग्रन्थ नं० २४६/ख

# प्रवचनपरीक्षा

कर्ता—नेमिचन्द्र

---

विषय—खण्डनमण्डन

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ९। इञ्च चौड़ाई ६ इञ्च पत्रसंख्या ५८

---

*प्रारम्भिक भाग—*

त्रिलोकीतिलकायार्हत्पुङ्गवाय नमो नमः ।
वाचामगोचराचिन्त्यबहिरभ्यन्तरश्रिये ॥

अथ निखिलजनचेतश्चमत्कारिजनिजानुभावपराक्रमानुरूपोपनतसकलभोगसाधनसंसिद्ध समिद्धाभिमानोकसुसद्धर्माम्भोनिधिनिमग्नराजाधिराजमहाराजाधमण्डलीकमहामण्डलीकाधचक्रवर्तिसकलचक्रवर्तीन्द्रादिपदलक्षणाभ्युदयलक्ष्मीलाभाय पुरुषार्थपराकाष्ठागतनित्यनिरुपमनिर्बाधपरमानन्दमन्दिरनिःश्रेयससमधिगमाय चतुर्विधदुरन्तदुःखैकनिबन्धनाहंसहाराय इहो

देहिनः सुखासुखावाप्तिपरिहाररूपपुरुषार्थद्वयाविगानकारणं सद्धर्मं शर्मकामाः समाराधयन्तु भवन्तः। तथाथ पुरातनैर्निरूपितम्—

पापाद्दुःखं धर्मात्सुखमिति सर्वजनसुप्रसिद्धमिदम्।
तस्माद्विहाय पापं भवतु सुकीर्त्तिः सदा धर्मं॥

× × ×

*मध्य भाग (परपृष्ठ २६, पंक्ति ७)*

अस्ति सर्वज्ञः सुनिश्चितासंभवद्बाधकप्रमाणत्वात् सुखादिवदिति।

न चेद् साधनमसिद्धं प्रत्यक्षादिनामन्यतमस्यापि प्रमाणस्य सर्वज्ञबाधकस्यासंभवात्तदुक्तम्।

सर्वज्ञत्वं न चासिद्धं कस्यचिद्बाधकात्ययात्।
सर्वत्र बाधकाभावादेव वस्तुव्यवस्थितिः॥
न तस्य बाधकं तावत्प्रत्यक्षमुपपद्यते।
तस्यात्तजत्वादत्यक्षे न विधिर्न निषेधनम्॥
न चानुमानोपमानं च युक्तमिष्टविघाततः।
तथा हि खचरादीनां न स्यात् खगमनादिकम्॥
तस्मान्नरविशेषेऽसौ यस्य सा सकलज्ञता।
तथा खरविशेषश्चेदिष्टा तस्यापि शृंगिता॥
न चार्थापत्तिरप्यस्ति सर्वज्ञाभावसाधनी।
कोह्यर्थो संभवी तेन विना यस्तं प्रकल्पयेत्॥
नाप्यागमेन सर्वज्ञः कृतकेनेतरेण वा।
बाध्यते कर्तृहीनस्य तस्यात्यन्तमसम्भवात्॥
कर्तुरस्मरणादिभ्यः कर्त्रभावो न सिध्यति।
अज्ञातकर्तृकैर्वाक्यैर्व्यभिचारस्य संभवात्॥
न च कश्चिद्विशेषोऽस्ति पौरुषेयत्वसंभवी।
अतीन्द्रियार्थसंवादः सर्वज्ञोक्तेऽपि संभवेत्॥
विवादविषयापन्नं ततः शास्त्रं सकर्तृकम्।
दृष्टकर्तृकतुल्यत्वादकलङ्कादिशास्त्रवत्॥
तस्मादकर्तृकं शास्त्रं नास्तिसर्वज्ञबाधकम्।
कृतकञ्च द्विधा भिन्नं सर्वज्ञेतरहेतुकम्॥
असर्वज्ञत्वतः तावन्नप्रमाणमतीन्द्रिये।
सकलज्ञप्रणीतं तु तस्य प्रत्युत साधनम्॥

प्रस्तुतस्यानुमानस्य साधकत्वेन संभवात्।
प्रमाणपञ्चकाभावोऽप्यखिलज्ञे न बाध्यते॥
तस्मादशेषवित्कश्चिदस्तीत्यागमसंभवा।
प्रमाणे बाधकाभावाद्बुद्धिरस्त्वाविरुद्धियत्॥

तदेव प्रमाणबलादज्ञानादिदोषरहितः सामान्यतो यः सिद्धः स चार्हन्नेव सर्वज्ञ युक्ति शास्त्राविरुद्धवाक्यात्।

× × × ×

*अंतिम भाग*:—

इदममलमनल्पस्यात्तमीमांसितादेः प्रवचननिकरस्याद्राय बोधाय सारम्।
रचितमुचितावाग्भिर्वैदिकार्थैर्दिकानां प्रकम्पयितुमशक्यं भेदमस्माद्बुधानाम्॥
इति प्रवचनस्येह परीक्षा विहिता मया। अन्ययोगव्यवच्छेदादुभेदानां प्रतिपत्तये॥
स्खलितमिदं विहाया यत्पदं किञ्चिदाय प्रभवति बहु मन्तु बालकस्यादरान्मे।

× × ×

एतदद्यतननिर्मितं यत्र स्यात्प्रमाणमिति मास्म मन्यथाः।
अथतस्त्विदं नृपेन्द्रभाषितं नापरं किमपि कल्पितं मया॥
परमामृतदानेन प्रीणयद्विबुधान् परं।
भारत्या भविनन्नेमिचन्द्रस्य जिनशासनम्॥

इस 'प्रवचनपरीक्षा' के कर्त्ता कवि नेमिचन्द्र हैं। 'दिगम्बर जैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' इस तालिका में निम्नलिखित ग्रन्थ भी इन्हीं नेमिचन्द्र के द्वारा प्रणीत कहे गये हैं —

(१) द्विसन्धानकाव्य की टीका (२) द्विसन्धान काव्य द्वितीय (श्लोक सं० ३०००) (३) उत्सवपद्धति (४) प्रतिष्ठातिलक (श्लोक सं० ६०००) (५) त्रैवर्णिकाचार (श्लोक सं० ३०००)। इनमें द्विसन्धान काव्य (द्वितीय) एवं उत्सवपद्धति ये दो ग्रन्थ मेरे देखने में नहीं आये हैं। हां शेष ग्रन्थों को मैंने देखा है। त्रैवर्णिकाचार और प्रस्तुत प्रवचनपरीक्षा इनमें नाम निर्देश के सिवा भवन की प्रतियों में कवि नेमिचन्द्र का कुछ भी परिचय नहीं मिलता है। द्विसन्धान काव्य की टीका में निम्नलिखित दो श्लोक मिलते हैं अवश्य —

"जीयान्मृगेन्द्रो विनयेन्दुनामा सवित्सवाराजितकण्ठपीठः।
प्रतीववादीभकपोलभित्तिं प्रमाणदंष्ट्रैः स्वैर्नखरैर्विदार्य॥
तस्याय शिष्योऽजनि देवनन्दी सद्ब्रह्मचर्यव्रतदेवनन्दी।
पदाम्बुजद्वन्द्वमनिन्द्यमच्य तस्योत्तमाङ्गेन नमस्करोमि॥

इन श्लोकों से सिद्ध होता है कि कवि नेमिचन्द्र के प्रगुरु विनयचन्द्र एव गुरु देवनन्दी थे। बल्कि निर्णयसागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित इसी द्विसन्धान काव्य के नवीन टीकाकार प० बदरीनाथ जी ने इस नेमिचन्द्र को विनयचन्द्र का शिष्य लिखा है, यह इस नवीन टीकाकार की भूल है। क्योंकि विनयचन्द्र नेमिचन्द्र के गुरु नहीं थे किन्तु प्रगुरु। अब लीजिये 'प्रतिष्ठातिलक' को। 'सखाराम नेमिचद जैन ग्रन्थमाला' सोलापुर से मुद्रित इस ग्रन्थ के इस सस्करण मे कोई प्रशस्ति नहीं दी गई है। पर 'जैनहितैषी' भाग १२, पृष्ठ १६४ मे श्रवणवेलोल-निवासी स्वर्गीय प० दोर्वली शास्त्री के गृहग्रन्थालयस्थ इस प्रतिष्ठा-तिलक ग्रन्थ की एक ताडपत्राङ्कित प्रति पर से ली गई 'शास्त्रावतार' नामक ४५ पद्यों की एक लम्बी चौडी प्रशस्ति प्रकाशित हुई है। इस प्रशस्ति मे इस कवि का पूर्ण परिचय मिल जाता है। इसमे ग्रन्थकर्ता नेमिचन्द्र ने अपने वश आदि का स्पष्ट परिचय दिया है। प्रशस्ति मे ब्राह्मणकुल की प्राचीनता को दिखलाते हुए उन्हीं ब्राह्मणो की सन्तान में अकलङ्क, इन्द्रनन्दी, अनन्तवीर्य, वीरसेन, जिनसेन, वादीभसेन, वादिराज और हस्तिमल्ल आदि अनेक विद्वानो का जन्म (?) लेने का कथन इन्होने किया है और इन विद्वानो की वशपरम्परा में अपने कुटुम्ब का क्रम विस्तार से बतलाया है। विस्तारभय से इस परम्परा को मै उद्धृत नहीं कर सका। कवि नेमिचन्द्र ने अपने वश को चोल राजवंश के द्वारा सम्मानित एव अन्यान्य शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वानों से अलकृत लिखा है। जैसे—समन्तनाथ को तार्किक, राजमल्ल को कवि, चिन्तामणि को वादी और वाग्मी, अनन्तवीर्य को षट्वाद-विशारद, पार्श्वनाथ को गीत और आगमशास्त्र का ज्ञाता (बहुत कुछ सभव है कि यही सगीत-समयसार के कर्ता हो), आदिनाथ को आयुर्वेद मे निपुण, कोदण्डराम को धनुर्वेद का वेत्ता, ब्रह्मदेव को बडा बुद्धिमान् तथा षट्कर्मकण्ठ और देवेन्द्र को सहिताशास्त्र में निष्णात एवं राजमान्यतादि गुणो से सम्पन्न लिखा है। चन्द्रपार्य, ब्रह्मसूरि और पार्श्वनाथ इन तीन को कवि ने अपना मातुल बतलाया है। यह ब्रह्मसूरि वही हैं जिन्होने प्रतिष्ठापाठ, त्रैवर्णिकाचारादि ग्रन्थो की रचना की है। नेमिचद्र के पिता देवेन्द्र और माता आर्यदेवी थीं। इन्हें आदिनाथ, नेमिचन्द्र और विजयप्प नाम के तीन पुत्र हुए। नेमिचन्द्र नाम का पुत्र ही प्रस्तुत कवि नेमिचन्द्र है। आपने अपने तीन भाइयो के सुपुत्रो का नाम-निर्देश करते हुए इन्हें भी विद्वान् लिखा है। नेमिचन्द्र जी ने इस ग्रन्थ मे अपने को अभयचन्द्र का शिष्य स्पष्ट बतलाया है। इससे मालूम होता है कि द्विसन्धान काव्य के टीकाकार देवनन्दी का शिष्य नेमिचन्द्र इनसे भिन्न है।

इस प्रशस्ति में इन्होने अपने को 'सत्यशासन-परीक्षा' आदि ग्रन्थों का प्रणेता बतलाया है। वह सत्यशासनपरीक्षा प्रस्तुत प्रवचनपरीक्षा ही मालूम होती है। राजसम्मानित

यह कवि नेमिचन्द्र स्थिरकदम्ब नामक नगर में रहते थे। पता नहीं है कि यह स्थिरकदम्ब किस स्थान का प्राचीन नाम है। कर्णाटक प्रांत में ही कहीं इसे होना चाहिये। साथ ही साथ इनके सम्बन्ध में यह कह देना भी आवश्यक है कि यह कवि नेमिचन्द्र जो गृहस्थ थे और लगभग १६वीं शताब्दी में मौजूद थे। इसमें कोई शक नहीं है कि यह एक प्रौढ कवि थे। इस प्रवचनपरीक्षा की श्लोक संख्या १००० मानी गयी है। इसकी भाषा विशुद्ध एवं प्रसादादिगुणों से सम्पन्न है। किन्तु भवन की यह प्रति यत्र-तत्र अशुद्ध है।

इस प्रवचनपरीक्षा में ग्रन्थकर्त्ता ने निम्नलिखित विषयों पर प्रकाश डाला है —

(१) अहिंसाधर्म की प्रधानता एवं जैनधर्म में ही इसकी परिपूर्णता (२) वेद की समालोचना एवं मीमांसक, सांख्य आदि दर्शनों की वेद बाह्यता तथा इनमें भी अहिंसा की मान्यता (३) अहन्‌विमर्श आदि वाक्यों में अर्हन्त का और "न हिंस्यात् सर्वभूतानि" आदि वाक्यों में अहिंसा का वेद में उल्लेख (४) वेद-प्रतिपादित कई बातें अधार्मिक हैं यदि ये धर्मबाह्य नहीं है तो मीमांसक आदि ने ईश्वर के अस्तित्व का जो खण्डन किया है, वह भी धर्मबाह्य नहीं होना चाहिये आदि (५) वेद-प्रतिपादित अर्हन् आदि शब्दों का अर्थ अर्हन्त न करके इन्द्रादिक करना युक्तियुक्त नहीं है (६) वेद-प्रतिपादित अहिंसादि धर्मों को माननेवाले जैनी वेदबाह्य नहीं कहला सकते हैं (७) वेद का समीचीन बोध नहीं होने से यदि जैनी वेदबाह्य हैं तब बहुसंख्यक वैदिक मतावलम्बी भी वेदबाह्य ठहरेंगे अन्यथा आपस में वेदोक्त बातों पर इतना मतभेद क्यों उठ खड़ा हुआ? (८) जैनियों के वेद उनके प्रतिपादक, उनमें वेदनाम एवं संख्या की सार्थकता (९) अर्हन् की सर्वज्ञता तथा उनकी वेदप्रतिपादकता (१०) धर्म का भेद एवं गृहस्थ धर्म का वर्णन (११) एकेन्द्रिय जीवों के हिंसक गृहस्थ पञ्चेन्द्रिय जीवों के हिंसक नहीं कहला सकते ( पञ्चाक्षरीफलं यद्वद्धि पञ्चनकारतः। तद्वत्पञ्चाक्षघाताच न पञ्चैकाक्षघाततः ) (१२) मांस जीव का शरीर है अवश्य पर जीव शरीर मांस हो भी सकता है और नहीं भी (मांसं जीवशरीरं जीवशरीरं भवेन्न वा मांसम्। यद्वा निम्बो वृक्षो वृक्षस्तु भवेन्न वा निम्बः ॥) (१३) जैनियों के बारह अङ्ग पूर्वापर अविरुद्ध हैं और वे कथंचित् पौरुषेय-रूप हैं (१४) अपौरुषेयता ही प्रमाण की मूलभित्ति नहीं है एवं वचन में प्रमाणता गुणविशिष्ट वक्ता के ऊपर निर्भर है। (१५) प्रणव (ॐ) एवं यज्ञादिकर्म भी जैनवेदों में निर्दिष्ट है (१६) आप्त का यथार्थ स्वरूप (१७) बारह अङ्गों का विस्तृत वर्णन (१८) जैनियों में सन्ध्यावन्दन सकलीकरण गायत्री (अपराजितमन्त्र) तर्पण, श्राद्ध भी कथञ्चित् उपादेय है (१९) तिरेपन क्रियाओं का वर्णन (२०) द्विज का लक्षण एवं कर्त्तव्य।

इस ग्रन्थ को आमूलाग्र देखने से पता लगता है कि वेद तर्पण श्राद्ध, सन्ध्या एवं

गायत्री आदि को कथञ्चित् जैनागमानुकूल सिद्ध करना ही ग्रन्थकर्त्ता का लक्ष्य रहा है। हाँ, इसमें यह विशेषता है कि इन शब्दों का अर्थ और प्रतिपादित विषय जैन आगम के अविरुद्ध ही बतलाया गया है। मालूम होता है कि एक जमाने में इन चीजों का बड़ा बोलबाला था। इसी से जैनधर्म मे भी यह सब कुछ है इस बात का परिदर्शन कराते हुए धर्म की रक्षा एवं सर्वमान्यता सिद्ध करने के लिये जैनग्रन्थकर्त्ताओं को भी इन चीजों की शरण लेनी पड़ी थी। धर्म पर कालदेशादि का प्रभाव पड़ना सर्वथा स्वाभाविक है। इस प्रवाह को कोई रोक नहीं सकता। धर्म की रक्षा ही इन ग्रन्थकर्त्ताओं का मूल लक्ष्य रहा होगा इसलिये इनका यह कार्य सामयिक एवं उपादेय कहा जा सकता है। इसके लिये एक वर्तमान दृष्टान्त को ही लीजिये—मेरे जानते राष्ट्रीय ध्वजाभिवन्दन एक कट्टर जैनी के लिये धर्मसंगत नहीं हो सकता, फिर भी आजकल प्रायः प्रत्येक कार्य में इसे अपनाया जाता है। अगर इस समय इसका कोई विरोध करेगा तो वह अलौकिक ही नहीं प्रत्युत देशद्रोही करार दिया जायगा। इसी दृष्टान्त को विचारशील एक कट्टर जैनी को अपने सामने रख कर उल्लिखित ग्रन्थवर्णित बातों पर विचार करना चाहिये। अस्तु, इसमें अपनी बातों को पुष्ट करने के लिये ग्रन्थकर्ता ने आप्तपरीक्षा, गोम्मटसार, आदिपुराण, सागारधर्मामृत आदि ग्रन्थों के हवाले दिये हैं।

---

(३५) ग्रन्थ नं० २४७/ख

# प्रतिष्ठाविधान

कर्त्ता—हस्तिमल्ल

---

विषय—प्रतिष्ठा

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इञ्च    चौड़ाई ६ इञ्च    पत्रसंख्या १६

---

प्रारम्भिक भाग—

नमोऽर्हते सदा भूयादरिघातार्घजोऽर्हते।
रहस्यभावतो लोकत्रयपूजार्हभावतः॥

नत्वेन्द्रनन्दिमुकुन्दीश्वरप्रतिष्ठाग्रन्थाविष्कृत्यमजितं जिनबिम्बमूर्तं ।
तोयैर्भुव शुभतमैरभितो विशोध्य पात्राणि तत्र सलिलाद्यपि शोधयित्वा ॥

× × × ×

मध्य भाग (पूर्वपृष्ठ १०, पंक्ति ६)—

इन्द्रं वज्रधरं शुचि शिखिकरं वैवस्वतं दण्डिनम्
रक्षोमुद्गरभृत्सुपाशमुशलिं धृत्वायुधं मारुतम् ।
यत्र शक्तिभृतं त्रिशूलकुशलं रुद्राधृतं स्वस्तिकम्
शेषं सधृतकुम्भमिन्दुमपि तान्यस्यापि दिक्पालकान् ॥

× × × ×

अन्तिम भाग—

स्वस्तिश्रीसुखसिद्धिऋद्धिविभवं प्रख्यातयं पूज्यता
कीर्तिं क्षेमगणपुण्यमहिमा दीर्घायुरारोग्यवत् ।
सौभाग्यं धनधान्यसम्पदभयं भद्रं शुभं मङ्गलम्
भूयाद्भव्यजनस्य भास्वति जिनाधीशे प्रतिष्ठापिते ॥

इति हस्तिमल्ल प्रतिष्ठाविधानं समाप्तम् ।

यह हस्तिमल्ल-प्रतिष्ठा विधान मूडबिद्री से प्रतिलिपि करा कर आया है। इसमें कहीं भी ग्रन्थकर्ता का परिचय नहीं मिलता। परन्तु ग्रन्थ के आदि और अन्त में 'हस्तिमल्लकृत' लिखा मिलता है अवश्य। इसी से इस प्रतिष्ठाग्रन्थ का कर्ता हस्तिमल्ल माना गया है। अय्यपार्य-कृत 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' में निम्नलिखित यह श्लोक उपलब्ध होता है —

"वीराचार्यसुपूज्यपादजिनसेनाचार्यसभाषितो
यः पूर्वं गुणभद्रसूरिवसुनन्दीन्द्रादिनन्द्यूर्जितः ।
यश्चाशाधरहस्तिमल्लकथितो यश्चैकसन्धीरितः
स्तेभ्यस्स्वाहृतसारमार्यरचितः स्याज्जैनपूजाक्रमः" ॥

इस श्लोक से यह बात सिद्ध हो जाती है कि हस्तिमल्ल ने भी एक प्रतिष्ठा-पाठ रचा है। अतः यह ग्रन्थ उन्हीं का प्रणीत कहने में कोई आपत्ति नहीं दिखती है। यदि यह प्रतिष्ठा विधान विक्रान्तकौरव एवं मैथिलीकल्याण आदि नाटकों के प्रणेता प्रसिद्ध हस्तिमल्ल कवि का ही माना जाय तो इनका कुछ विशेष परिचय 'माणिक्यचन्द्र-ग्रन्थमाला' में प्रकाशित उक्त नाटकग्रन्थों की भूमिका में मिलता है। इस भूमिका के लेखक श्रीयुत पं०

नाथूराम जी प्रेमी हैं। इस पाण्डित्यपूर्ण भूमिका में प्रतिपादित दो-एक बातों पर जो मेरा मतभेद है—यहाँ पर सिर्फ उसी का खुलासा कर देना मेरा ध्येय है।

(१) प्रेमी जी ने इस भूमिका में लिखा है कि कवि ने अपने पूज्य पिता के नाम के आगे 'स्वामी' तथा 'भट्टार' पद को जोड़ा है, इससे ज्ञात होता है कि इनके पिता साधु अथवा भट्टारक रहे होंगे। पर मुझे यह बात अखरती है। क्योंकि अगर इनके पिता गोविन्द भट्ट साधु या भट्टारक होते तो कवि उनके दीक्षानाम का उल्लेख अवश्य करता। बल्कि वह अपने पूज्य पिता के उस दीक्षानाम का ही उद्धरण सगर्व करता। किन्तु हस्तिमल्ल अपनी कृतियों में "भट्टारगोविन्दस्वामिसूनुना" इतना ही लिखकर चुप हो बैठते हैं। गोविन्द स्वामी या गोविन्द भट्ट यह नाम बहुधा दाक्षिणात्य जैनेतर ब्राह्मणों में आज भी प्रचलित है। इस बात को प्रेमी जी भी मानते हैं कि गोविन्द भट्ट जैन होने के पहले वत्सगोत्रीय हिन्दू ब्राह्मण थे। अब रहा 'भट्टार' शब्द। यह शब्द पूज्य अर्थ में प्रयुक्त होता लोगों में बहुलता से पाया जाता है। कवि हस्तिमल्ल के लिये अपने श्रद्धेय पिता के नाम के आदि में ऐसे आदरसूचक शब्द का प्रयोग करना सर्वथा स्वाभाविक है। प्रेमी जी ने अपने उक्त पक्ष को प्रमाणित करने के लिये एक और प्रमाण उपस्थित किया है। आप का कहना है कि विक्रांतकौरवीय प्रशस्ति में वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र आदि आचार्यपरम्परा में गोविन्द भट्ट का उल्लेख मिलता है। मगर प्रेमी जी के इस प्रमाण के उत्तर में भी मेरी पहली दलील ही काफी मालूम पड़ती है। क्योंकि यहाँ भी उनका पूर्व नाम अर्थात् जैन होने के पहले का गोविन्द भट्ट नाम ही दिया गया है, न कि जैन आगमानुसार परिवर्तित दीक्षानाम। हाँ, यहाँ पर यह प्रश्न उठ खड़ा हो सकता है कि गुणभद्रांत उक्त गुरुपरम्परा में गोविन्द भट्ट का उल्लेख कैसे हुआ? मेरे जानते इसमें कोई विशेष विचित्रता नहीं है। क्योंकि एक गृहस्थ जैनी भी किसी गुरुपरम्परा का अपने को अनुयायी बतला सकता है। इसके लिये कोई रुकावट नहीं है। इस सम्बन्ध में एक नहीं, अनेक उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं। उन दिनों दक्षिण प्रांत में सेनगणीय आचार्यों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। अत गृहस्थ गोविन्द भट्ट ने भी इस आदर्शभूत गुरुपरम्परा को ही अपनी गुरुपरम्परा मान लिया। अब यह भी एक शंका उठ सकती है कि जैनी होने के बाद गोविन्द भट्ट ने अपना नाम क्यों नहीं बदल लिया। पर यह कोई नई बात नहीं है। क्योंकि आज भी जैनियों में बहुत से लोग कट्टर जैनी होते हुए भी हिंदू नाम ही धारण किये हुए हैं। इतना ही नहीं, खास कर दक्षिण में आज भी बहुत से जैनवंशों में वत्स, वशिष्ठादि हिंदू गोत्र-सूत्र ही चले आ रहे हैं। जैनधर्म में दीक्षित होने के बाद भी उन्होंने अपने पूर्व गोत्र-सूत्रों का परित्याग नहीं

किया। इसके अतिरिक्त "तच्छिष्यानुक्रमे यातेऽसंख्येये विश्रुतो भुवि। गोविन्दभट्ट इत्यासीद्विद्वान् मिथ्यात्ववर्जित ॥" प्रेमी जी के जिनसेनगुरुपरम्परा को पुष्ट करने वाले इस श्लोक में गोविन्द भट्ट को साधु या भट्टारक सिद्ध करने वाला कोई शब्द नहीं है।

प्रेमी जी ने उक्त हस्तिमल्ल के द्वारा रचित विक्रांतकौरवीय नाटक के प्रथमाङ्क के अन्त में प्रतिपादित—'श्रीवत्सगोत्रजनभूषणगोपभट्टप्रेमैकधामतनुजो भुवि हस्तियुद्धात्। नानाकलाम्बुनिधिपाण्ड्यमहेश्वरेण श्लोकै शतै सदसि सत्कृतवान् बभूव ॥४०॥' और इन्हीं के अञ्जनापवनञ्जय नाटक में उल्लिखित—"श्रीमत्पाण्ड्यमहेश्वरे निजभुजादण्डावलम्बीकृते कर्णाटावनिमण्डलं पदनतानेकावनीशेऽवति। तत्प्रीत्यानुसरन् स्वबन्धुनिवहैर्विद्वद्भिराप्तैः सम जैनागारसमेतसंततरमे (?) श्रीहस्तिमल्लोऽवसत् ॥ इन श्लोकों में उद्धृत पाण्ड्यनरेश को मधुरा के निकटस्थ पाण्ड्यदेशका शासक बतलाकर उल्लिखित हस्तिमल्लकविको इस पाण्ड्य नरेश-द्वारा सम्मानित बताया है। पर 'राजावलिकथे' में देवचन्द्र ने लिखा है कि 'यह कवि हस्तिमल्ल उभयभाषाकविचक्रवर्त्ती थे। बल्कि इसी के आधार पर प्रेमी जी का भी कहना है कि यह कवि हस्तिमल्ल कन्नड के भी कवि प्रमाणित होते हैं एवं इस भाषा में भी इनको कोई रचना होनी चाहिये। किन्तु यह तो सर्वविदित बात है कि मधुरा की प्रान्तीय भाषा सदा स तमिलु चली आती है। ऐसी अवस्था में कवि हस्तिमल को मधुरा के पाण्ड्यनरेश के आश्रित मानना ठीक नहीं जचता। अगर देवचन्द्र प्रतिपादित उभयभाषाकविचक्रवर्ती का अर्थ संस्कृत एवं कन्नड भाषा ही माना जाय तो मेरा अनुमान है कि हस्तिमल्ल के आश्रयदाता उक्त पाण्ड्यनरेश पाण्ड्यदेश के न होकर वर्तमान दक्षिण कन्नडान्तर्गत कार्कल के माने जा सकते हैं। यह राजपरम्परा भी पाण्ड्यवंशीय ही था। बल्कि यह राजवंश शुरू से अन्त तक कट्टर जैनमतानुयायी ही रहा। इस वंश में कई विद्वान् राजा भी हुए हैं तथा इन्होंने अनेक ग्रन्थकर्त्ताओं को आश्रय भी दिया है।

दूसरी बात यह है कि प्रेमी जी जिस पाण्ड्यनरेश को हस्तिमल्ल कवि के सम्मानयिता बतला रहे हैं, वह सुन्दर पाण्ड्य प्रथम के उत्तराधिकारी हैं। मुझे जहां तक ज्ञात है कि यह सुन्दर पाण्ड्य जैन धर्म का एकान्त शत्रु था। ऐसी दशा में उसका उत्तराधिकारी एक कट्टर जैन विद्वान् को आश्रय दे यह बात जरा खटकती है। 'कन्नडकविचरिते के मान्य लेखक श्रीमान् स्वर्गीय नरसिंहाचार्य ने भी हस्तिमल्ल कवि को कन्नडकवि माना है। इतना ही नहीं इन्होंने इस कवि के प्रणीत आदिपुराण' नामक एक कन्नड ग्रन्थ का उल्लेख भी किया है। उल्लिखित बातों पर विचार करते हुए इस कवि को कार्कल पाण्ड्य

नरेश का आश्रित मानना अधिक समुचित ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त ऊपर उद्धृत 'श्रीमत्पाण्ड्यमहीश्वरे' इस श्लोक के द्वितीय चरण मे अंकित—"कर्णाटावनिमण्डलं* पदानतानेकावनीशेऽवति" से भी मेरा कथन सर्वतो भाव से पुष्ट हो जाता है कि यह पाण्ड्यनरेश कर्णाटक देश के ही शासक थे न कि तमिलु प्रान्त के। यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है कि कार्कल आज भी कर्णाटक प्रान्त के अन्तर्भुक्त है।

प्रेमी जी ने उक्त नाटकों की भूमिकाओं मे हस्तिमल्ल कवि के परिचय में उद्धृत—"सम्यक्त्व सुपरीक्षितु मदगजे मुक्ते सरण्यापुरे " "श्लोकेनापि मदेभमल्ल इति य प्रख्यातवान् सूरिभि " इन श्लोको को अय्यपार्य कृत 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' के बतलाया है। पर मुझे तो उक्त ग्रन्थ में ये श्लोक नहीं मिले। हां, इन्हीं हस्तिमल्ल के रचित अमुद्रित सुभद्रानाटिका के अन्त मे ये दोनों श्लोक अङ्कित अवश्य हैं।

इसी 'प्रतिष्ठाविधान' के प्रारम्भिक भागान्तर्गत यह २य श्लोक विशेष विचारणीय है—"नत्वे न्द्रनन्दिमुकटोत्तरप्रतिष्ठां प्राग्भाविकृत्यमजित जिनदिव्यमूर्त्तेः। तोयैर्भुव शुभतमैरभितो विशोध्य पात्राणि तत्र सलिलाद्यपि शोधयित्वा॥" खास कर इस पद्य के प्रारम्भ मे आये हुए इन्द्रनन्दि शब्द अत्यधिक द्रष्टव्य है। श्लोक कुछ अशुद्ध जान पड़ता है, इसी से ठीक सम्बन्ध नहीं बैठता। मै इस बात की ओर सकेत करना चाहता हूँ, वह यह है कि इस प्रतिष्ठाविधान को इन्द्रनंदिकृत प्रतिष्ठा-पाठ से अवश्य मिला लेना चाहिये। सम्भव है कि उसी की छाया लेकर इस प्रतिष्ठा-ग्रन्थ का प्रणयन किया गया हो। अय्यपार्य ने भी अपने जिनेंद्रकल्याणाभ्युदय नामक प्रतिष्ठाग्रन्थ मे इन्द्रनन्दि को प्रतिष्ठाग्रन्थ का प्रणेता बतलाया है। बल्कि वह श्लोक ऊपर उद्धृत भी कर दिया गया है। अस्तु कवि हस्तिमल्ल १३वीं शताब्दी के अन्त मे हुए हैं।



*इससे तमिलु एवं कर्णाटक दो अर्थ नहीं निकल सकते हैं।

किया। इसके अतिरिक्त "तच्छिष्यानुक्रमे यातेऽसङ्ख्येये विश्रुतो भुवि। गोविन्दभट्ट इत्यासीद्विद्वान् मिथ्यात्ववर्जित ॥" प्रेमी जी के जिनसेनगुरुपरम्परा को पुष्ट करने वाले इस श्लोक में गोविन्द भट्ट को साधु या भट्टारक सिद्ध करने वाला कोइ शब्द नहीं है।

प्रेमी जी ने उक्त हस्तिमल्ल के द्वारा रचित विक्रांतकौरवीय नाटक के प्रथमाङ्क के अन्त में प्रतिपादित—"श्रीवत्सगोत्रजनभूषणगोपभट्टप्रेमैकधामतनुजो भुवि हस्तियुद्धात्। नानाकलाम्बुनिधिपाण्ड्यमहेश्वरेण श्लोकै शतै सदसि सत्कृतवान् बभूव ॥४०॥ और इन्हीं के अञ्जनापवनञ्जय नाटक में अङ्कित—"श्रीमत्पाण्ड्यमहेश्वरे निजभुजादण्डावलम्बीकृते कर्णाटावनिमण्डलं पदनतानेकावनीशेऽवति। तत्प्रीत्यानुसरन् स्वबन्धुनिवहैर्विद्वद्भिराप्तैः समं जैनागारसमेतसततरनमे (?) श्रीहस्तिमल्लोऽवसत् ॥' इन श्लोकों में उक्त पाण्ड्यनरेश को मधुरा के निकटस्थ पाण्ड्यदेशका शासक बतलाकर उल्लिखित हस्तिमल्लकविको इस पाण्ड्य नरेश-द्वारा सम्मानित बताया है। पर राजावलिकथे' में देवचन्द्र ने लिखा है कि 'यह कवि हस्तिमल्ल उभयभाषाकविचक्रवर्ती थे। बल्कि इसी के आधार पर प्रेमी जी का भी कहना है कि यह कवि हस्तिमल्ल कन्नड के भी कवि प्रमाणित होते हैं एवं इस भाषा में भी इनकी कोई रचना होनी चाहिये। किन्तु यह तो सर्वविदित बात है कि मधुरा की प्रान्तीय भाषा सदा से तमिलु चली आती है। ऐसी अवस्था में कवि हस्तिमल को मधुरा के पाण्ड्यनरेश के आश्रित मानना ठीक नहीं जचता। अगर देवचन्द्र प्रतिपादित उभयभाषाकविचक्रवर्ती का अर्थ संस्कृत एवं कन्नड भाषा ही माना जाय तो मेरा अनुमान है कि हस्तिमल्ल के आश्रयदाता उक्त पाण्ड्यनरेश पाण्ड्यदेश के न होकर वर्तमान दक्षिण कन्नडान्तर्गत कारकल के माने जा सकते हैं। यह राजपरम्परा भी पाण्ड्यवंशीय ही था। बल्कि यह राजवंश शुरू से अन्त तक कट्टर जैनमतानुयायी ही रहा। इस वंश में कई विद्वान् राजा भी हुए हैं तथा इन्होंने अनेक ग्रन्थकर्त्ताओं को आश्रय भी दिया है।

दूसरी बात यह है कि प्रेमी जी जिस पाण्ड्यनरेश को हस्तिमल्ल कवि के सम्मानयिता बतला रहे हैं, वह सुन्दर पाण्ड्य प्रथम के उत्तराधिकारी हैं। मुझे जहां तक ज्ञात है कि यह सुन्दर पाण्ड्य जैन धर्म का एकान्त शत्रु था। ऐसी दशा में उसका उत्तराधिकारी एक कट्टर जैन विद्वान् को आश्रय दे यह बात जरा खटकती है। 'कन्नडकविचरिते के मान्य लेखक श्रीमान् स्वर्गीय नरसिंहाचार्य ने भी हस्तिमल्ल कवि को कन्नडकवि माना है। इतना ही नहीं इन्होंने इस कवि के प्रणीत 'आदिपुराण नामक एक कन्नड ग्रन्थ का उल्लेख भी किया है। उल्लिखित बातों पर विचार करते हुए इस कवि को कार्कल पाण्ड्य

नरेश का आश्रित मानना अधिक समुचित ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त ऊपर उद्धृत 'श्रीमत्पाण्ड्यमहीश्वरे' इस श्लोक के द्वितीय चरण में अंकित—"कर्णाटावनिमण्डलं* पदानतानेकावनीशेऽवति" से भी मेरा कथन सर्वतो भाव से पुष्ट हो जाता है कि यह पाण्ड्यनरेश कर्णाटक देश के ही शासक थे न कि तमिलु प्रान्त के। यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है कि कार्कल आज भी कर्णाटक प्रान्त के अन्तर्भुक्त है।

प्रेमी जी ने उक्त नाटकों की भूमिकाओं में हस्तिमल्ल कवि के परिचय में उद्धृत— "सम्यक्त्व सुपरीक्षितु मदगजे मुक्ते सरण्यापुरे " "श्लोकेनापि मदेभमल्ल इति य प्रख्यातवान् सूरिभि' " इन श्लोकों को अय्यपार्य कृत 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' के बतलाया है। पर मुझे तो उक्त ग्रन्थ मे ये श्लोक नहीं मिले। हां, इन्हीं हस्तिमल्ल के रचित अमुद्रित सुभद्रानाटिका के अन्त मे ये दोनो श्लोक अङ्कित अवश्य हैं।

इसी 'प्रतिष्ठाविधान' के प्रारंभिक भागान्तर्गत यह २य श्लोक विशेष विचारणीय है—"नत्वेन्द्रनन्दिमुकटोत्तर प्रतिष्ठां प्राग्भाविकृत्यमजित जिनदिव्यमूर्त्तेः। तोयैर्भुवं शुभतमैरभितो विशोध्य पात्राणि तत्र सलिलाद्यपि शोधयित्वा॥" खास कर इस पद्य के प्रारंभ मे आये हुए इन्द्रनन्दि शब्द अत्यधिक द्रष्टव्य है। श्लोक कुछ अशुद्ध जान पडता है, इसी से ठीक सम्बन्ध नहीं बैठता। मै इस बात की ओर संकेत करना चाहता हूँ, वह यह है कि इस प्रतिष्ठाविधान को इन्द्रनंदिकृत प्रतिष्ठा-पाठ से अवश्य मिला लेना चाहिये। संभव है कि उसी की छाया लेकर इस प्रतिष्ठा-ग्रन्थ का प्रणयन किया गया हो। अय्यपार्य ने भी अपने जिनेंद्रकल्याणाभ्युदय नामक प्रतिष्ठाग्रन्थ में इन्द्रनन्दि को प्रतिष्ठाग्रन्थ का प्रणेता बतलाया है। बल्कि वह श्लोक ऊपर उद्धृत भी कर दिया गया है। अस्तु कवि हस्तिमल्ल १३वीं शताब्दी के अन्त में हुए हैं।



*इससे तमिलु एवं कर्णाटक दो अर्थ नहीं निकल सकते है।

(३६) ग्रन्थ नं० २४९/ख

# श्रीकल्याण-मन्दिर

कर्ता— कुमुदचन्द्राचार्य

विषय—स्तोत्र और यन्त्र मन्त्र

भाषा—संस्कृत ( मन्त्र तथा यन्त्र के विवरण में प्राकृत एवं हिन्दी भी है )

लम्बाई ७ इन्च चौड़ाई ५ इन्च पत्रसंख्या ४४

*प्रारम्भिक भाग—*

कल्याणमन्दिरमुदारमवद्यभेदि भीताभयप्रदमनिन्दितमङ्घ्रिपद्मम्।
संसारसागरनिमज्जदशेषजन्तुपोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥ १ ॥
यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमाम्बुराशेः स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर्न विभुर्विधातुम्।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्मयधूमकेतोस्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥ २ ॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो पास पास पणणाय। ॐ ह्रीं अर्हं णमो दव्वं कराए। मन्त्र—ॐ नमो भगवते मम ईप्सितं कार्यसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा। यन्त्र—कमलाकार पचवीश—२५ पाखड़ी मध्ये ऋद्धि मध्ये कल्य्यूं ऊपरि मन्त्र दिन ६० जपे प्रहर २ नित्यप्रति १०० जपै। पवन ऊपर, एक आसन, एक माला पूर्व दिग्मुख धूप कपूर चन्दन, मृगमद से लाल रस की लक्ष्मी लाभ मन्त्र श्रीपार्श्वनाथ चूडारत्न करै ब्रह्मचर्य पाले और एकान्त शुचि रहै।

(आगे इसी मन्त्र का यन्त्र दिया है ) ॥ १ २ ॥

× × × ×

*मध्य भाग (पत्र पृष्ठ २१, पंक्ति १)—*

स्वामिन् सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुंगवाय ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः ॥ २२ ॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो तव्वतपलाए। मन्त्र—ॐ नमो पद्मावत्यै ह्म्ल्व्र्यूं नमः। यंत्र—चम्पक वृत्ताकार पत्र नव—९ मध्ये मानसपाषि तदुपरि ऋद्धि, दिन २१, नित्य १००० जपै

वाग मे अच्छा श्रेष्ठ फलनि जपै, आसन दाभ (कुश), माला तुलसी, मुख नैर्ऋत्य कोण, धूप गुगुल, कुंदीला घृत को देय गयो पुष्प नीपजे ( कदम्बपुष्प ) ॥ २२ ॥

( आगे चम्पक-वृत्ताकार मे सुन्दर यन्त्र बना हुआ है )।

× × × ×

*अन्तिम भाग :—*

जननयनकुमुदचन्द्रप्रभास्वरा स्वर्गसम्पदो भुक्त्वा ।
ते विगलितमलनिचया अचिरान्मोक्ष प्रपद्यन्ते ॥ ४४ ॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नम । मन्त्र—ॐ नमो धरणेन्द्रपद्मावतीसहिताय श्रीं क्लीं ऐं अर्हं नम । यन्त्र—गुलाव पुष्पवत् पत्र कर्णिका मध्ये ॐ कर्णिकायां ऋद्धि । तदुपरि मन्त्र । दिन ४०, नित्य १००० जपै, लक्ष्मी प्राप्ति, आसन रक्त, माला विद्रुम, पूर्व मुख, धूप चन्दन मुस्त, कपूर पलारस । प्रथम तो साधक जन ब्रह्मचर्य धारक हो, पञ्च अहिंसादि धर्म का धारी हो, लघु भुक्ति, दयावान हो, पवित्रातें चर्माश्रित वस्तु घृत हींग आदि का त्यागी हो मन्त्र सिद्ध करे। मन्त्र सिद्ध होने पर पद्मावती देवी का पूजन श्रावकाने भुक्त देय, चार प्रकार सघ दान दे। सर्व सकट टलै, सर्वसिद्धि श्रीपार्श्वनाथ रत्न चूडा देय ॥ ४४ ॥

'भक्तामर' के समान इस स्तोत्र मे भी ऋद्धि, मन्त्र, यन्त्र एव साधनक्रम आदि प्रत्येक पद्य के अन्त मे स्पष्ट दिये गये है। ग्रन्थ मे कहीं मन्त्रादि विवरण-कर्ता का उल्लेख नहीं मिलता है। श्रीकुमुदचन्द्रजी केवल इस स्तोत्र के प्रणेता है।

---

## (३७) ग्रन्थ नं० २५० / ख

# सिद्धचक्र

कर्त्ता—ललितकीर्ति भट्टारक

विषय—पूजा
भाषा—संस्कृत

*लम्बाई ६। इन्च* चौडाई ४। इन्च *पत्र संख्या ११६*

*प्रारम्भिक भाग—*

प्रणम्य श्रीजिनाधीश लब्धिमामस्त्यसयुतम ।
श्रीसिद्धचक्रयन्त्रस्याच्चार्मिहत्रगुण स्तुवे ॥ १ ॥

यजमान-लक्षण—   विनीतो बुद्धिमान् प्रीतो न्यायोपात्तधनो महान् ।
शीलादिगुणसम्पन्नो यज्वा सोऽत्र प्रशस्यते ॥ २ ॥

याजक-लक्षण—   देशकालादिभाववो निर्मलो बुद्धिमान् वरः ।
सद्भावयादिगुणोपेतो याजकः सोऽत्र शस्यते ॥ ३ ॥

आचार्य लक्षण—   दर्शनज्ञानचारित्रैः संयुतो ममतात्तिगः ।
प्राज्ञः प्रशस्तसंस्थानः गुरुः स्याच्छान्तिनिष्ठितः ॥ ४ ॥

मण्डप-लक्षण—   निर्मलं पृथुलं तुंगतारकातोरणान्वितम् ।
प्रलम्बपुष्पमालाढ्यं चतुर्धा कुसुमसंयुतम् ॥ ५ ॥
भेरीपटहकसालतालमार्दलनिःस्वनैः ।
आकुलं स्तैर्गीताढ्यं मण्डपं कारयेद्बुधः ॥ ६ ॥

सामग्री लक्षण—   स्वजात्योत्कर्षिणी पूता नेत्रमनःसहारिणी ।
सामग्री शस्यते सद्भिर्निखिलानन्दकारिणी ॥ ७ ॥

×   ×   ×

*मध्य भाग (पृष्ठ ६९ पंक्ति १)*

जयमाल—   देवाधीशैर्नरेशैः फणिपतिभिरिह प्रत्यहं पूज्यपादा-
नर्हत्सिद्धानुगेशांस्त्रिविधमुनिवरान् सदुपाध्यायसाधून् ।
दोषातीतान्वरिष्ठान् निजसुगुणगणाभूषणैर्भूषितांस्तान्
नत्वा दृग्बोधवृत्तादिभिरपि सहितान्संस्तुवे तद्गुणाप्त्यै ॥ १ ॥
सदनन्तचतुष्टयगुणविलास हतघातिचतुष्टयकर्मपाश ।
सकलातिशयादिसुगुणसमृद्ध त्यक(?)महन् जिन जय जय सुबुद्ध ॥२॥
जय कर्माष्टकक्षयकरशूर जय विश्वालोकनपरमशूर ।
जय जय सर्वोत्तमवस्तुसमृद्ध सिद्धाधिप जय जय शुद्ध बुद्ध ॥ ३ ॥
जय पञ्चाचाराचरणवीर जय शिष्यानुग्रहकरणवीर ।
स्थितकल्पदशादिसुगुणसमृद्ध जय सूरीश्वर सतत प्रबुद्ध ॥ ४ ॥
एकादशांगधृतकण्ठहार जय सम्यक्चतुर्दशपूर्वधार ।
एवं श्रुतजलनिधिगुणसमृद्ध त्वं पाठक जय सतत प्रबुद्ध ॥ ५ ॥
आरंभपरिग्रहनिखिलमुक्त जय दृष्टिबोधचारित्ररक्त ।
जय मूलोत्तरगुणनिधिसमृद्ध जय साधो जय सततं प्रबुद्ध ॥ ६ ॥
जय सम्यग्दर्शनचक्षुरत्न तपसा सह रत्नत्रयपवित्र ।
व्यवहारपरमगुणमेरुपूर्ण संचितमुनिवरकृतकर्मचूर्ण ॥ ७ ॥

पञ्चैतान्परमेष्ठिन सुतपसा रत्नत्रयेणान्वितान्
ससाराम्बुधितारकान् भुविजना ध्यायन्ति ये नित्यश ।
त देवेन्द्रपद नरेन्द्रपदवीप्राप्ता गुणैर्भद्रकै
सार्द्ध जन्मजरादिदु:खरहित पश्चाल्लभन्ते शिवम् ॥ ८ ॥

× × ×

*अन्तिम भाग—*

श्रीकाष्ठसघे ललितादिकीर्त्तिना भट्टारकेणैव विनिर्मिता वरा ।
नामावली पद्यनिबद्धरूपिका भूयात्सतां मुक्तिपदाप्तिकारणम् ॥

इस 'सिद्धचक्रपूजा' के रचयिता काष्ठासघीय भट्टारक ललितकीर्तिजी हैं । इन्हों ने ही आदिपुराण की एक सस्कृत टीका भी लिखी है। इनके अतिरिक्त त्रिलोकसार-पूजा नामका एक और ग्रन्थ इनका मिलता है । प्रस्तुत ग्रन्थ सिद्धचक्रपूजा मे रचयिता के नाम सघ और पद के सिवा और कोई विशेष परिचय नहीं मिलता । हां, आदिपुराण की टीका की निम्न लिखित प्रशस्ति मे अपने गुरु का नाम दिया है।

४ ८ ० १
वर्षे सागरनागभोगिकुमिते मार्गे च मासेऽसिते
पक्षे पक्षतिसत्तिथौ रविदिने टीका कृतेय वरा ।
काष्ठासघवरे च माथुरवरे गच्छे गणे पुष्करे
देवश्रीजगदादिकीर्तिरभवत्ख्यातो जितात्मा महान् ॥
तच्छिष्येण च मन्दतान्वितधिया भट्टारकत्व यता
शुभद्दै(?) ललितादिकीर्त्यभिधया ख्यातेन लोके ध्रुवम् ।
राजच्छ्रीजिनसेनभाषितमहाकाव्यस्य भक्त्या मया
सशोध्यैवमुपग्रतां बुधजनै शान्ति विधायादरात् ॥

'दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' मे प० नाथूरामजी प्रेमी ने इनका समय वि० स० ६०१।१ दिया है। किन्तु उल्लिखित प्रशस्ति मे दिये गये समय से इसका विशेष अन्तर पड जाता है ।

ललितकीर्त्तिजी का यह टीकाग्रन्थ ताडपत्राङ्कित कन्नडाक्षरमे भवन में मौजूद है। उन्हों ने अपने पूज्य गुरु का नाम ऊपर श्रीजगत्कीर्त्ति देव लिखा है। प्राय यही जगत्कीर्ति 'एकीभावनोद्यापना' के रचयिता हों। प्रस्तुत कृति की भाषा ललित एवं विशुद्ध है ।

(३८) ग्रन्थ नं० $\frac{२५१}{छ}$

# लोकतत्त्व-विभाग

कर्त्ता—श्रीसिंहसूरि

विषय—भूगोल

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३ इञ्च | चौड़ाई ८। इञ्च | पत्रसंख्या ७०

प्रारम्भिक भाग—

लोकालोकविभागज्ञान् भक्त्या स्तुत्वा जिनेश्वरान् ।
व्याख्यास्यामि समासेन लोकतत्त्वमनेकधा ॥ १ ॥
क्षेत्रं कालस्तथा तीर्थं प्रमाणपुरुषैः सह ।
चरितञ्च महस्तेषां पुराणं पञ्चधा विदुः ॥ २ ॥
समन्ततोऽप्यनन्तस्य वियतो मध्यमाश्रितः ।
त्रिविभागस्थितो लोकस्तिर्यग्लोकोऽस्य मध्यगः ॥ ३ ॥
जम्बूद्वीपोऽस्य मध्यस्थो मन्दरस्तस्य मध्यगः ।
तस्माद्विभागो लोकस्य तिर्यगूर्ध्वोऽधरस्तथा ॥ ४ ॥
तिर्यग्लोकस्य बाहुल्यं मेर्वायामसमं स्मृतम् ।
तस्मादूर्ध्वो भवेदूर्ध्वो ह्यधस्तादधरोऽपि च ॥ ५ ॥

× × ×

मध्यभाग (पूर्वपृष्ठ ३७, पंक्ति १२)

शुक्रो जीवो बुधो भौमो राहुरिष्टशनैश्चराः ।
धूमाग्निकृष्णनीलाः स्युः एक शीतश्च केतवः ॥
श्वेतकेतुजलाख्यश्च पुष्पकेतुरिति महाः ।
प्रतिचन्द्रः ग्रहा एते कृत्तिकादीनि भानि च ॥
षट्ताराः कृत्तिका प्रोक्ता आकृत्या व्यजनोपमा ।
शकटोऽग्निसमा ज्ञेया रोहिण्यः पञ्चतारकाः ॥

मृगस्य शिरसा तुल्यास्तिस्र सौम्यस्य तारका ।
दीपिकावद्भवत्याद्रा एकतारा च सोदिता ॥
पुनर्वसोश्च षट्तारा व्याख्यातास्तोरणोपमा ।
अनुराधा षडेवोक्ता मुक्ताहारोपमाश्च ता ॥
वीणाशृंगसमा ज्येष्ठा तिस्रस्तस्याश्च तारका ।
मूलो वृश्चिकवत्प्रोक्तो नव तस्यापि तारका ॥
आप्यं दुष्कृतवापीवच्चतस्रस्तस्य तारका ।
वैश्वस्य सिंहकुंभाभाश्चतस्रस्तारका ध्रुवम् ॥
अभिजिद्गजकुंभाभस्तिस्रस्तस्य च तारका ।
मृदंगसदृशो दृष्टः श्रवणश्च त्रितारकः ॥
पञ्चतारा धनिष्ठा च पतत्पक्षिसमाश्च ता ।
एकादशशतं तारा वारुणासैन्यवच्च ता ॥
पूर्वप्रोष्ठपदे तारे हस्तिपूर्वतनूपमे ।
उत्तरे चोदिते तारे हस्तिनोऽपरगात्रवत् ॥
रेवती नौसमा तस्या द्वात्रिंशत्खलु तारका ।
अश्विनी पञ्चतारा स्यान्मता साश्वशिरस्समा ॥
भरण्योऽपि त्रिकास्ताराश्चुल्लीपाषाणसंस्थिता ।
सैकादशशतं चैकसहस्रं स्वस्वतारका ॥
प्रमाणेनाहतं कृत्तिकात्रितारासमा भवेत् ।
नवाभिजिन्मुखास्ताराः स्वाति पूर्वोत्तरेति च ॥
द्वादशप्रथमे मार्गे चरन्तीन्दोर्मता इति ।
मघापुनर्वसू तारे तृतीये सप्तमे पथि ॥
रोहिणी च तथा चित्रा षष्ठे मार्गे च कृत्तिका ।
विशाखा चाष्टमे चानुराधा च दशमे पथि ॥
ज्येष्ठा चैकादशे मार्गे शेषा पञ्चदशेष्टका ।
हस्तमूलत्रिकं चैव मृगशीर्षद्विकं तथा ॥
पुष्यद्वितयमित्यष्टौ शेषतारा प्रकीर्तिता ।
कृत्तिकासु पतन्तीषु मध्यं यन्त्यष्टमा मघा ॥
उदयन्त्यनुराधाश्च शेषेष्वेव तु योजयेत् ।
भरणी स्वातिरश्लेषा चार्द्राशतभिषक्तथा ॥

ज्येष्ठेति षड् जघन्याः स्युरुत्कृष्टाश्चोत्तरात्रयम्।
पुनर्वसु विशाखा च रोहिणी चेति षट् पुनः॥
अश्विनी कृत्तिका चानुराधा चित्रा मघा तथा।
मूलं पूर्वात्रिकं पुष्यं हस्तः श्रवणरेवती॥
मृगशीर्षं धनिष्ठेति निरपेक्ष च मध्यमाः।
रविजघन्यभे तिष्ठेत् रस शायुक्षमांशकम्॥
षड्दिन मध्यमोत्कृष्टे मे तद्वृद्धिविगुण क्रमात्।
अभिजिद्भामभे नेव सपक्षमचतुर्दिनम्॥
ससपष्ट्याशशून्यत्रिपणमुहूर्तं विधुश्चरेत्।
चन्द्रो जघन्यनक्षत्रे त्रिनार्ध मध्यमर्तके॥
द्विक्त चोत्तरे भे च तिष्टेत् सार्धदिनं ध्रुवम्।
योजनानां भवेत्त्रिंशत् षष्टिश्च नवतिः क्रमात्॥
जघन्यमध्यमोत्कृष्टनक्षत्रपरिमण्डलम्।
अभिजिन्मातृद्वलक्षेत्रमर्धत्रकयोजनम्॥
अष्टिका अपि तासां स्युः समसंख्या हि मण्डले।

× × ×

अन्तिम भाग—

युक्तः प्राणिदयागुणेन विमले सत्यादिभिश्च व्रतः
मिथ्यादृष्टिकषायनिजयशुचिजित्वेन्द्रियाणां वशम्।
कृत्वा दीप्ततपोऽग्निना विरचितं कर्मापि सिद्धः मुनिः
सिद्धिं याति विहाय जन्मगहनं शार्दूलविक्रीडितम्॥
भव्येभ्यः सुरमानुषोरुसदसि श्रीवर्धमानार्हता
यत्प्रोक्तं जगतो विधानमखिलं ज्ञातं सुधर्मादिभिः।
आचार्यावलिकागतं विरचितं सिंहसूरर्षिणा
भाषाया परिवर्तनेन निपुणो सम्मन्यतां साधुभिः॥
वैश्वे स्थिते रविसुते वृषभे च जीवे
राजोत्तरेषु सितपक्षमुपेत्य चन्द्रे।
ग्रामे च पाटलिकनामनि पाण(प)राष्ट्रे
शास्त्रं पुरा लिखितवान् मुनिसर्वनन्दी॥

सवत्सरे तु द्वाविंशे काञ्चीशसिंहवर्मण ।
अशीत्यग्रे शकाब्दानां सिद्धमेतच्छतत्रये ॥
पञ्चादशशतान्याहु पट्त्रिंशदधिकानि वै ।
शास्त्रस्य सग्रहस्त्वेष छन्दसानुष्टुभेन च ॥

इति लोकविभागे मोक्षविभागो नामैकादशं प्रकरण समाप्तम् ।

इस ग्रन्थ की भाषा सस्कृत और छन्द अनुष्टुप् है। इसमें जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, मानुषक्षेत्र, द्वीपसमुद्र, काल, तिर्यग्लोक, भवनवासिलोक, गति, मध्यलोक, व्यन्तरलोक, स्वर्ग एव मोक्षविभाग नाम के ग्यारह अधिकार या अध्याय हैं। सक्षेप में यह त्रैलोक्यसार के ढग का ग्रन्थ है। इसके अन्तिम श्लोक ये हैं—

"वैश्वे स्थिते रविसुते वृषभे च जीवे,
राजोत्तरेषु सितपक्षमुपेत्य चन्द्रे।
ग्रामे च पाटलिक नामनि पाण(पाराड्य)राष्ट्रे,
शास्त्र पुरा लिखितवान्मुनिसर्वनन्दी ॥१॥"

"सवत्सरे तु द्वाविंशे काञ्चीशसिंहवर्मण ।
अशीत्यग्रे शकाब्दानां सिद्धमेतच्छतत्रये ॥२॥"

"पञ्चादशशतान्याहु पट्त्रिंशदधिकानि वै ।
शास्त्रस्य सग्रहस्त्वेष छन्दसानुष्टुभेन च ॥३॥"

उल्लिखित प्रथम श्लोक का यह अर्थ होता है कि जिस समय उत्तराषाढ नक्षत्र में शनि, वृषराशि में गुरु तथा उत्तराफाल्गुनी में चन्द्रमा था, एवं शुक्रपक्ष था (अर्थात् फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा थी) उस समय पाण (पाराड्य) राष्ट्र के पाटलिग्राम मे इस शास्त्र का प्रणयन पहले सर्वनन्दी नामक मुनि ने किया।

श्लोकगत पाटलिग्राम शब्द के फुटनोट में जैनहितैषी भाग १३, पृष्ठ ५२६ में पण्डित नाथूरामजी प्रेमी ने पाटलिग्राम को पाटलिपुत्र मान कर लिखा है कि 'पाटलिपुत्र पटने का पुराना नाम है'। परन्तु वास्तव में यह पाटलिग्राम प्राचीन पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) न होकर प्राचीन पाराड्यदेशान्तर्गत वर्तमान कड्डलोर (Cuddalore) है।† इसे 'पेरियपुराण' आदि ग्रन्थों में तिप्पदिरिपुलियूर (Trippadiripuliyur) भी कहा गया है।

† "Some contributions of South India to Indian Culture" By Prof Krishna Swami Iyangar,

क्योंकि उल्लिखित द्वितीय श्लोक का यह स्पष्ट अर्थ है कि 'कांची के राजा सिंह-वर्मा के राज्यारोहण के बाइसवें संवत्सर और शक ३८० वें वर्ष में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ'। कांचीश राजा यह सिंहवर्मा पल्लववंश के तत्कालीन शासक हैं। अतः लोकविभाग का रचनास्थान प्राचीन पाटलिपुत्र अर्थात् वर्तमान पटना न होकर दक्षिण भारत का उक्त स्थान मानना ही सयुक्तिक है। दूसरी बात यह है कि उक्त श्लोक में जो 'पाणराष्ट्र' शब्द आया है उसको कितने ही विद्वान् अभी तक पाणा या बाणा राष्ट्र के रूप में ही मानते आ रहे हैं। किन्तु वास्तव में यह पाणा या बाणा राष्ट्र न हो कर 'पाण्ड्य राष्ट्र' ही होना चाहिये, जिसकी राजधानी सिंहवर्मा के काल में भी कांची नगरी ही रही। ऊपर दिये अन्त के तीसरे पद्य से सिद्ध होता है कि इस लोक-विभाग में अनुष्टुप् छन्द के हिसाब से १५३६ पद्य हैं। साथ ही साथ निम्नलिखित पद्य तथा उक्त प्रथम पद्य के अन्तिम पाद से यह भी ज्ञात होता है कि इसके मूल प्राकृत के रचयिता मुनि सर्वनन्दी हैं। सिंहनन्दी केवल इसके संस्कृत भाषान्तरकार हैं :—

> "भव्येभ्य: सुरमानुषोरुसदसि श्रीवर्द्धमानार्हता
> यत्प्रोक्तं जगतो विधानमखिलं ज्ञातं सुधर्मादिभि:।
> आचार्यावलिकागतं विरचितं तत्सिंहसूरर्षिणा
> भाषाया: परिवर्तनेन निपुणै: सम्मानितं साधुभि:॥

इस ग्रन्थ में जो शक ३८० [वि० सं० ५१२] रचनाकाल दिया गया है, वह मूल प्राकृत लोकविभाग का है, न कि इस सिंहनंदिकृत संस्कृत लोकविभाग का। संभव है कि इसका रचनाकाल या तो लिखा ही नहीं गया है या लेखकों के प्रमाद से छूट गया है। इस संस्कृत लोकविभाग में तिलोक-प्रज्ञप्ति और 'आदिपुराण' आदि के अतिरिक्त 'तिलोकसार' ग्रन्थ के भी उद्धरण मिलते हैं। इसलिये निर्विवाद सिद्ध होता है कि यह लोकविभाग विक्रमीय ग्यारहवीं शताब्दी के बाद का है। हाँ, इसका निश्चित समय अभी विचारणीय है।

उल्लिखित पंक्तियों का आशय यह हुआ कि उपलब्ध यह संस्कृत 'लोकविभाग' अधिक प्राचीन नहीं है। प्राचीनता से उसका इतना ही सम्बन्ध है कि यह शक संवत् ३८० [वि० सं० ५१२] के एक बहुत पुराने प्राकृत लोकविभाग का संस्कृत रूपान्तर है। परन्तु इस बात का निर्णय होना अभी बाकी है कि यह तिलोकसार से कितने समय पीछे बना। अगर इसके कर्ता श्रीसिंह सूरि जी के अन्य किसी ग्रन्थ का पता लगता तो उससे शायद इसका निर्णय हो जाता। मेरे जानते सिंहसूरि-नामक ग्रन्थकर्ता दो-तीन हुए हैं। यह सिंहसूरि उनमें से अन्यतम हैं या भिन्न हैं इसका भी निर्णय होना अवशिष्ट है।

प्रस्तुत लोकविभाग के कर्त्ता सिंहसूरि जी ने अपनी इस कृति में अपनी गुरुपरम्परा का कुछ भी परिचय नहीं दिया है।

इसमें सन्देह नहीं है कि यह लोकविभाग जैनभूगोल के उल्लेखनीय ग्रन्थों में से एक है। बल्कि संस्कृत साहित्य की दृष्टि से भी इसका महत्त्व कुछ कम नहीं है। क्योंकि यह ग्रन्थ अपनी सरलता एवं शब्द-सुन्दरता से रचयिता के संस्कृत-पाण्डित्य को अभिव्यक्त करने से बाज नहीं आता। किसी जैनप्रकाशन-संस्था को इसे प्रकाशित कर जैनभूगोल-संबंधी उलझनों को सुलझाने में सहायक बनना चाहिये।

---

## (३७) ग्रन्थ नं० २५२/ख

# श्रीपुराण

कर्त्ता—सकलकीर्त्ति

विषय—पुराण

भाषा—संस्कृत

*लम्बाई १३ इञ्च* | चौड़ाई ६ इञ्च | *पत्र संख्या ३८*

---

*प्रारम्भिक भाग—*

श्रीमते सकलज्ञानसाम्राज्यपदमीयुषे।
धर्मचक्रभृते भर्त्रे नमः संसारभीमुषे ॥१॥

पुराणं मुनिमानम्य जिनं वृषभमच्युतम्।
महतस्तत्पुराणस्य पीठिका व्याकरिष्यते ॥२॥

अनादिनिधनः कालो वर्तनालक्षणो मतः।
लोकमात्रः स सूक्ष्माणुपरिच्छिन्नप्रमाणकः ॥३॥

वर्णितो द्रव्यकालेन वर्तनालक्षणेन यः।
कालः पूर्वापरीभूतो व्यवहाराय कल्पते ॥४॥

उत्सर्पिण्यावसर्पिण्यौ द्वौ भेदौ तस्य कीर्तितौ।
उत्सर्पादवसर्पाच्च बलायुर्देहवर्ष्मणाम् ॥५॥

कोटीकोट्यो दशैकस्य प्रमा सागरसंख्यया।
शेषस्याप्येवमेवेष्टा तावुभौ कल्प इष्यते ॥६॥

× × ×

क्योंकि उल्लिखित द्वितीय श्लोक का यह स्पष्ट अर्थ है कि 'कांची के राजा सिंह वर्मा के राज्यारोहण के बाइसवें संवत्सर और शक ३८०वें वर्ष में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ'। कांचीश राजा यह सिंहवर्मा पल्लववंश के तत्कालीन शासक हैं अतः लोकविभाग का रचनास्थान प्राचीन पाटलिपुत्र अर्थात् वर्तमान पटना न होकर दक्षिण भारत का उक्त स्थान मानना ही सयुक्तिक है। दूसरी बात यह है कि उक्त श्लोक में जो 'पाणराष्ट्र' शब्द आया है उसको कितने ही विद्वान् अभी तक पाण या बाण राष्ट्र के रूप में ही मानते आ रहे हैं। किन्तु वास्तव में वह पाण या बाण राष्ट्र न हो कर 'पाराक्य राष्ट्र ही होना चाहिये जिसकी राजधानी सिंहवर्मा के काल में भी कांची नगरी ही रही। ऊपर दिये अन्त के तीसरे पद्य से सिद्ध होता है कि इस लोक विभाग में अनुष्टुप् छन्द के हिसाब से १५३६ पद्य हैं। साथ ही साथ निम्नलिखित पद्य तथा उक्त प्रथम पद्य के अन्तिम पाद से यह भी ज्ञात होता है कि इसके मूल प्राकृत के रचयिता मुनि सर्वनंदी हैं। सिंहनंदी केवल इसके संस्कृत भाषान्तरकार हैं —

> "भव्येभ्यः सुरमानुषोरुसदसि श्रीवर्द्धमानार्हता
> यत्प्रोक्तं जगतो विधानमखिलं ज्ञातं सुधर्मादिभिः।
> आचार्यावलिकागतं विरचितं तत्सिंहसूरर्षिणा
> भाषायाः परिवर्तनेन निपुणैः सम्मानितं साधुभिः ॥

इस ग्रन्थ में जो शक ३८० [वि० सं० ५१२] रचनाकाल दिया गया है, वह मूल प्राकृत लोकविभाग का है न कि इस सिंहनंदिकृत संस्कृत लोकविभाग का। संभव है कि इसका रचनाकाल या तो लिखा ही नहीं गया है या लेखकों के प्रमाद से छूट गया है। इस संस्कृत लोकविभाग में तिलोय-पण्णत्ति और 'आदिपुराण आदि के अतिरिक्त 'त्रिलोकसार' ग्रन्थ के भी उद्धरण मिलते हैं। इसलिये निर्विवाद सिद्ध होता है कि यह लोकविभाग विक्रमीय ग्यारहवीं शताब्दी के बाद का है। हाँ, इसका निश्चित समय अभी विचारणीय है।

उल्लिखित पंक्तियों का आशय यह हुआ कि उपलब्ध यह संस्कृत 'लोकविभाग' अधिक प्राचीन नहीं है। प्राचीनता से उसका इतना ही सम्बन्ध है कि वह शक संवत् ३८० [वि० सं० ५१२] के एक बहुत पुराने प्राकृत लोकविभाग का संस्कृत रूपान्तर है। परन्तु इस बात का निर्णय होना अभी बाकी है कि यह त्रिलोकसार से कितने समय पीछे बना। अगर इसके कर्त्ता श्रीसिंह सूरि जी के अन्य किसी ग्रन्थ का पता लगता तो उससे शायद इसका निर्णय हो जाता। मेरे जानते सिंहसूरि-नामक ग्रन्थकर्ता दो-तीन हुए हैं। यह सिंहसूरि उनमें से अन्यतम है या भिन्न है इसका भी निर्णय होना अवशिष्ट है।

प्रस्तुत लोकविभाग के कर्त्ता सिंहसूरि जी ने अपनी इस कृति में अपनी गुरुपरम्परा का कुछ भी परिचय नहीं दिया है।

इसमें सन्देह नहीं है कि यह लोकविभाग जैनभूगोल के उल्लेखनीय ग्रन्थों में से एक है। बल्कि संस्कृत साहित्य की दृष्टि से भी इसका महत्व कुछ कम नहीं है। क्योंकि यह ग्रन्थ अपनी सरलता एवं शब्द-सुन्दरता से रचयिता के संस्कृत-पाण्डित्य को अभिव्यक्त करने से बाज नहीं आता। किसी जैनप्रकाशन-संस्था को इसे प्रकाशित कर जैनभूगोल-संबंधी उलझनों को सुलझाने में सहायक बनना चाहिये।

---

(३७) ग्रन्थ नं० २५२/ख

# श्रीपुराण

कर्त्ता—सकलकीर्त्ति

---

विषय—पुराण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३ इन्च | चौडाई ९ इन्च | पत्र संख्या २८

---

प्रारम्भिक भाग—

श्रीमते सकलज्ञानसाम्राज्यपदमीयुषे।
धर्मचक्रभृते भर्त्रे नमः संसारभीमुषे ॥१॥
पुराणं मुनिमानम्य जिनं वृषभमच्युतम्।
महतस्तत्पुराणस्य पीठिका व्याकरिष्यते ॥२॥
अनादिनिधनः कालो वर्तनालक्षणो मतः।
लोकमात्रः स सूक्ष्माणुपरिच्छिन्नप्रमाणकः ॥३॥
वर्त्तितो द्रव्यकालेन वर्तनालक्षणेन यः।
कालः पूर्वापरीभूतो व्यवहाराय कल्प्यते ॥४॥
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ द्वौ भेदौ तस्य कीर्त्तितौ।
उत्सर्पादवसर्पाच्च बलायुर्देहवर्ष्मणाम् ॥५॥
कोटीकोट्यो दशैकस्य प्रमा सागरसंख्यया।
शेषस्याप्येवमेवेष्टा तावुभौ कल्प इष्यते ॥६॥

× × ×

मध्य भाग (परपृष्ठ १९, पंक्ति ११)

अथ कालागरूद्दामधूपधूमाधिवासिते ।
मणिप्रदीपिकोद्योतदूरीकृततमस्तरे ॥
वासगेहेऽन्यदा शिश्ये तल्पे मृदुनि हारिणि ।
प्रियास्तनतटस्पर्शसुखमीलितलोचनः ॥
तत्र वातायनद्वारपिधानाकृधूमके ।
केशसंस्कारधूपोद्यद्धूमेन सपामूर्च्छितौ ॥
विरुद्धोच्छ्वासदौस्थित्याक्रान्तौ किञ्चिदिवाकुलौ ।
दम्पती तौ निशामध्ये दीर्घनिद्रामुपेयतुः ॥
जम्बूद्वीपे महामेरोरुत्तरां दिशमाश्रिताः ।
सन्त्युत्तरकुरवो नाम स्वर्गश्रीपरिहासिनः ॥
नवमासं स्थिता गर्भे रत्नगर्भगृहोपमे ।
यत्र दम्पतितामेत्य जायन्ते दानिनो नराः ॥

× × ×

अंतिम भाग—

मनःपर्ययज्ञानमप्यस्य सद्यः समुत्पन्नमुत्केवलं चानु तस्मात् ।
तदैवामवद्रम्यता तादृशी सा विचित्रा गिरां निर्वृते प्रातिरत्र ॥
परिचितयतिहंसो धर्मवृष्टिं निषिंचन्
नभसि कृतनिवेशो निर्मलस्तुङ्गवृत्तिः ।
फलमधिकलमद्र्यं भव्यशस्येषु कुर्वन्
व्यहरदखिलदेशान्सारदेवास्तमेघः ॥
विहृत्य सुचिरं विनेयजनतोपकृत्स्वायुषो
मुहूर्तपरिमास्थितौ विहितसत्क्रियौ विच्युतौ ॥
तनुत्रितयबन्धनस्य गुणसारमूर्तिः स्फुर-
ज्जगत्त्रयशिखामणिः सुखनिधिः स्वधाम्नि स्थितः ॥
सर्वेऽपि ते वृषभसेनमुनीशमुख्याः
सख्यं गताः सकलजन्तुषु शान्तचित्ताः ।
कालक्रमेण यमशीलगुणाभिपूर्णा
निर्वाणमापुरमित गुणिनो गणीन्द्राः ॥

यो नाभेस्तनयोऽपि विश्वविदुषां पूज्य स्वयम्भूरिति
त्यक्ताशेषपरिग्रहोऽपि सकलं स्वामीति य श्रूयते।
मध्यस्थोऽपि विनेयसत्वसमितेरेवोपकारी मतो-
निर्दानोऽपि बुधरुपास्यचरणो य. सोऽस्तु व शान्तये॥

इस 'श्रीपुराण' के मंगलाचरण अथवा अन्तिम भाग आदि मे कहीं भी ग्रन्थकर्ता ने अपनी कुछ भी चर्चा नहीं की है। फिर भी यह ग्रन्थ वि० स० १४७६ अर्थात् १५वीं शताब्दी वाले सकलकीर्त्ति का माना जाता है। भट्टारक सकलकीर्त्ति जैनसाहित्यक्षेत्र म बड़े ही सफल लेखक माने गये हैं। बल्कि इनके प्रश्नोत्तरश्रावकाचारादि कुछ ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं। 'ज्ञानार्णव' की प्रशस्ति म एक जगह इनके सम्बन्ध म यों लिखा मिलता है—"भट्टारकपदारूढ सकलाद्यन्तकीर्तिभाक्। येन शास्त्राम्बुधि सम्यक् वर्धितो निजलीलया॥" इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि आप भट्टारकपदारूढ होते ही बड़ी आसानी से जैन साहित्य-भाण्डार को भरने लगे। 'प्रश्नोत्तरमाला' मे श्रीसकलभूषण ने इन्हें "पुराणमुख्योत्तम-शास्त्रकारी" इस विशेषण के द्वारा स्मरण किया है। ब्रह्मचारी जिनदास जी ने अपने 'पद्मपुराण' तथा 'हरिवंशपुराण' मे आपको "महाकवित्वादिकलाप्रवीण" कहा है। 'पाण्डव-पुराण' म भट्टारक शुभचन्द्र जी इनकी प्रशंसा म यो लिखते है कि "कीर्त्ति. कृता येन च मर्त्यलोके शास्त्रार्थकर्त्री सकला पवित्रा।" इसी प्रकार और भी बहुत से ग्रन्थप्रणेताओं ने सकलकीर्त्ति को महान् ग्रन्थकार होने को लिखा है। इन की लेखनी बहुमुखी रही, अत एव प्राय. प्रत्येक विषय पर इनकी रचना उपलब्ध होती है। इस नाम के एक दूसरे भी भट्टारक हुए है, जो कि सुरेन्द्रकीर्त्ति भट्टारक के पट्ट पर आसीन हुए थे। इनका समय उन्नीसवीं शताब्दी है। इनका उल्लेख "जैनहितैषी" भाग ११, अङ्क १२ मे मिलता है। पर इस द्वितीय सकलकीर्त्ति जी के पाण्डित्य-द्योतक कोई प्रमाण दृष्टिगोचर नहीं होता है। इसीलिये इनकी इतनी प्रसिद्धि नहीं है।

प्रथम सकलकीर्त्ति जी पद्मनन्दी के पट्ट पर आरूढ हुए थे। इनके बाद क्रमशः इस पट्ट पर श्रीभुवनकीर्त्ति और श्रीज्ञानभूषण पट्टाधिकारी बने। कामराजकृत 'जयपुराण' की प्रशस्ति मे इस सकलकीर्त्ति के सम्बन्ध म निम्नलिखित वाक्य दिये गये है:—

"आचार्य कुन्दकुन्दाख्यस्तस्मादनुक्रमादभूत्।
स सकलकीर्तियोगीशो ज्ञानी भट्टारकेश्वर॥
येनोद्धृतो गतो धर्मो गुर्जर वाग्वरादिके।
निर्ग्रन्थेन कवित्वादिगुणानेवार्हता पुरा॥
तस्माद्भुवनकीर्त्ति श्रीज्ञानभूषणयोगिराट्।
विजयकीर्तयोऽभूवन् भट्टारकपदेशिन.॥"

इन पद्यों से ज्ञात होता है कि सकलकीर्ति जी ने गुजरात और वागड आदि देशों में जैनधर्म का अच्छा प्रचार किया था।

प्रस्तुत ग्रंथ का मंगलाचरण श्रीमद्भगवज्जिनसेनाचार्य कृत महापुराण का ज्यों का त्यों है। इससे अनुमान होता है कि श्रीपुराण का आदर्श महापुराण ही है। इस मंगलाचरण के प्रकृत रहस्य का पता लगाने के लिये श्रीपुराण का साद्यन्त सूक्ष्मदृष्टि से अध्ययन करने की आवश्यकता है। इसमें प्रथम तीर्थङ्कर श्रीआदिनाथ का चरित्र चित्रित है इसीलिये लोग इसे आदिपुराण भी कहते हैं। श्रीपुराण की रचनाशैली सरल, सुन्दर एवं भावपूर्ण है।

---

(३८) ग्रन्थ नं० २४३/ख

## दशभक्त्यादि महाशास्त्र

कर्त्ता—मुनीन्द्र वर्द्धमान

विषय—भक्ति आदि

भाषा—संस्कृत

लंबाई ८॥ इञ्च चौड़ाई ६॥। इञ्च पत्रसंख्या १२२

प्रारम्भिक भाग—

नमः श्रीवर्द्धमानाय चिद्रूपाय स्वयम्भुवे ।
सहजात्मप्रकाशाय समस्तसारभेदिने ॥१॥
रागद्वेषसमुज्झितस्य समता भूतेषु सत्त्वाश्रय
सर्वेषु प्रथमाजनेषु विरतिः कायप्रयत्नानि यदा ।
सद्भक्तिर्जिनसिद्धशास्त्रमुनिषु प्रख्याततयोगाद्धति
स्तत्सामायिकसंयुते यतिजने संजायते सर्वदा ॥२॥
नामादि षड्विधं प्रोक्तं रागद्वेषादिकारणम् ।
तद्वर्जनं कृतं मे स्यात् सामायिकमनुत्तरम् ॥३॥
सम्यक्त्वज्ञानसंयुक्तसंयमाद्यतपोयुतः ।
परिणामः कृतो मे स्यात् सर्वसावद्यवर्जनः ॥४॥

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ८७ पंक्ति ६)—

यंत्रं सद्दशधर्मलक्षणयुतं ख्यातं जगन्मङ्गलम्
विद्वल्लोकसमर्चितं सुशरणं संसारविध्वंसकम् ।
जीवन्मुक्तिसुखप्रदं निरुपमं क्षान्त्यादिशब्दोज्ज्वलम्
भक्त्याहूय सुपीठिकोपरि तले संस्थाप्य चाराधये ॥ १ ॥
जलगन्धसदक्षकुसुमैश्चरुप्रदीपैः सुधूपफलनिकरैः ।
संपूजयामि यंत्रं क्षान्त्यादिपदांकितं भक्त्या ॥ २ ॥
गंगाद्युद्भवनीरेण कंजोत्पलसुगन्धिना ।
क्षान्त्यादिपदसंयुक्त यत्रं प्रक्षालयाम्यहम् ॥ ३ ॥
नारिकेलोदकैः स्वच्छै सर्वहृत्तापहारिभि ।
क्षान्त्यादिपदसंशोभि यत्र संस्नापये मुदा ॥ ४ ॥
कदलीकृतपीयूषैर्धवलेक्षुरसै शुभै ।
क्षान्त्यादिपदसंशोभि यंत्रं संस्नापये मुदा ॥ ५ ॥
सन्तप्तकनकद्रावसंकाशै पुष्कलैर्घृतैः ।
क्षान्त्यादिपदसंशोभि यत्रं संस्नापये मुदा ॥ ६ ॥
पयोभि पूर्णिमाचन्द्रचन्द्रिकाविशदैरलम्
क्षान्त्यादिपदसंशोभि यन्त्र संस्नापये मुदा ॥ ७ ॥
सतानिकांचितैः स्निग्धैर्दधिभि सारगन्धिभिः
क्षान्त्यादिपदसंशोभि यत्र संस्नापये मुदा ॥ ८ ॥
कुम्भैश्चातुष्टयै शुभै स्रग्मालारंजिताननै ।
स्नापये यंत्रममलं क्षान्त्यादिपदभूषितम् ॥ ९ ॥
वासनाप्रकृतिगन्धबन्धुरैर्वारिभिर्मलयशोपनोदिभिः ।
क्षान्तिमुख्यपदराजिरंजित स्नापये प्रविपुल गुरुयंत्रम् ॥ १० ॥
मध्येकर्णिकमम्बुजस्य गुरवः पचापि पत्रयकिते
यस्य श्रीदलके क्षमादिपदयुक्धर्मा सुधर्मप्रदाः
तिष्ठन्ते मुनिराजवृन्दमहितं चूर्णैश्चित पञ्चभिः
तद्यन्त्रं परिपूर्णलक्षणयुत भक्त्या समाराधये ॥ ११ ॥

× × ×

*अन्तिम भाग :—*

बलात्कारगणाम्भोजभास्करस्य महाद्युते ।
श्रीमद्देवेन्द्रकीर्त्याख्यभट्टारकशिरोमणेः ॥ १ ॥
शिष्येण ज्ञातशास्त्रार्थस्वरूपेण सुधीमता ।
जिनेन्द्रचरणद्वन्द्वस्मरणाधीनचेतसा ॥ २ ॥
वर्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दाग्रबन्धुना ।
कथितं दशभक्त्यादिशासनं भव्यसौख्यदम् ॥ ३ ॥
शाके वेदखराब्धिचन्द्रकलिते संवत्सरे श्रीप्लवे
सिंहश्रावणिके प्रभाकरदिने कृष्णाष्टमीवासरे ।
रोहिण्यां दशभक्तिपूर्वकमहाशास्त्रं पदार्थोज्ज्वलम्
विद्यानन्दमुनिस्तुतं व्यरचयत् सद्वर्धमानो मुनिः ॥ ४ ॥
विद्वत्कवीन्द्रमुनिभूपतिसज्जनानां यावत्समस्ति रसना पुरुषोत्तमानाम् ।
श्रीवर्द्धमानमुनिराजकृतिः कृतार्था तिष्ठत्वरं जगति तावदनग्धशक्तिः ॥५॥
शलाकापुरुषान्वन्दे सपकममहीभवान् ।
विद्यानन्दपदाधीशान् कृष्णादेवेन्द्रवन्दितान् ॥ ६ ॥
जैना श्रीवसुधेश्वरा नयविदोऽमात्याः सदा सज्जनाः
विद्वांसः कवयो जयन्तु गमकाः सद्वादिनः श्रावकाः ।
विप्राः श्रीमुनिवल्लभा श्रुतगुणाधारा मनोजेश्वराः
कान्ताः पुत्रसमन्विता जिनगृहा बिम्बाश्च निर्मापिताः ॥ ७ ॥
वर्धमानगुणाधारं शब्दार्थालङ्कृतिस्फुटम् ।
महाशास्त्रमिदं पूतं पठतां मङ्गलं सदा ॥ ८ ॥
व्याख्यातृणां लेखकानां श्रोतॄणां धृतधारिणाम् ।
दयाद्यविशिष्टानां गुणपक्षानुरागिणाम्
मुनिवृन्दारकाणां च प्रदेयान्मुक्तिसम्पदम् ॥ ९ ॥
वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दाग्रबन्धुना ।
लिखितं दशभक्त्यादिदर्शनं जनतायकरम् ॥ १० ॥

इस ग्रन्थ का नाम 'दशभक्त्यादिमहाशास्त्र' है। इसके शुरू में सामायिकपूर्वक सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्र एवं योगभक्ति आदि प्रसिद्ध दशभक्तियाँ अङ्कित हैं। ये भक्तियाँ मुनीन्द्र वर्द्धमान जी की अपनी रचना है। साहित्य की दृष्टि से भी रचना बुरी नहीं है। बल्कि कहीं-कहीं के पद्य बड़े ही श्रुति-मधुर हैं। हाँ, प्रति अशुद्ध होने से जहाँ-तहाँ त्रुटि

मे शैथिल्य का भ्रम होना स्वाभाविक है। कुछ भी हो ग्रन्थकर्त्ता संस्कृतभाषा के मर्मज्ञ थे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। सर्व-प्रथम स्थालीपुलाकन्याय से ग्रन्थगत विषयों पर एक वार सरसरी नजर डालना मैं आवश्यक समझता हूँ।

प्रस्तुत कृति में भक्तियों के अतिरिक्त स्तोत्र, पूजन, गुर्वावली आदि भक्त्यतिरिक्त विषय भी गर्भित हैं, इसीलिये ज्ञात होता है कि ग्रन्थकर्त्ता ने इसका नाम 'दशभक्त्यादिमहाशास्त्र' रक्खा है। क्योंकि 'आदि' शब्द मे वहुत वातों का समावेश हो जाता है। 'आचार्य-भक्ति' में प्रत्येक तीर्थङ्कर के गणधरों की सख्यादि भी कवि वर्द्धमान जी ने दे डाली है। साथ ही साथ इस 'आचार्यभक्ति' के अन्त मे प्रतिपादित "वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यवन्धुना। आचार्यभक्तिः कथिता जिनसेनार्यसम्मता॥" इस पद्य से यह 'आचार्य-भक्ति' जिन-सेनाचार्यसम्मत ज्ञात होती है। इसे जिनसेनकृत कृतियों से मिलान करने से यह वात स्पष्ट हो सकती है। 'निर्वाण-भक्ति' के अन्त मे श्रीरामचन्द्रजीका सम्मेदशिखर से मुक्त होना वर्णित है। यह मत प्रचलित 'निर्वाण-काण्ड' के प्रतिकूल है। 'उत्तरपुराण' आदि ही इस मत का आधार मालूम होता है। 'चैत्यभक्ति' के प्रकरण में ग्रन्थ-रचयिता ने अकृत्रिम जिनालयों के सिवाय कृत्रिम जिनालयों में भल्लातकी-पुर—गेरुसोप्पेस्थित श्रीपार्श्वनाथ, सगीतपुर—हाडुहल्लिस्थित श्रीचन्द्रप्रभ, भट्कलस्थ श्रीपार्श्वनाथ, वसुपुरस्थ श्रीआदिनाथ, वरांगस्थित श्रीनेमिनाथ, कार्कलस्थित श्रीगोम्म-टेश्वर, वेणुपुर—मूडविद्रीस्थित श्रीचन्द्रनाथ, श्रवणवेलोलस्थ श्रीगोम्मटेश्वर, कनकाचलस्थ श्रीपार्श्वनाथ,* होय्सलवशराजार्च्चित (विजय) पार्श्वनाथ और वर्द्धमान,† कोपणस्थ (सागरदत्तपूजित-) श्रीचन्द्रप्रभ और (लक्ष्मेश्वरपूष्पतिदक्षिणावर्त्तशखोत्थ-हेमदेवार्यसस्तुत-) श्रीचन्द्रप्रभ आदि जिनमन्दिरों की स्तुति की है। एक जमाने मे उल्लिखित गेरुसोप्पे, हाडुहल्लि, भट्कळ, कनकाचल या कनकगिरि और कोपण आदि स्थान अपने सर्वोच्च उन्नति के शिखर पर आरूढ हो जैनधर्म के केन्द्र एव लीलाभूमि वने हुए थे। वल्कि उन दिनों गेरुसोप्पे, भट्कळ आदि कई स्थानो को जैनराजधानी के रूप में ही रहने का सौभाग्य प्राप्त था। इन क्षेत्रों मे आज भी यत्र-तत्र लुप्त-प्राय प्राचीन जैनकीर्त्ति के स्मृति-चिह्न विखरे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। वह जैनप्रतापादित्य का मध्याह्नकाल था। खैर, आज भी उक्त क्षेत्रों पर वर्द्धमान जी के द्वारा निर्दिष्ट उक्त जिनचैत्यालय प्राय उन्हीं नामों से जीर्ण-शीर्ण दशा में वर्तमान हैं। गेरुसोप्पे, भट्कळ, हाडुहल्लि इन स्थानो के विशेष परिचय के लिये उत्तर कन्नड जिला के गजेटियरों का अवलोकन करना चाहिये। कोपणस्थ चन्द्रप्रभ या चन्द्रनाथ-जिनालय आज भी उसी नाम से विश्रुत है। वल्कि इसका उल्लेख Epigraphia Indica,

---

* इन्हें 'नागार्जुनप्रतिष्ठापित' एव 'धर्मचन्द्रमुनिवन्दित' वतलाया है। यह नागार्जुन श्रीपूज्यपाद जी के भांजे हों।

† ये समवत हळेवीडु या द्वारसमुद्र के मन्दिर हैं।

Part V January 1931, P 94 में प्रकाशित केळदिय सदाशिवनायक के एक ताम्र शासन में भी मिलता है। उसका सारांश यों है—"इस (धर्म) के प्रतिकूल चलनेवाला जैनी बेल्गोलस्थ गुम्मटनाथ, कोपणस्थ चन्द्रनाथ ऊर्जयन्तगिरिस्थ नेमिनाथ आदि जिनप्रतिमाओं को फोड़ने के पाप भागी होंगे।

अस्तु अब पाठकों का ध्यान प्रस्तुत विषय पर आकृष्ट करता हूं। कवि वर्द्धमान जी के द्वारा प्रस्तुत कृति के क्रमश पृष्ठ ३५ एवं ५७ पर दिये गये निम्न लिखित कुछ पद्य अवश्य अवलोकनीय तथा विचारणीय हैं —

"मातर्यद्दशास्त्रमत्यद्भुतपरमतमिथ्यातमीमांसित तद्
भाष्य भट्टाकलङ्कप्रकटितविभवं रामसेनीयमुद्धम्।
सूत्र तत्त्वार्थसत्र स्फुरति जिनकथाचारशास्त्रं त्रिलोक
प्रज्ञप्तिमें हृदीदं तदिह बधिरतो यतिकमप्यस्तु किं मे ॥'

× × ×

"अनन्त जिननिर्याणौ मुनिसुव्रतज मनि ॥
उपदेशश्च नास्माक जिनसेनार्यशासने।
अमावास्यामपरासौ चानन्तजिज्जिननिर्वृ ति ॥
सजाताप्यनगारकेवलिविभो श्रीरामचन्द्रस्य वै
श्रीदफाल्गुनशुक्लपक्षविलसच्चातुर्दशीवासरे।
पूर्वाह्णे कुलशैलमस्तकमणौ सम्मेदगिर्यग्रकौ
शास्ता निर्वृ तिपत्र लक्ष्मणमते सीतावनीश्रीपते' ॥

आगे ५६ के पूर्व पृष्ठ से क्रमश किसी किसी की कुछ कृतियों का उल्लेख करते हुए वर्द्धमान जी ने भद्रबाहु, कुन्दकुन्द, समन्तभद्र अकलङ्क, विद्यानन्दी माणिक्यनन्दी प्रभाचन्द्र* पूज्यपाद (जिनदत्तरायप्रणात) सिद्धांतकीर्त्ति वर्द्धमान† वासुपूज्यव्रती, (विष्णुवर्द्धनपूजित) श्रीपाल पात्रकेशरी नेमिचन्द्र (चामुण्डरायपादार्च्चितपादपद्मसैद्धान्तिकसार्वभौम) माधवचन्द्र (केशवार्यस्तुत्य) अभयचन्द्र जयकीर्त्ति, जिनचन्द्र, इन्द्रनन्दी वसन्त कीर्त्ति, विशालकीर्त्ति शुभकीर्त्ति, पद्मनन्दी माघनन्दी कर्णसिंहनन्दी पद्मप्रभ वसुनन्दी, मेघचन्द्र वीरनन्दी, धनञ्जय वादिराज, धर्मभूषण (विद्यानंदस्वामिसूनु) सिंहकीर्त्ति

*इन्हें अमोघवृत्तिन्यास के रचयिता लिखा है, परन्तु संभवत न्यास के प्रणेता प्रभाचन्द्र इनसे भिन्न हैं। देखें—'दिगम्बर जैनग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ'।

†इन्हें होय्सळ राज्यसंस्थापक एवं उस राजवंश को व्रत और विद्या प्रदान करने वाला लिखा है।

मेरुनन्दी, वर्द्धमान, प्रभाचन्द्र, अमरकीर्त्ति एवं विशालकीर्त्ति इन ग्रन्थकर्त्ताओं का स्मरण किया है। इसी प्रकरण मे आगे भट्टारक सिंहकीर्त्ति, विशालकीर्त्ति, विद्यानंद, देवेन्द्रकीर्त्ति तथा अपनी वडी प्रशंसा की है। उन प्रशंसात्मक पद्यों में से कुछ पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं जिनसे कुछ ऐतिहासिक परिचय प्राप्त हो :—

"राजाधिराजपरमेश्वरदेवरायभूपालमौलिलसदंघ्रिसरोजयुग्म ।
श्रीवर्द्धमानमुनिवल्लभमौढ्यमुख्य श्रीधर्मभूषणसुखी जयति क्षमाढ्य ॥
विद्यानन्दस्वामिन सूनुवर्यं सजातः स सिंहकीर्त्तिव्रतीन्द्र ।
ख्यात श्रीमान् पूर्णचारित्रगात्रो दानस्वर्भूधेनुमन्दारदेश्य ॥
वाभात्यश्वपतेर्दिनेशतनयो गगाढ्यदेशावृत
श्रीमद्दिल्लिपुरेड्महम्मदसुरित्राणस्य माराकृते ।
निर्जित्याशु सभावनौ जितगुरुवौद्धादि + + + + व्रजम् ।
श्रीभट्टारकसिंहकीर्त्तिमुनिराट् नाट्यैकविद्यागुरु ॥
विशालकीर्त्तिवादीन्द्र परमागमकोविद ।
भट्टारको वलात्कारगणाधीशो महातपा ॥
सिकन्दरसुरित्राणप्राप्तसत्कारवैभव ।
महावादिजयोद्भूतयशोभूषितविष्टप ॥
श्रीविरूपाक्षरायस्य श्रीविद्यानगरेशिन ।
सभायां वादिसन्दोह निर्जित्य जयपत्रकम् ॥
स्वीकृत्य च महाप्रज्ञावलेन वुधभूभुजे ।
मत सरस्वतीमूलशासन वा सदोज्ज्वलम् ॥
देवप्पदण्डनाथस्य नगरे श्रीमदारगे ।
प्रकाशितमहाजैनधर्मोऽभाद्भूसुरार्च्चित ॥
विशालकीर्त्ते श्रीविद्यानन्दस्वामीतिशब्दित ।
अभवत्तनय साधुर्मल्लिरायनृपार्च्चित ॥
आगमत्रयसर्वज्ञ कवित्वगुणभूषित ।
नानोपन्यासकुशलो वादिमेघमहामरुत् ॥
स्वामिविद्यादिनन्दस्य भारतीभाललोचनम् ।
सूनुर्देवेन्द्रकीर्त्यार्यो जातो भट्टारकाग्रणी ॥"

(पूर्व पृष्ठ ६१ से पूर्व पृष्ठ ६२)

"कावेरीसरिदम्बुवेष्टनलसच्छ्रीरंगसत्पत्तने
लक्ष्मीवल्लभरंगनाथमहिते श्रीवीरपृथ्वीपते: ।
आस्थाने विबुधप्रसङ्ग विजयवाग्भूतैर्विजित्यावनौ
विद्यानन्दमुनीश्वरो विजयते साहित्यचूडामणि: ॥
सांख्यं सख्यातमत्र कपिलकुलमलं हीनकापालिकाख्यम्
यौगं चोद्वेगयेत्र कल्पयति अलिवैशेषिक घोषिताङ्कम् ।
चार्वाक खर्वयत्र भूपसदसि सदा बुद्धमप्यबुद्धम्
भाट्ट स्पष्ट चितेने बुधवर भवतो वाग्वधूटी मुनीन्द्र ॥"

( पर पृष्ठ ६६ )

'वीरश्रीवरदेवरायनृपते' सद्भागिनेयेन वै
पद्मांबाकलगर्भवार्धिविधुना राजेन्द्रवन्द्यांध्रिणा ।
श्रीमत्सालुवकृष्णदेवधरणीकान्तेन भक्त्यार्चितो
विद्यानन्दमुनीश्वरो विजयते स्याद्वादविद्यापति: ॥

× × × ×

यो विद्यानगरीपुरीशविजयश्रीकृष्णरायप्रभो
रास्थाने विदुषां गणं समजयत्पञ्चाननो वा गजम् ।
सद्वाग्भिर्नखरैरुदात्तविमलज्ञानाय तस्मै नमो-
विद्यानन्दबुधेश्वराय जगति प्रख्यातसत्कीर्तये ॥

× × ×

विद्यानन्दस्वामिनोऽभूत् सधर्मा विख्यातोऽयं नेमिचन्द्रो मुनीन्द्र: ।
भव्यव्राताम्भोजविकासकारी शास्त्राम्भोराशिसंवृद्धिकारी ॥
पोंबुच्चपार्श्वनाथस्य वसतीं श्रीजिनभूमिकाम् ।
कृत्वा प्रतिष्ठां महतीं सन्तनोतिस्म भक्तित: ॥
विद्यानन्दस्वामिन: पुण्यमूर्तेर्जीयात्सूनु: श्रीविशालादिकीर्ति: ।
विद्वद्वन्द्य: सर्वशास्त्रावतारो माद्यद्वादीभेन्द्रसंघातसिंह: " ॥

(पूर्व-पर पृष्ठ ६८)

"जीयादमरकीर्त्याख्यभट्टारकशिरोमणि: ।
विशालकीर्तियोगीन्द्रसधर्मा शास्त्रकोविद: ॥
अमरकीर्तिमुनिर्विमलाशय: कुसुमचापमदाचलवज्रभृत् ।
जिनमताम्बरतारकमाश्च यो जयति निर्मलधर्मगुणाश्रय: ॥

विद्यानन्दार्य्यतनयो भाति शास्त्रधुरन्धरः ।
वादिराजशिरोरत्नं विद्यानन्दमुनीश्वर ॥
विशालकीर्त्तिमुनिराट्पट्टोदयमहीभृत ।
देवेन्द्रकीर्त्तियोगीन्द्रो वालार्क इव भासते ॥
श्रीभैरवेन्द्रवंशाब्धिपारब्ध्यराजसमर्च्चित ।
देवेन्द्रकीर्त्तियोगीन्द्रो विद्यानन्दमहोदयः ॥
देवेन्द्रकीर्त्तिः सिद्धार्थस्तद्वाणी प्रियकारिणी ।
धीमांस्तदुदितो वर्णी वर्द्धमानो न किं भवेत् ॥
वर्द्धमानो बुधाराध्यो नवमश्रावकाग्रणीः ।
शुद्धदृग्बोधचारित्रो जिनेनो जयतात् भुवि ॥
कर्णोत्तंसितपारिजातकलिकासौरभ्यसौख्यासिकी
भारत्या शरदिन्दुनि स्रुतसुधासारासनाधींसिनी ।
नृत्यद्धूर्जटिजाटकोटितटिनी कल्लोलसंलापिनी
जेजीयाद्भुवि वर्द्धमानसुखिन शास्त्रार्थवाग्वैखरी ॥
निर्मन्नात्मनिबन्धनोपकरणो निर्वाणवांछान्वितो-
बाह्यार्थावगमाभिलापरहितो दूरीकृतोत्कल्पन ।
स्वच्छन्दस्ववशोपसाधितमना भद्रांगलक्ष्मापरम्
क्षित्यां मत्तमहाकरीव जयति श्रीवर्द्धमानो मुनि ॥
ख्यात श्रीवर्द्धमानोऽभाद्गीतससारविभ्रम ।
ज्ञातानुयोगशास्त्रार्थो जातरूपादिनिस्पृह ॥
भाति श्रीवर्द्धमानोऽसौ चूतशायकसूदनः ।
नूतसद्गुणसन्तानप्पूतविद्वज्जनामति ॥
देवेन्द्रकीर्त्तियोगीन्द्रचरणाम्बुरुहद्वयम् ।
मन्मानसे सदा स्थेयात् विबुधभ्रमराश्रयम् ॥
देवेन्द्रकीर्त्तिमुनिराजपदाम्बुरेणुर्दारिद्र्यभूतनिवहस्य सदा बुधानाम् ।
उच्चाटनप्रवणचूर्णदशां समग्रां लक्ष्मीवशीकरणचूर्णदशां च याति "॥

× × × ×

"देवेन्द्रकीर्त्तिमुनिराजतनूभवेन श्रीवर्द्धमानमुनिना विदितानि भान्ति ।
पद्यानि सद्गुणयुतानि महोज्ज्वलानि विद्वत्कवीन्द्रगलकर्णविभूषणानि ॥
वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना ।
देवेन्द्रकीर्त्तिमहिता निर्मिता गुरुसन्ततिः ॥"

( पर पृष्ठ ६९ से ७१ पर पृष्ठ )

इसके आगे पत्र पृष्ठ ७१ पंक्ति ३ से फिर कन्नडभाषा में विद्यानन्द का स्तुति-रूप में स्मरण किया गया है। विद्यानन्द जी का यह स्तुतिरूप स्मरण वर्द्धमान जी के द्वारा लिखे गये नगरताल्लुक के ४६वें शिलालेखान्तर्गत स्तुति का ही प्रतिरूप है। बल्कि इस शिलालेख के अन्यान्य पद्य भी यत्र-तत्र इस ग्रन्थ में उद्धृत किये गये हैं। उक्त स्तुतिरूप स्मरण में विद्यानंद ने नजराय शहर के नंजिदेवराज सातवेन्द्रराज केशरि विक्रम, साल्वमल्लिराय, गुरुनृपाल साल्वदेवराय नगरिराज्य के राजा, बिलिगे के नरसिंहराज, कारकल के भैरवराज नरसिंहकुमार कृष्णराज इन की सभाओं में और इसी प्रकार श्रीरंगपट्टण, बिदिरे, कोपण, बेळ्गोळ और गेरुसोप्पे में वादिजनों का पराजय किया था, इसी का उल्लेख है। स्वर्गीय आर० नरसिंहाचार्य का अनुमान है कि विद्यानन्द जी भल्लातकीपुर अर्थात् गेरुसोप्पे के रहनेवाले थे और इन्होंने कन्नड भाषा में काव्यसार के अतिरिक्त एक और ग्रन्थ रचा था जिसका समर्थन नगरताल्लुक के उक्त शिलाशासनगत "अर्थवयेप्तिवशद्धथा। कर्णा पमगुरुनृपालनास्थानदोळे। कर्णाटकृतकृतिय। वर्णिसि जसवडेदे वादिविद्यानन्दा॥" इस पद्य से होता है। इस शिलालेख से यह भी अवगत होता है कि देवराय के भागिनेय एवं पद्माम्बापुत्र साल्व कृष्णदेवराय के द्वारा आप सम्मानित हुए थे। बल्कि एतद्विषयक पद्य ऊपर उद्धृत किया जा चुका भी है। साथ ही साथ इस शिलालेख में इनकी वंश-परम्परा यों दी गयी है। विद्यानन्द इनका पुत्र विशालकीर्ति विशालकीर्ति का पुत्र देवेन्द्रकीर्ति और इनके पुत्र वर्द्धमान। यही वर्द्धमान प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता हैं।

एक बात यह है कि आर० नरसिंहाचार्य जी ने विद्यानन्द का समय विजयनगर के शासक नरसिंह के पुत्र उसी नगरताल्लुक के शिलालेख में अङ्कित कृष्णदेवराय के काल के आधार पर ई० सन् १५३३ अनुमान किया है। परन्तु इसी प्रस्तुत ग्रन्थगत स्तुति में प्रतिपादित 'शाके वह्निखराब्धिचन्द्रकलिते संवत्सरे शार्वरे। शुद्धश्रावणभाक्कृतान्तधरणीतुर्मैत्रमेये रवौ॥ कर्किस्थे सगुरौ जिनस्मरणतो वादीन्द्रवृन्दार्चित। विद्यानन्दमुनीश्वरः स गतवान् स्वर्गं चिदानन्दक॥" इस पद्य से शालिवाहन शक १४६३ ई० सन् १५४१ में विद्यानन्द का स्वर्गस्थ होना स्पष्ट सिद्ध होता है। अस्तु, इनके विषय में आगे कुछ विशेष प्रकाश डालना मुझे इष्ट है।।

आगे पत्र पृष्ठ ८० से पत्र पृष्ठ ८४ तक नन्दिसंघ के आचार्यों की नामावली यों दी गयी है:—

धरसेन, समन्तभद्र, आर्यसेन अजितसेन, वीरसेन, जिनसेन, वादिराज, गुणभद्र*

*—इन्हें 'दशरथमुनिपति तनय' लिखा है।

लोकसेन, आशाधर,[1] कमलभद्र[2], नरेन्द्रसेन, धर्मसेन, रविषेण, कनकसेन, दयापाल, रामसेन[3], माधवसेन, लक्ष्मीसेन[4], जयसेन, नागसेन, मतिसागर[5], रामसेन, सोमसेन। मुनीन्द्र वर्द्धमान जी ने अपने को भी इस नन्दिसंघ को परम्परा में वतलाया है। उल्लिखित गुर्वावली का अन्तिम पद्य यह है—"वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्द्यार्यवन्धुना। जिनश्रीनन्दिषेणोत्थमुन्यादिस्तवन कृतम्" ॥ इन पद्य से कवि वर्द्धमान जी का यह अभिप्राय ज्ञात होता है कि नन्दिसंघ की उत्पत्ति नन्दिषेणसे हुई है। पर अन्यत्र माघनन्दी से मानी गयी है[6]।

आगे पूर्व पृष्ठ ९० के अन्त से ग्रन्थकर्त्ता ने भट्टाकलङ्क की वंश-परम्परा यों वतलायी है—

कुन्दकुन्द, विजयकीर्त्ति, इनका पुत्र श्रुतकीर्त्ति,* श्रुतकीर्त्ति का पुत्र विजयकीर्त्ति, इनका पुत्र पद्मप्रभ, पद्मप्रभ का पुत्र भट्टाकलङ्क जिनका अपर नाम चन्द्रप्रभ देव भी विख्यात था। इसके वाद इन्हीं अकलङ्क, विजयकीर्त्ति आदि की स्तुति दी है। उनमें से कुछ इतिहासपरक पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं —

"श्रीमन्मादनयेल्लपत्तितिपतेः सत्पट्टदत्तावलः
सर्वास्याशु परीत्यय मदकरो भक्त्या च वकापुरे।
पद्मास्य शर्ममेयिवान जिनपतिध्यानैकतानोऽवना
स श्रीमानकलङ्कयोगितिलको रेजे नृपालार्च्चितः"॥

(पर पृष्ठ ९१)

"श्रीदेवरायनृपशेखरवन्द्यपाद स्याद्वादशास्त्रजनितामलहृत्प्रमोदः।
भट्टाकलङ्कमुनिपो जनसाधुवादो वाभाति भव्यजनताकृतसत्प्रसादः॥
तस्याकलङ्कदेवस्य सधर्माण तपोगुणा।
चन्द्रप्रभादिमुनय सजातास्साधुवन्दिताः॥
श्रीचन्द्रप्रभदेवसेवनपर शब्दाम्बुधिं गाहते
श्रीचन्द्रप्रभदेवसस्तवरत·तर्कामृत सेवते।

---

१—इन्हें 'चेलविसृष्टशरीर' (?) 'मालवपतिवन्द्य' एवं 'सूरि'(?) लिखा है। पर इनको मुनि एवं सूरि लिखना भ्रामक है।

२—इन्हे 'काशीपतिनत' लिखा है।

३—इन्हें योगशास्त्र का प्रणेता वतलाया है।

४—इन्हें पेनगोंडे के 'नरसिंहरायसेवित' लिखा है।

५—इन्हें मालवेन्द्र की सभा में बौद्धों को पराजित करनेवाला और 'पैगुद्दीपादिवन्द्यपादाम्भोज' लिखा है।

६—देखें—'जैनसिद्धान्तभास्कर' भाग १, कि० ४।

* इन्हे त्रैविद्यचक्रेश्वर' एवं 'साल्वेन्द्रावनिपालपूजितपद' लिखा है।

श्रीचन्द्रप्रभदेवसन्नतिमतिः पूज्यत्वमालम्बते
श्रीचन्द्रप्रभदेवसंस्तुतिमतिः पुण्यप्रजे वर्तते ॥"

(पूर्व पृष्ठ ९२)

"स जयति जयकीर्तिर्जैनदेशीयसूरिर्-
जिनपदकजभृङ्गस्त्यक्तसंसारसङ्गः ।
सुचरितयतिभद्रः सर्वविद्याधिचन्द्रः
सकलगुणसमुद्रः पुष्पकोदण्डरुद्रः ॥
मान्यक्षेत्रकलं पुरं जिनगृहैर्विभ्राजितं वाहुना ।
श्रीमत्सालुवदेवरायनृपतेर्भूनाभिजालेपिना ।
नौद्रोर्वीनिचिताग्रिमण्डितमिदं सपन्नितं संपदा
निर्धूताखिलभगजं मनिलयं देशेऽभवत्तौलवे ॥
तत्र भट्टकले श्रीमानकलङ्कमुनीश्वरः ।
अतिप्रबुद्धव्यस वीरराजीववनभास्करः ॥
शरत्कालमिवात्मानं क्षीणवर्षं विलोक्य च ।
मतिं प्रायोपगमने कृतवान्वस्तुतत्त्ववित् ॥
सल्लेखनापरः पश्चाच्चतुस्सङ्घसमन्वितः ।
श्रीमत्पञ्चमहाशब्द स्मरन्प्राणान् मुमोच सः ॥
शाके सप्तशराम्बुधीन्दुकलिते संवत्सरे श्रीजये
मासे चाश्विनसञ्ज्ञके बुधयुते कृष्णाष्टमीवासरे ।
पुष्यर्क्षे मिथुने जिनेन्द्रचरणध्यानावलम्बी ययौ
स श्रीमानकलङ्कदेवसुखिराड् नाकालयं धीरधीः ॥
तस्याकलङ्कस्य तनयो विनयान्वितः ।
आसीद्विजयकीर्त्यार्यो जगन्मन्दारसन्निभः ॥
अकलङ्कगुरो(यो)गीशस्तुतिपावनमानसः ।
जीयात् विमलकीर्त्यार्यः कृतधर्मप्रभावनः ॥
क्षयोपशमसम्भूतज्ञानरत्नाकरविग्रहः ।
पाल्यकीर्तिमुनिर्जीयादकलङ्कपदप्रियः ॥
सतः श्रीपाल्यकीर्त्याख्यमुनेर्ध्यानधनञ्जये ।
प्रभुनासिमहावीरो नित्यं कर्णायते शयम् ॥

वाग्देव्या हारयष्टिर्वा सत्सुवर्णा गुणोज्ज्वला।
मुक्तामया सुवृत्ताभा चन्द्रमन्यार्यिका परा॥

श्रीचन्द्रप्रभयोगिराजतनुजो देशीगणाग्रेसर
प्रद्युम्नोद्धुरचापखण्डनपटु सद्धर्मधौरेयकः।
ध्यानध्वस्तसमस्तपापपटलः सद्भव्यकजांशुमान्
भाति प्रोन्नतसयमो विजयते श्रीनेमिचन्द्रो मुनिः॥

श्रीसगीतपुराग्रभागतिलके निर्वाणभूभृत्यरम्
श्रीचैत्यालयमुद्घलक्षणयुतं योऽनन्तजित्स्वामिनः।
पूजां नित्यमहोन्नतां च महतीं सम्यक् प्रतिष्ठां मुदा
शास्त्रोक्त्या व्यतनोत् स भाति जगति श्रीनेमिचन्द्रो मुनिः॥

ध्याने यस्य मतंगजा हरिकुलैः क्रीडन्ति वाजिव्रजाः
सत्रासैरिभसंकुलैर्विषधरा मण्डूकजालैर्भृशम्।
पञ्चास्याश्च कुरङ्गपाकनिचयै रेकेन्द्रियाः सत्फलैः
स क्षोणीश्वरपूजितो विजयते श्रीनेमिचन्द्रो मुनि॥

श्रीरंगद्रंगमध्ये विबुधनृपसभाभूपिते भूसुराढ्ये
प्रोद्वृत्तं वादिवृन्दं जिनपतिवदनप्रोत्थवाणीबलेन।
जित्वा साहित्यमूर्त्तिर्विपुलतरतपाः सन्ततं सत्कृपार्द्रं
श्रीमान् देशीगणेशो जयति विजयकीर्त्तिः कवीन्द्रद्रुमश्री॥

वीरश्रीवरदेवरायनृपतिः साहित्यविद्यापति
सगीतामृतवार्धिवर्द्धनसुधासूतिर्जिनेज्यामतिः।
जीवत्राणमुखव्रतादिसुरतिः श्रीपुष्पचापाकृतिः
शौर्यत्यागविवेकधैर्यवसतिर्वाभाति भूमण्डले॥

पातु श्रीवर्द्धमानो जिनपतिरनिशं दानशूरव्रताढ्यम्
विद्वत्कर्णावतंसीकृतगुणकुसुमं चार्थिनां पारिजातम्।
शास्त्राचारार्कयोगीश्वरचरणसरोजातभृंग स्मराभम्
नागप्पश्रेष्ठिनं श्रीजिनमुखनिरत कुंमणश्रेष्ठिपुत्रम्॥"

(पर पृष्ठ ९२ से पर पृष्ठ ९४)

आगे पूर्व पृष्ठ ९५ से कुन्दकुन्द, चारुकीर्ति* श्रुतकीर्त्ति†, विजयकीर्त्ति, अकलङ्क इस

*—इन्हें 'मन्त्रवादीश्वर' और 'वल्लालराय-विनुत' लिखा है।
†—इन्हें 'देशीगणविभूषण' लिखा है।

गुरुपरम्परा का फिर प्रशंसापरक स्मरण किया गया है। यहाँ भी अकलङ्क का अपरनाम 'चन्द्रप्रभ' दिया है।

इस प्रकार की पुनरुक्तियाँ ग्रन्थ में पर्याप्त हैं। फिर भी इनमें इतिहास-सम्बन्धी जो तात्त्विक बातें हैं वे उपेक्षणीय नहीं हैं। इसी प्रकरण में पुनः उनके अर्थात् अकलङ्क के शिष्य नेमिचन्द्र की स्तुति अङ्कित है। इसमें इन्हें ऊर्जयन्त तीर्थादि के द्वारा पुण्य-संचय करनेवाला भी लिखा है। पश्चात् अकलंक का निवास-स्थान एवं स्वर्गारोहण समय आदि यों अङ्कित है :—

"चन्द्रप्रभसुखी(धी)शोऽयं गुरुराजार्चितक्रमः।
अतिष्ठत्तुलुदेशस्थसंगीतनगरे चिरम् ॥
अन्येद्युरस्मिन्कायादौ निर्ममत्वं च भावयन्।
शुभाभिसंधिना चासन्नत्यजत्परमार्थवित् ॥
शाके पञ्चशराब्धिशीतगुमिते संवत्सरे नन्दने
मासे मार्गशिरे सकृष्णविधुजश्रीसप्तमीवासरे।
मध्याह्ने जिनपादसंस्मरणतः सल्लेखनासंयुतः
श्रीचन्द्रप्रभयोगिराट् प्रतिययौ नाकालयं शुद्धदृक् ॥

बाद सालुवदेवराय के द्वारा सुशासित तौलवदेशान्तर्गत संगीतपुर एवं तत्रस्थ जैन श्रावकों की कवि वर्द्धमान जी ने बड़ी तारीफ की है। साथ ही साथ इस प्रकरण के अन्त में यह उल्लेख किया है कि शिष्य नेमिचन्द्र ने गुरुभक्ति से प्रेरित हो धार्मिक श्रावकों के द्वारा प्रदत्त द्रव्य से विशाल मण्डप में शिलालेखपूर्वक अकलंक के समाधिस्थान पर एक अत्यन्त मनोहर 'निषीधिका' भी बनवायी थी। इस प्रकरण का अन्तिम श्लोक यह है—
"वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना। कृताकलङ्कयोगीन्द्रचन्द्रप्रभगुरुस्तुतिः ॥"

आगे पूर्व पृष्ठ ९८ से काणूर्गण के मुनियों के नाम यों अंकित हैं :—कुन्दकुन्द, अर्गसिंह-नन्दी, इन्द्रनन्दी, गुणचन्द्र, कनकचन्द्र, माघचन्द्र[1], रामचन्द्र[2], मुनिचन्द्र, सकलचन्द्र, माघचन्द्र, बालचन्द्र, महर्द्धिक मुनिचन्द्र[3], सकलकीर्ति, भानुकीर्ति[4], देवकीर्ति, इनके

१—कनकचन्द्र और माघचन्द्र को गुणचन्द्र का पुत्र बतलाया है। साथ ही साथ यह भी लिखा है कि एक बार जयकेशरी राजा का मदोन्मत्त गजेन्द्र इन माघचन्द्र जी को देखकर शांत हो गया था।

२—इन्हें 'आवालिगपुरराजार्चितकाणूर्गणमुख्य' आदि अनेक विशेषणों द्वारा स्मरण किया है।

३—इन्हें 'चन्द्रगुप्तिपुराधीशचन्द्रगुप्तनृपार्चित' बतलाया है।

४—इन्हें गेरुसोप्पेनिवासी लिखा है। ५—इन्हें 'मुनिचन्द्रतनय' कहा है।

शिष्य अनन्तकीर्त्ति, धर्मकीर्त्ति, कल्याणकीर्त्ति, चन्द्रकीर्त्ति आदि। उक्त देवकीर्त्ति के पट्ट पर क्रमश भानुमुनि, कनकचन्द्र, देवकीर्त्ति[1]। इस प्रकरण का अन्तिम पद्य निम्न लिखित है '—

"वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्द्यार्यबन्धुना।
काणूर्गणमुनीन्द्रोरुस्तवन सत्प्रकीर्तितम्॥"

पश्चात् पूर्व पृष्ठ १०१ से नन्दिसघ बलात्कारगण की गुर्वावली निम्न प्रकार मे दी गयी है —

वर्द्धमान भट्टारक[2], पद्मनन्दी, श्रीधराचार्य, देवचन्द्र, कनकचन्द्र, नयकीर्त्ति, रविचन्द्रदेव, श्रुतकीर्त्तिदेव, वीरनन्दी, जिनचन्द्रदेव, भट्टारक वर्द्धमान, श्रीधर, वासुपूज्य, उदयचन्द्र, कुमुदचन्द्र, माघनन्दी, वर्द्धमान, माणिक्यनन्दी[3], गुणकीर्त्ति, गुणचन्द्र, अभयनन्दी, सकलचन्द्र, गण्डविमुक्त[4], त्रिभुवनचन्द्र, चन्द्रकीर्त्ति, श्रुतकीर्त्ति, वर्द्धमान, त्रैविद्यवासुपूज्य, कुमुदचन्द्र, नेमिचन्द्र, बालचन्द्रमुनिस्तुत भुवनचन्द्र। इसके बाद अन्त मे बलात्कारगण के मुनियों की स्तुति वादी, वाग्मी, मन्त्रपटु, ग्रन्थरचयिता, राजसम्मानित, प्रखरतपस्वी आदि अनेकानेक विशेषण-द्वारा की गयी है। इस गुर्वावली का अन्तिम श्लोक यह है —

"वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्द्यार्यबन्धुना।
नन्दिसघमुनीन्द्राणां स्तवनं सत्प्रकीर्तितम्॥"

काणूर्गण-स्तवन के उपरांत ग्रन्थकर्त्ता ने दुर्जनो की निन्दा एव सज्जनो की स्तुतिपूर्वक कुछ उपदेश दिया है। इसी प्रकरण मे तौळव, केरळ होय्सळ सिंहल आदि देशो की स्त्रियों का शृङ्गारात्मक वर्णन अवलोकनीय है, जिसे देखकर कामशास्त्र मे वर्णित भिन्न भिन्न देश की स्त्रियो की रूप-रेखा-स्मृति-पथारूढ हो जाती है —

"देहोऽलकारहीनो विधुसमवदन वीटिकारागशून्यम्
बालाप श्रोत्रवज्रो भ्रमरनिभकच पुष्पसन्दोहदूर।
नीवी सद्वस्त्रवर्जा परिमलरहिता कामकेलिश्च शय्या
चञ्चन्मञ्चादिरिक्ता प्रभवति नितरां तौलवीनां वधूनाम्॥
नित्यस्नानयुता शिवार्चनपरा कामाङ्गनासन्निभा
श्रीखण्डांशुकशोभिताङ्गरुचय कर्णाढ्यमुक्ताफला।

१—इन्हें भानुकीर्त्ति के उत्तराधिकारी एवं 'केरलाधीश्वरपूजित' बतलाया है।
२—इन्हें 'होय्सलसन्मानराजार्चितपदाम्बुज' लिखा है।
३—इन्हें 'मालवेन्द्रप्रपूज्य' कहा है।
४—इन्हें 'मन्त्रवादि-पितामह' बतलाया है।

पाण्ड्य द्रमुआन्ध्रहेमवल्ल्या संभोगसक्ता सदा
पुंभावाभिनयाश्च केरलजनुष्कान्ता विभान्ति क्षितौ ॥
हैय्सलदेशजातवनिता कनकोज्ज्वलरत्नभूषणा
वारिजलोचना निबिडपीनपयोधराश्चारुवक्त्र ।
सारमृदूक्तिहासपरिगर्भितमन्मथकेलिकोविदा
भान्ति विचित्रनेत्ररुचिरा सुविलेपनवीटिकाप्रिया ॥
द्वीपे सिंहलनाम्नि सागरतटा सद्वृत्तमुक्ताफला
शैला निर्मलपद्मरागमणयोऽत्यर्यानि सेमानि च (?) ।
तद् शोद्भवविश्ववामनयना श्रीपद्मिनीजातिजा
राजन्ते महिपा सदागतमताचारास्तदुत्पत्तिका ॥
शोभन्ते कल्पपल्लवैर्विटपिनः सत्येन भूवल्लभा
लावण्येन सुमालदेस्यवनिता मूलैर्गुणोत्तरे ।
योगीन्द्राश्च परोपकारकरणो सन्तो जना श्रावकैः
धर्मा श्रीजिनभाषिता कविबुधैः शास्त्राणि पूतानि वै ॥"

(पर पृष्ठ १०९ से पूर्व पृष्ठ ११०)

आगे चन्दनषष्ठी-सम्बन्धी चन्द्रप्रभपूजन एवं जीवदयाष्टमी संबंधी मुनिसुव्रतपूजन दिये गये हैं। मुनिसुव्रतपूजन के अंत में अङ्कित—'वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानंदार्यबंधुना। महाजीवदयाष्टम्यां निर्मितं पूजना विधिः ॥" इस पद्य से इस ग्रन्थ में गर्भित भत्त्यतिरिक्त भिन्न भिन्न स्तुतियाँ, गुर्वावलियाँ तथा पूजनादि वर्द्धमान जी की अन्यान्य समय की कृतियाँ हैं और ये सब संग्रहरूप में अमर रह जायँ इस ख्याल से एकत्रित कर दी गयी हैं—यों अनुमान करना निर्मूल नहीं कहा जा सकता। इसी से इसमें यत्र तत्र पुनरुक्तियों एवं अप्राकरणिक का ख्याल हो जाना अस्वाभाविक नहीं है।

पूर्व पृष्ठ ११२ से पूर्व पृष्ठ ११५ तक जो विद्वत्स्तोत्र अङ्कित है उसमें निम्न लिखित विद्वानों की प्रशंसात्मक गाथायें हैं:—आशाधर, अभयचन्द्र[१] देवरस[२], हरिभट्ट[३], ब्रह्मसूरि, नेमिचन्द्र,

१—इन्हें 'सर्वोर्वीपतिपूजिताङ्घ्रियुगल' लिखा है।

२—इन्हें 'धर्मशर्माभ्युदय' एवं 'राघवपाण्डवीय' के टिप्पणकार बतलाया है।

३—इन्हें 'न्यासतर्कविशारद श्रुतकीर्त्यार्यपादपङ्कजषट्पद' कहा है।

४—इन्हें देवप्पाय के पुत्र अभयचन्द्र सूरि के निकट 'आधीतसद्दर्शन और विजयावनीशनयश्रीदेवरायार्चित' लिखा है।

जिनदेव, भेम्मडिभट्ट[1], गुम्मटदेव[2], पण्डितार्य[3] लोलम्बरस[4], आदप्पार्य[5], चन्द्रप्पार्य[6], कल्याणनाथ[7], धर्मशेखर[8], अभयचन्द्रसूरि[9], आदिनाथ[10], अध्यापक पार्श्वदेव,[11] उपाध्याय देवरस[12], गुम्मटदेव, अनन्तपण्डित[13], चौडरस[14], समन्तभद्र[15], मंत्री चेतरस[16], देवरस[17], इन्हीं का अनुज अनेकगुणगणालंकृत साळुवमल्लिराय के शास्त्रविद्यागुरु देवरससूरि, इनका पुत्र अनेकगुणमण्डित, साळुवदेवराय के आस्थान-भूषण, विद्यानन्द-शिष्य एव साहित्यरत्नाकर वोम्मरस।

इस प्रकरण का अन्तिम पद्य यह है—"वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबंधुना। रचितं विदुषां स्तोत्रं सज्जनानामभीष्टदम्।"

पूर्व पृष्ठ ११५ की अन्तिम पंक्ति से पूर्व पृष्ठ १२४ तक इस में जो श्रावकों का स्तुति अङ्कित है, इस स्तुति में निम्न लिखित व्यक्तियों का सवात्सल्य स्मरण किया

१—इन्हें 'विजयावनीशतनयश्रीदेवराय' के ख्यातिप्राप्त आस्थानकवि बतलाया है।

२—इन्हें अभयचन्द्रसूरि के पुत्र लिखा है।

३—इन्हें 'पद्माम्बाभयचन्द्रसूरितनय' और 'नारसिंहनृपतिस्तुत्य' आदि विशेषण-द्वारा स्मरण किया है।

४ इन्हें 'तर्कशास्त्रप्रवीण' एवं 'उपाध्यायपदाधीशसूरिपुत्रसमन्वित' कहा है।

५ इन्हें 'जगद्वन्द्य, सुकुमारचरित्रेश, परवादिविदारक' लिखा है।

६ इन्हे 'आयुर्वेदविधानज्ञ' बतलाया है।

७ इन्हें 'नेमिचन्द्रतनय, संगीतकलाप्रवीण' आदि लिखा है।

८ इन्हें 'कल्याणनाथसहोदर, शब्दतर्कागमाभिज्ञ' कहा है।

९ इन्ह 'कल्याणनाथतनय साल्वेन्द्रनृपास्थानप्राविष्कृतमहोदय' लिखा है।

१० इन्हें 'बुधस्तुत्य, वादिविजयी, मल्लिरायनृपस्वान्तसरोजातप्रभाकर' बतलाया हैं।

११ इन्हें 'अभिनंदनभट्टसूनु, वोम्मरसानुज' लिखा है।

१२ इन्हें 'नृपस्तुत्य' कहा है।

१३ इन्हें 'कविश्रीपतिमातुल' बतलाया है।

१४ इन्हें 'उपाध्यायतनुसम्भव' लिखा है।

१५ इन्हें 'वेणपुरभव्यजनार्चित, तौलवाधीशचन्द्रांघ्रिचन्द्रिमा' आदि लिखा है।

१६ इन्हें 'विद्यानंदमुनीन्द्रनिकटाधीतदर्शन, संगीतपुरसाल्वेन्द्रभूपालास्थानभूषण, पदवाक्य-प्रमाणज्ञ, वाद्यद्रिकुलिशायुध' आदि बतलाया है।

१७ इन्हें कवि और आगमका मर्मज्ञ लिखा है।

गया है :—

मंत्री जैतरस¹, मंत्री नागरस², मंत्री देवरस³, दण्डनाथ बैचप⁴, संकप्प⁵, मल्लप नायक⁶ बोमिश्रेष्ठी⁷ ।

आगे ग्रन्थ में अनेकगुण मण्डित, स्मरनिभ, योगीन्द्रसेवापर, विद्यानन्दमहोदय, शुद्धाहारादिदाननिरत, मुक्तारत्नपरीक्षणोकनिपुण, विद्वत्कल्पद्रुम सारत्रयवेदी, पर्यहिता चारमहाभागी ज्ञानचारित्रनिलय, एवं सम्यक्त्वरत्नाकर, आदि विशेषणों से प्रशंसित वेणुपुरीय—मूडबिद्रीय भव्य श्रावकों की रक्षा वहाँ के श्रीचन्द्रप्रभ एवं श्रीपार्श्वनाथ किया करें यों अपनी शुभकामना कवि वर्द्धमान जी ने दरसायी है। इसी प्रकरण में वहाँ की श्राविकाओं का भी गुणवर्णन किया गया है। बाद इसी प्रकार गेरुसोप्पे, भट्कळ एवं संगीतपुर के भव्यश्रावकों की भी पर्याप्त प्रशंसा की है।*

१—इन्हें 'प्रधानतिलक देवरायप्रमुखदुर्गाधीश्वरवन्दित, सम्यक्त्वचूडामणि, विप्रकुलाम्बरमणि सर्वज्ञसेवापर, सद्दानपूजाधिक, नानाशास्त्रविचक्षण सुकवितासीमन्तिनी-वल्लभ, सद्वृत्त श्रुतकीर्तिदेवयतिराट्पादाब्जपुष्पन्धय आदि अनेक विशेषणों द्वारा स्मरण किया है।

२—इन्हें 'मन्त्रितिलक, सौजन्यरत्नाकर सर्वज्ञपादद्वयीसेवायत्तमहोदय' लिखा है।

३—इन्हें 'कृतश्रीजिनमंदिर, सारत्रयसुधासिन्धुपारदृश्वा, विरूपाक्षधरणीशपालनीय' बतलाया है।

४—इन्हें 'जिनचरणसरोजद्वैतपूजाधिराज जनवृन्दप्राणरक्षामुकुन्द, श्रीदेवरायधरणीश्वर दत्तमान्य सद्धर्मसाधितमहापरलोकसार्थ कीर्तिपरिभूषितदिग्वधूटि' आदि कहा है।

५—इन्हें 'वीरश्रीविजयावनीशतनयश्रीदेवरायप्रभुप्रेष्ठिपदंगत, विख्यातदानाधिप, धर्मभूषण गुरुपदाम्बुजातद्वयीरोलम्ब, जिनवल्लभ' लिखा है।

६—इन्हें 'मल्लिकार्जुनरायमहामात्य, जिनपादार्चनासक्त' बताया है।

७—इन्हें 'श्रीरत्नराजविजयावनिपालमौलि, श्रीतौलवेश्वरनृपार्चितपादपीठ, श्रीवीरसेन मुनिपादनिधानदीप, विबुधव्रजकल्पभूज, विद्यानन्दव्रतिपतिपदाराधनासक्तचित्त विद्वत्सव्य, सकलभुवनख्यातकीर्ति साहित्यज्ञ, जिनपतिमताचारवान्, चातुरंगप्रवीण' कहा है। साथ ही साथ इनके नामके पूर्व में 'टंकशाला' यह पद दिया गया है जिससे यह बात सिद्ध होती है कि यह बोमिश्रेष्ठी टकशाल के अध्यक्ष थे।

* इसके बाद एक श्लोक यों मिलता है जिसमें रेखांकित पद अवश्य विचारणीय हैं —

"वीरश्रीन्द्रनरेन्द्रवन्दितपदा कुर्वन्तु भव्यावलेर्-
वाक्सिद्धिं <u>बुगयाख्यनेत्ररचित</u>श्रीचैत्यधामस्थिता ।
<u>धीरारामपुनायकेश्वरजा</u>स्तद्भागिनेयाग्रिम
मोघश्रीजिननायकस्तुतगुणास्तीर्थङ्कराः मङ्गलम् ॥"

पश्चात् कुम्मरण श्रेष्ठि-पुत्र नागण्ण श्रेष्ठी की बड़ी प्रशंसा की गयी है। आगे पुन क्रमश निम्नाङ्कित व्यक्तियों के नाम स्मरण किये गये हैं —

सगरस,[1] अगतरण श्रेष्ठी,[2] नारण श्रेष्ठी,[3] मल्लि श्रेष्ठी,[4] जिनदत्त,[5] भोजन श्रेष्ठी,[6] विजयरस,[7] लक्ष्मप,[8] पायण्ण,[9] नेमि श्रेष्ठी,[10] नेमरण श्रेष्ठी,[11] गुम्मि श्रेष्ठी,[12] नागण्ण,[13] तम्मरण,[14] गुम्मटदेव,[15] विजयप्प,[16] आदिनाथ,[17] नेमिचन्द्र,[18] पण्डित

१—इन्हे 'सालुवमल्लिरायनृपतेर्मन्त्रीश्वर, श्रीमान, विनिर्मितजिनावास, महामत्यवाक्, पूजादानपुरस्सरोरुहृदय, जैनेन्द्रशास्त्रादर, वीरनृसिंहरायधरणीट्प्राप्तेद्धभाग्योदय' कहा है।

२—इन्हे 'जिनधर्ममहामति, त्रियम्बकमहामात्यचन्दनश्रेष्ठ्यनूद्भव' बताया है।

३—इन्हे 'विभु, श्रावकाचारसद्रत्नभूष्यमदूहृदय' लिखा है।

४—इन्हे 'नागिश्रेष्ठितनूभव, गुणनिधि, महानतीर्थेशिना मुख्य, जिनराजपूजनविधिव्यासक्तचित्तोत्सव, विद्यानन्दमुनीन्द्रसेवनपर, सद्धर्मकेलीगृह, इन्दुकल्पयश' व्यक्त किया है।

५—इन्हे 'मगिश्रेष्ठिसुगर्भोत्थनागिश्रेष्ठितनूद्भव' लिखा है।

६—इन्हे 'कृतनेमिजिनालय, गेरुसोप्पेपुरीमध्यराजित' बताया है।

७—इन्हे वणिजेश, दयाधर्मकोश, कविबुधसुरधेनु, पायणश्रेष्ठिसूनु, जिनमुनिकजभृग, त्यक्तकान्ताप्रसङ्ग, यतिवृत्त, पात्रसन्न्यस्तवित्त' कहा है।

८—इन्हें 'पायक्कापतिपायणप्रभुसुत, श्रेष्ठीश्वर, वाणिज्यादिकलाप्रवीण, सत्पात्रलेप, पायपवाणिजाग्रज, प्रव्यक्तपुण्योदय' लिखा है।

९—इन्हें 'जयति विजयकीर्ते पादसेवाढ्यचित्तो धनपतिनिभवित्त' पोषितानेकपात्र'। प्रथितगुरुचरित्र कामसंकाशगात्रो जनजलजविमित्र पायपो जैननेत्र ॥" कहा है।

१०—इन्हें 'देविश्रेष्ठ्यनुजात, गुणाकर, भुवनस्तुत' लिखा है।

११—इन्हे 'गुम्मणश्रेष्ठ्यनुत्पन्न, दयाविशिष्टसद्धर्मवार्धिपीयूषदीधिति' बताया है।

१२—इन्हे 'मन्त्रिसंघविपुत्र, दयानिधि, व्रतशीलतपोनिष्ठ, चारुदर्शन, कहा है।

१३—इनकी माता नागरसी, पिता श्रेष्ठी तम्मरण, देव वृषभेश्वर, व्रत-गुरु नेमिचन्द्र व्रती, शिक्षागुरु विद्यानन्द बताये गये हैं। इन्होंने दो मन्दिर भी बनवाये थे।

१४—'श्रीशं नागरसीशद्रुमणिविभोर्गर्भाब्धिराकाविधु
सर्वक्षामलपूजनात्तविभव सौजन्यरत्नाकर।
आहारादिसमस्तदाननिरत ससारसौख्योदय
पायात्तम्मणनामधेयवणिज श्रीवर्द्धमानो जिन ॥' कहा है।

१५—इन्हें 'कुम्मणश्रेष्ठिनन्दन, दयाविशिष्टसद्धर्मवार्धिपीयूषदीधिति' लिखा है।

१६—इन्हें 'करणिकतिलक' बताया है।

१७—इन्हें दशरथ की उपमा दी गयी है।

१८—इन्हें 'चेन्नरायपट्टणराज्यश्रीमुखाब्ज, मन्त्रिकुञ्जर, चतुर्विध-महादान' लिखा है।

विजयण्ण,[१] गुम्मय,[२] देवरस[३] धरणिपण्डित लुम्मण[४] गुम्मि श्रेष्ठी,[५] विजयनगरवासी,[६] गुम्मि श्रेष्ठी,[८] चेन्नन श्रेष्ठी देवरसो मल्लि श्रेष्ठो,[११] गुम्मट श्रेष्ठी[१२] नेमण्ण श्रेष्ठी[१३]

१—इन्हें 'आयुर्वेदविशारद, भूनुत देवेन्द्रानुजनंजरायनृपसुप्राप्तोद्धसंपद्व्रज, देवरसाख्य पण्डिततनूजात, द्विजाग्रेसर, काश्यपगोत्रज, स्मरसम, गोविन्दराजस्तुत' कहा गया है।

२—इन्हें 'अमचवादीपत्तनश्रीमुकुन्द, कृतजिनपतिगेह, अमात्यवर्य, विबुधजनवसन्त, जैनविप्रावतंस, परबलमधुकृष्ण, कामरूप' बताया है।

३—इन्हें 'निरञ्जनार्यतनय, प्रभजनसुतप्रभ, रायसभाप्रार्च्यमहोदय, बोम्मरसानुज, द्विज कुलसोमामलश्रीसुधासृति, दानमरुन्नदीपरिहृतप्राहोरज सद्धृति, पार्श्वजिनेन्द्रपादयुगलीकज प्रसूनातिथि, मन्त्रि-तिलक, सम्यक्त्वपूतव्रत, सोमभूपालसन्मन्त्री, द्विज, हरवेग्रामसन्मध्यकृत पूतजिनालय' लिखा है।

४—इन्हें 'आयुर्वेदविधानज्ञ, श्रीमान्, वीरपृथ्वीशसचिव, धर्मवत्सल' बताया है।

५—इन्हें 'कलगावेनगराधीश, महाप्रभु जिनेन्द्रधर्मनिरत, मुनिसेवाविचक्षण' कहा है।

६—इन्हें 'विद्यानगरे निर्मापितजिनालय, वैश्यकुलाग्रणी मृदुवचा, नानाणिकावल्लभ, अवनीजनस्तुतगुण, सद्दानकृत्' लिखा है।

७—"विजयनगरवासा वैश्यवंशावतंसा जिनपतिपदपूजासक्तचित्ता विभान्ति। अनुगत-पुरुपुण्या कामिनीपुत्रयुक्ता परहितसुचरित्रा दानपूजाप्रसङ्गा" ॥

८—"विद्यानन्दव्रतिपतिपदाराधनासक्तचित्तो विद्वत्सन्य सकलभुवनख्यातकीर्तिर्गुणाढ्य। साहित्यज्ञो जिनपतिमताचारजान् टंकशालाधोम्मिश्रेष्ठी जयति भुवने चातुरंगप्रवीण ॥"

९—इन्हें 'हरियण्णसहजात, सकलगुणसमेत, धर्मवार्ध्यंत्रिजात, जनविनुतचरित्र लपवा नार्हविच' लिखा है।

१०—"श्रीमत्या जन (चेन्न)-वाणिजस्य कृतिन सद्धर्मसशोभिनो दौहित्री जिननेमिनाथ वसतेरग्रे जिनार्चोङ्कितं। मानस्तम्भमलं चकार रमणी सीमन्तमुक्तामणिर्लोके देवरसी सयम्भु भणिदकृचितोत्सवानन्दिनी" ॥

११—इनके विषय में लिखा है कि मागोडु के पति, धनसम्पन्न मल्लि श्रेष्ठी ने नेमि तीर्थङ्कर का चैत्यालय बनवाया।

१२—इन्हें 'देविश्रेष्ठिसहोदर, कविनुत, क्षमालिंगितविग्रह जिनपतिश्रीपादसेवापर' लिखा है।

१३—इन्हें 'गुम्मटश्रेष्ठ्यनुज समादिनिलय श्रेष्ठीश जिनदशमभ्रमरपद्म, पुत्रपौत्रान्वित' बतलाया है।

दुम्मण श्रेष्ठी,[1] वोम्मण्ण श्रेष्ठी,[2] सालुव नायक,[3] कामण्ण-देवरस,[4] होन्नप नायक,[5] हैवण नायक,[6] तिम्मण्ण नायक,[7] पद्मण्ण श्रेष्ठी,[8] सण्णामरि नायक,[9] पायण्ण श्रेष्ठी,[10]

---

१—इन्हें 'अंगजाम, जिनेन्द्रपूजासुरराजकल्प, जैनशास्त्रप्रवीण, अन्याहतपुण्यसार्थ' कहा गया है।

२—"दुमूरुग्राममध्ये कृतजिनसदनो वोम्मणश्रेष्ठिवर्यं
शास्त्राढ्यानां यतीना कमनगु • यजा जेमनार्थं प्रमोदात्।
त्रिंशत्संख्यायुताना प्रशमितगुजिना शालिज क्षेत्रमुच्चैः।
प्रादात् पूजाव्रताढ्यो वणिजकुलमणि स्वर्गमोक्षाभयं वै॥

३—"मावुनायकपुत्रोऽस्मात् श्रीमान सालुवनायकः।
दानपूजाप्रसक्तात्मा गुरुराजांघ्रिभक्तिमान ॥
सगीतनगरे श्रीलो ब्रह्मिश्रेष्ठि-जिनालयम।
सतनोतिस्म तोपेण ताम्रमच्छादित वरम ॥"

४—इन दोनों अधिकारियों ने एक जिनमन्दिर का निर्माण कराया था।

५—"श्रीद्धं होन्नपनायक गुणनिधिं प्रज्ञाधनानन्दिनम
कारुण्यामृतपूर्णपात्रमवनौ विद्वज्जनैः सस्तुतम।
जैनेन्द्रामलशास्त्रनिश्चितमहाजीवादिभावस्थितम
पायात्संगरनिर्जितारिनिकर श्रीवर्द्धमानो जिन' ॥"

६—"श्रीमत्सालुवकृष्णदेवनृपते मंत्रामसद्व भवो-
धीमाञ्जीवदयापरो नयविदामग्रेसर सौख्यभाक्।
भव्यो हैवणनायक कृतमहाजैनप्रतिष्ठोत्सवो-
योगिस्वान्तकजांशुमान् विजयते सम्यक्त्वचूडामणि ॥"

७—"श्रीतिम्मनायक कृपापरपूर्णमूर्ते श्रीकृष्णदेवनृपदक्षिणबाहुकल्प।
विद्वत्कवीन्द्रसुरभूरुह जीवभूमौ प्रत्यु ग्रगण्यवनितानयनाब्जमित्र ॥"

८—"पद्माकरपुरस्थ' श्रीपार्श्वेशो मन्त्रिशेखरम।
पद्मणश्रेष्ठिनं पायाद्धिनिर्मितजिनालयम ॥"

९—"रामराजनृपामात्योऽस्मात्सण्ण रिनायक।
जिनप्रतिष्ठासद्दानसघपूजादिभासुर ॥"

१०—"पायिश्रेष्ठितनूभुवो जिनगृहं वेङ्यातटाके वरम्
पश्चात्पोम्बुचनाम्नि पञ्चवसती कृत्वा पुरे पान्तरि। (?)
जीर्णोद्धारविधानतो जिनमहायज्ञं ध्वजाद्यङ्कितम्
भक्त्या पायणवाणिजो व्यरचयत सत्सघपूजां च स ॥"

पार्श्व श्रेष्ठी, गुम्मि श्रेष्ठी,[1] तिम्मि श्रेष्ठी[2] बोम्मराज । इस प्रकरण के अन्तिम पद्य निम्न प्रकार हैं —जिनशासननिष्णाता' सदा सत्कर्मकर्मठा' । जैनद्विजा' सदाराध्या जयन्ति कल्याणपरा ॥ वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना । दानपूजागुणाढ्यानां श्रावकाणां स्तुति कृता ॥

पृष्ठ १२३ पंक्ति ४ से तुलुदेशान्तर्गत मूडबिदुरे के श्रीचन्द्रनाथ से तत्रस्थ भव्यों की रक्षा करने की प्रार्थना की गयी है । इस प्रकरण में कविवर्द्ध मान जी ने मूडबिदुरे को स्वर्ग तुल्य कह कर यहाँ के श्रावकों को धनवान् धीमान् रूपवान्, शुद्धचारित्रधारक, मुनिसेवासक्त, सागारधर्मनिरत, सज्जनमुनि-आज्ञाधारक रागद्वेष विमुक्त एवं त्यागप्रिय आदि विशेषणों से स्मरण किया है । साथ ही साथ चन्द्रनाथ या त्रिभुवनचूडामणि चैत्यालय की बड़ी प्रशंसा की है । यहाँ के पार्श्वनाथ-मंदिर की प्रशंसा करना भी आप नहीं भूले हैं । इस प्रकरण का अन्तिम पद्य यह है —

> वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना ।
> श्रीवेणुपुरकान्तानां श्रावकाणां स्तुति कृता ॥

बाद पूर्व पृष्ठ १२६ से देवेन्द्रकीर्ति, विद्यानन्द देवरसपूरि एवं इनके कुटुम्ब की प्रशंसा की है—

> "श्रीमान्देवेन्द्रकीर्त्तिर्यतिपतिमुकुटो मन्त्रवादीभसिंह
> साहित्याम्भोजसूर्यो विमलतरतप श्रीसमालिंगिताङ्ग ।

---

१—"श्रीपार्श्वश्रेष्ठिनं पायाज्जिनेन्द्रो गुम्मणाग्रजम् ।
　दानपूजादिदिव्यास्तस्यापतेयं महाधियम् ॥"

२—"कोटीश्वरानुजापुत्रो गुम्मिश्रेष्ठिगुणाकर ।
　दानपूजाविनिरतो राजते जनतास्तुत ॥"

३—"देविश्रेष्ठ्य गजात' सकलगुणनिधिर्जैनसत्संघबन्धु
　चेन्नादेव्या पदाब्जद्वितयमधुकर. सगात्रमगतजा ।
　*तिम्मिश्रेष्ठिर्जिनेन्द्रामलमतनिरत श्रीदयाधर्मकोश*
　मन्त्रीश शक्तियुक्तो जगति विजयते सत्यवाग्दानशूर: ॥"

४—"बोम्माम्बापतिपाण्ड्यभूपतनय श्रीवर्द्धमानोदय'
　सद्धर्मोदयशीलबालतरणि सद्दानचिन्तामणि' ।
　सर्वज्ञामलपादयुग्मसरसीजातद्विरेफ' सदा
　जजीयाद्भुवि बोम्मराजनृपतिनारीमनोज्ञाकृति' ॥"

विद्यानन्दार्यसूनुः कविविबुधमहापारिजातो विभाति
प्रायो भूताचलेन्द्रः परहितनिरतः शास्त्रकर्णपूरः ॥
श्रीकृष्णरायमहजाच्युतरायमौलिविन्यस्तपादकमलः कमनीयमूर्त्तिः ।
देवेन्द्रकीर्तिमुखिराट् जयति प्रसिद्धः स्याद्वादशास्त्रमकराकरशीतरश्मिः ।

× × × ×

"यो विद्यानगरीधुरीणविजयश्रीकृष्णरायप्रभो-
रास्थाने विदुषां गणान् समजयत् पञ्चाननो वा गजान् ।
सद्वाग्भिनखरैः कुवादिविमलज्ञानाय तस्मै नमो
विद्यानन्दसुखीश्वराय जगति प्रख्यातसत्कीर्त्तये ॥
वाग्देवी वदनाम्बुजे नयनयोः कृष्णार्जुनौ सत्करे
स्वर्धेनुर्हृदये महाजिनपतिः सन्तिष्ठते राजते ।
पादे कूर्मकलानिधिप्रभृतयो रोमालिकायां फणी
यस्य श्रीविजयाम्बिका वरगुणा सा विश्ववंद्याकृतिः ॥"

× × × ×

जीयात् साळुवमल्लिरायनृपतेः सच्छास्त्रविद्यागुरुः
सर्वज्ञोदिततत्त्वनिश्चितमतिः साहित्यविद्याधरः ।
भारद्वाजविशालगोत्रतिलकः स्याद्वादशास्त्राकृतिः
श्रीमान् देवरसाख्यसूरिरमलाचाराग्रणीः सन्नुतः ॥
तस्य देवरसाख्यस्य विद्वद्राजशिरोमणेः ।
सेयं त्रिवर्गनिष्पत्त्यै विजयासीन्महीयसी ॥
तयोर्वा विजयादेवरसोपाध्याययोरभूत् ।
सुतो बोम्मरसो नाम नीतिविक्रमयोरिव ॥
तत्पुत्रो जनताप्रियः परहितः सद्दर्शनालंकृतः
श्रीमत्साळुवदेवरायनृपतेरास्थानिकाभूषणः ।
विद्यानन्दसुखीन्द्रपादसरसीजातद्वयेन्दीवरो-
जीयाद्बोम्मरसो विचक्षणवरः साहित्यरत्नाकरः ॥

× × × ×

तस्याभवत् बोम्मरसस्य पत्नी गुणाश्रया निर्मलवृत्तरम्या ।
मुक्तामया हारलतेव कान्ता कण्ठास्पदं देवरसी लतांगी ॥

नील श्रीचिकुर' प्रवालमधरो वज्रञ्च दन्तावलि
र्वैडूर्यं नखर कलेवरमिदं सत्पुष्परागो मणि ।
यस्या शोणमणिद्युम्नममल शृङ्गाररसजीवनी
सा रत्नप्रतिमेव भाति तरुणी श्रीदेवरस्याम्बिका ॥
कुम्भौ पीनपयोधरौ मलिनिकावक्त्र पताका च
पद्मं पाणितल सुतण्डुलचयौ दन्तावलिस्तोयाम् ।
हेमस्तम्भसदृक्षमूरुयुग शाच च हृद्य वचो
यस्या मङ्गलदेवतेव वनिता सा देवरस्याग्रभो ॥
तस्या वियोगविधुर' परमार्थसिद्ध्यै देवेन्द्रकीर्तिमुनिराजपदाम्बुजा
सागरवाडवाभां दीक्षां जिने प्रगदितां परमाश्रयेऽहम् ।"

इसके आगे कन्नड भाषा में कवि वर्द्धमान ने अपनी प्रशंसा लिखी है। बल्कि उल्लिखित देवेन्द्रकीर्ति विद्यानन्द आदि की प्रशंसापरक स्तुति तथा परिचय आदि में भी कन्नड भाषा प्रयोग में लाई गयी है। पश्चात् कुछ ऐतिहासिक पद्य जो ज्ञात होते हैं वे यथावत् नीचे उद्धृत कर दिये जाते हैं

"श्रीकृष्णा कृष्णशर्मा गजपुरे श्रीधर्मराय यथा
पट्टेऽस्थापयदीश्वरेन्द्रनरन श्रीरंगरायात्मजम् ।
जामाता भुवि कृष्णरायनृपते श्रीरामराजस्तथा
श्रीपट्टेऽत्र सदाशिव नरपति विद्यापुरेऽस्थापयत् ॥
त्रेतायां रघुरामचन्द्रनृपति' सिन्धोस्तटे प्राविडे
पम्पेशा समतिष्ठपत्खलु यथा कर्णाटदेशे कलौ ।
श्रीविद्यानगरे सदाशिवमहाराय नृसिंहप्रभो
भर्तार गुरुरामराजनृपतिस्त राजमौलि तथा ॥
श्रीयादीश्वरराजपसिंहतनयश्रीकृष्णरायप्रभो
भ्राता योऽजनि रंगरायनृपति पृथ्वीवराहाङ्कित' ।
तस्यासौ तनुज सुपुण्यतिलक श्रीरामराजार्चित
क्षोणीपालकल सदाशिवमहारायो जिनेन्द्रप्रभ' ॥
भन्दे श्रीरंगराजक्षितिपतिकलशं वर्णयन्तीरघुग्रयम्
पुत्र जामातर वा परिवृढमवनौ मातुल देवर च ।

विद्वांसस्ते कवीन्द्रा कुवलयमुखदं श्रीवरं रत्नकान्तम् ।
तेजस्विनं च विश्राणनगुणनिरतं रामराजावनीशम् ॥'

× × × ×

"रेजे पाण्ड्यमहीमहेन्द्रमहिषी श्रीभैरवाम्बा सती
सर्वज्ञांघ्रिसरोजपूजनपरा पुण्यायुधश्रीतनुजा ।
साळ्वश्रीगुरुरायभैरवनृपश्रीदेवरायप्रभो
पद्माम्बाग्रजसंगिरायनृपतेः श्रीरामचन्द्रस्यजा ॥
वीरश्रीवरदेवराजकृतमन्कन्यागणपूजोत्सवो-
विद्यानन्दमहोदयैकनिलयः श्रीसंगिराजार्चितः ।
पद्मानन्दन . . .कृष्णविनुतः श्रीवर्द्धमानो जिनः ।
पायात्साळुवकृष्णादेवनृपतिं श्रीशोऽर्द्धनारीश्वरः ॥"

× × ×

"पद्माऽर्हन्तः प्रमाणं सकलगुणयुता मोक्षदो जैनधर्मो-
वाक्यं जैनेन्द्रवक्त्रोद्गतमवनिहितं बन्धुरा जैनबिम्बाः ।
भास्वज्जैनालयाः श्रीसदनमुरुकुलं कृष्णादेवक्षितीन्द्रम्
रक्षन्तोद्धप्रतापं कृतजिनसदनं पद्मलाम्बाकुमारम् ॥"

× × ×

"बलात्कारगणाम्भोजभास्करस्य महाद्युतेः ।
श्रीमद्देवेन्द्रकीर्त्याख्यभट्टारकशिरोमणेः ॥
शिष्येण ज्ञातशास्त्रार्थस्वरूपेण सुधीमता ।
जिनेन्द्रचरणद्वंद्वस्मरणाधीनचेतसा ॥
वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना ।
कथितं दशभक्त्यादिशासनं भव्यसौख्यदम् ॥"

इसके बाद ग्रन्थरचनाकाल यों अङ्कित है —

"शाके वेदखराग्निचन्द्रकलिते संवत्सरे श्रीमुखे
सिंहश्रावणिके प्रभाकरशिवे कृष्णाष्टमीवासरे ।
रोहिण्यां दशभक्तिपूर्वकमहाशास्त्रं पदार्थोज्ज्वलम्
विद्यानन्दमुनिस्तुतं व्यरचयत् सद्वर्द्धमानो मुनिः ॥"

ऊपर उद्धृत इस ग्रन्थ के जहां तहां के पद्यों से विज्ञ पाठक सहज ही समझ गये होंगे

कि इस ग्रन्थ का इतिहास से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ग्रन्थ में प्रतिपादित प्रत्येक बात पर सावधानता से विचार करने पर कई नवीन बातों पर प्रकाश पड़ेगा और एक सुन्दर महत्त्व-पूर्ण प्रबन्ध तैयार होगा। खास कर उत्तर कन्नड़ जिला के जैन इतिहास निर्माण में इस ग्रन्थ से पर्याप्त सहायता मिल सकती है। किन्तु ग्रन्थ-प्रतिपादित सभी बातों को सप्रमाण खोज एवं सिद्ध करने के लिये यथेष्ट समय सापेक्ष है। पर इस समय मेरे पास इतना समय नहीं है। अतः मैं एकमात्र अन्वेषण शील सावकाश विद्वानों से ग्रन्थगत बातों पर प्रकाश डालने के लिये अवश्य सादर अनुरोध करूँगा।

ग्रन्थ-रचयिता कवि वर्द्धमान जी ने इसमें अपने पूर्वज विद्यानन्द और देवेन्द्रकीर्त्ति की कई स्थानों पर बड़ी प्रशंसा एवं स्तुति की है। यह विद्यानन्द वही विद्यानन्द हैं जिनके सम्बन्ध में 'जैनएन्टिक्वेरी' भाग ४, नं० १ में डा० सालेतोर का 'Vadi Vidyananda A Renowned Jaina Guru of Karnataka' शीर्षक एक महत्त्व-पूर्ण विस्तृत लेख अंग्रेजी में प्रकाशित हो चुका है। विद्व लेखक ने इनके बारे में अपने गवेषणा-पूर्ण लेख में अच्छा विवेचन किया है। विद्यानन्द विजयनगर साम्राज्य के समसामयिक हैं। मैसूर राज्यान्तर्गत नगर तालुक के हुम्बुच नामक स्थान में इनसे सम्बन्ध रखनेवाले कई शिला लेख मौजूद हैं। आप नन्दिसंघ के कुन्दकुन्दान्वय के अनुयायी थे। इस अन्वय में समन्तभद्र, पूज्यपाद आदि बड़े बड़े लोकविश्रुत आचार्य हो गये हैं। विद्यानन्द एक अद्वितीय वादि-विजयी थे। भिन्न-भिन्न राजसभाओं में जाकर इन्होंने जो जय-लाभ प्राप्त किया था उन सब का विस्तृत परिचय अनेक शिलालेखों में मिलता है। बल्कि वर्द्धमान जी ने अपने इस प्रस्तुत ग्रन्थ में भी शिलालेख-गत कतिपय पद्यों को जहां-तहां उद्धृत किया है। डा० सालेतोर ने भी पूर्वोक्त अपने लेख में इनकी विजययात्रा-सम्बन्धी बातों पर ही अधिक प्रकाश डाला है। नजिदेवराज केशरिविक्रम आदि जिन जिन राजाओं की सभाओं में विद्यानन्द जी ने वाद-द्वारा यश प्राप्त किया था वे अमुक वंश के, अमुक राज्य के एवं अमुककाल के राजा थे इन सब जटिल बातों को सप्रमाण सिद्ध करने की आपने सफल चेष्टा की है।

विद्यानन्द केवल वादी ही नहीं थे, प्रत्युत एक प्रवीण समालोचक तथा सुदक्ष कवि भी थे। शिलालेख में इनके गद्य के लिये महाकवि बाण की उपमा दी गयी है। इन्होंने धार्मिक क्षेत्र में अच्छा काम किया था। गेरुसोप्पे में तो इनका एकछत्र आधिपत्य था ही। साथ ही साथ कोपण, श्रवणबेलगोल आदि स्थानों में भी विद्यानन्द जी ने उल्लेखनीय कार्य किया है। वर्द्धमान जी के द्वारा सिंहकीर्त्ति देवेन्द्रकीर्त्ति विशालकीर्त्ति एवं विद्यानन्द

(२य) ये चारो विद्यानन्द के 'सूनु' या 'तनय' कहे गये है। मालूम नहीं होता है कि उक्त ये विद्वान् विद्यानन्द के आत्मज और शिष्य दोनो थे या केवल शिष्य। शिष्य के लिये भी सूनु, तनय आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है अवश्य, फिर भी इन चारो विद्वानों के परिचय मे आये हुए खास कर 'सूनु' 'तनय' इन शब्दों को देख कर इन्हे आत्मज और शिष्य दोनो अनुमान करना युक्ति-विरुद्ध नहीं कहा जा सकता। इन चारो का सक्षिप्त उल्लेख आगे कर दिया है। इस 'दशभक्त्यादिशास्त्र' मे स्मरण किये गये देवराय*, कृष्णराय, अच्युतराय, मल्लिराय, रामराय, रगराय नृसिह, सगिराय, सदाशिव, पद्माम्बा और भैरवाम्बा आदि ये सभी व्यक्ति विजयनगर-राज-घराने के हैं।

डा० सालेतोर का कहना है कि साल्व मल्लिराय, देवराज, कृष्णराज और सगिराय ये चारो तोळव देशान्तर्गत सगीतपुर अर्थात् हाडुहळ्ळि के साल्व या सालुव-वश के हैं। सगीतपुर, वेणुपुर एव गेरुसोप्पे इन तीनो स्थानो मे इनकी राजधानियां थीं। पर यह निश्चित-रूप से कहना कठिन है कि अमुक व्यक्ति अमुक स्थान मे राज्य करता था। हाँ, सगिराय का लडका इदगरस सगीतपुर मे ही राज्य करता था। नगरी राज्य का भी गेरुसोप्पे से सम्बन्ध था। देवराज और कृष्णराज से विद्यानन्द का साक्षात् सम्बन्ध था। पद्माम्बा देवराज की बहन तथा कृष्णराज की मां थी। उस समय गेरुसोप्पे एव सगीतपुर मे भी तोळव देशके समान 'अळियकट्टु' अर्थात् भगिना के मामा का उत्तराधिकारी होना यह प्रथा जारी थी। इसी से कृष्णराज को मामा देवराज का राज्य मिला था। भैरवाम्बा का विवाह पाण्ड्यराज से हुआ था। डा० सालेतोर विद्यानन्द का अस्तित्व ई० सन् १५०२ से १५३३ मानते हैं। परन्तु मै ऊपर लिख चुका हूँ कि विद्यानन्द का स्वर्गवास शक १४६३ ई० सन् १५४१ में हुआ था।

ऊपर अन्यान्य परिचयात्मक एव प्रशसापरक पद्यो मे ग्रन्थकर्ता के द्वारा स्मरण किये गये देवराय (ई० सन् १४२९—१४५१) से प्रणत धर्मभूषण, विद्यानन्द के 'सूनुवर्य', व्रतीन्द्र, महादानी, निष्कलङ्क चारित्र के आराधक, कर्णाटक की ही राजसभाओ मे नहीं, दिल्ली के सुलतान महमूद[1] के राजदरबार मे भी बौद्धों को हरानेवाले एवं नाट्यशास्त्र के मर्मज्ञ भट्टारक

* राय और राज ये दोनो शब्द समानार्थक हैं, इसीलिये कोई 'राय' लिखता है और कोई 'राज'।

[1] यह दिल्ली के सुल्तान महमूद या मुहम्मद तुगलक होना चाहिये। मुसलमान बादशाहों मे यह बहुत ही विद्वान् और योग्य शासक था। उसे हिन्दुओं की धर्म-मान्यताओं के प्रति भी सम्मान-भाव था। यह इस्लाम और अरस्तू के सिद्धान्तो का अच्छा जानकार था। उसे तत्त्ववेत्ताओं से वाद करने का भी व्यसन था। इसकी तर्कशक्ति देख कर अच्छे अच्छे तार्किक विद्वान् भी आश्चर्यित हो जाते थे। अत इसमे कुछ भी आश्चर्य नहीं, यदि सिहकीर्त्ति

सिंहकीर्ति वादीन्द्र परमागमकोविद महातपस्वी सिकन्दर सुल्तान* द्वारा सम्मानप्राप्त भट्टारक विशालकीर्ति, अपने ज्ञानबल से विद्यानगर (विजयनगर) के स्वामी विरूपाक्षराय (ई० सन् १४६५—१४७९) की सभा में वादियों को जीतकर विजय पत्र को प्राप्त करनेवाले, आरगनगर के दण्डनाथ (वायसराय) देवप्प† के दरबार में जैनधर्म के महत्त्व को प्रकट

जी ने सुल्तान मुहम्मद तुगलक के दरबार मे प्रसिद्धि प्राप्त की हो। दिल्ली के सुयोग्य सुल्तान के द्वारा निमन्त्रित किये गये तत्त्ववेत्ताओं मे यह भी एक होंगे और इन्होंने सन् १३२६ एवं १३२७ ई० के मध्य सम्मान प्राप्त किया था यह अनुमान करना निर्मूल नहीं कहा जा सकता। (देखें—'भास्कर' भाग ४, किरण ४, में प्रकाशित डा० सालेतोर का दिल्ली के सुलतान और कर्नाटक के जैनगुरु" शीर्षक लेख) पर एक बात है कि डा० सालेतोर 'पद्मावती-बस्ति' के शिलालेखगत पाठ को इस प्रशस्तिगत पाठ के समक्ष रख कर इस पर फिर एक बार विचार करने का कष्ट उठायें। क्योंकि सिंहकीर्त्ति के परिचय को व्यक्त करनेवाले इस पद्य में कुछ शब्द ऐसे हैं जिन पर विचार करना अवशिष्ट है। प्रस्तुत ग्रन्थ के पद्य म महम्मद सुरित्राण' शब्द स्पष्ट मिल रहा है जो कि उक्त शिलालेख में डा० साहब के कथनानुसार केवल 'मूद सुरित्राण' पाया जाता है। साथ ही साथ शिलालेख में जहाँ 'बंगाल्य-देशावृत' पाठ है वहाँ 'गंगाख्यदेशावृत' है। इसके अतिरिक्त भी दोनों पाठों में और भी अन्तर है। उसका पाठ यो है—"वामाति अश्वपतेर्हिने ततनयो बंगाल्यदेशावृतश्रीमद्दिल्लीपुरे मूदसुरित्राणस्य माराकृते निर्जित्याशु सभावनम् जिनगुरुर् बौद्धादिवादिव्रज श्रीमद्भट्टारकसिंहकीर्त्ति मुनि रा र्थक-विद्या-गुरु (पद्मावती-बस्ति का शिलालेख)

"वामात्यश्वपतेर्दिनेशतनयो गंगाख्यदेशावृत
श्रीमद्दिल्लिपुरे महम्मदसुरित्राणस्य माराकृते।
निर्जित्याशु सभावनौ जितगुरु (जिनगुरुर्यो) बौद्धादिवादिव्रजम्
श्रीमद्भट्टारकसिंहकीर्त्तिमुनिराट् नाट्येषविद्यागुरु॥" (वशमक्त्यादिशास्त्र)

* यह सिकन्दर दिल्ली के सुल्तान सिकन्दर सूर होना चाहिये। साथ ही साथ यह भी निश्चित है कि सन् १५५४ में जब सुल्तान सिकन्दर सूर दिल्ली का शासक हुआ संभव है कि इसी साल में विशालकीर्त्ति जी इसके दरबार में आये हों और सुल्तान ने इनका सत्कार किया हो। सिकन्दर का समय १४६८—१५५४ ई० है। विशेष बात जो जानना चाहें वे देखें—डा० सालेतोरके 'भास्कर' भाग ४, किरण ४ में प्रकाशित दिल्ली के सुल्तान और कर्नाटक के जैनगुरु"।

† विजयनगर का वायसराय (दण्डनायक) गिरिनाथ का पुत्र देवप्प दण्डनाथ था। यह आरग का शासक था। देवप्प मल्लिकार्जुन या इम्मडि देवराय एवं विजयनगर के दूसरे सम्राट् विरूपाक्ष के राज्यकाल में आरग का शासन करता था। (देखें भास्कर भा० ४, किरण ४)

करनेवाले एवं तत्रस्थ ब्राह्मणों से पूजित, अच्युतराय (ई० सन् १५३०—१५४२) तथा मल्लिराय (ई० सन् १४५१—१४६५) से सम्मानित, आगमत्रयसर्वज्ञ, महाकवि, विविधोपन्यासविचक्षण, कार्कळ के पाण्ड्यराज के द्वारा समर्चित तथा विद्यानन्द के पुत्र भट्टारक देवेन्द्रकीर्त्ति, विद्यानन्द स्वामी के सधर्मा, पोम्बुच्च मे पार्श्वनाथमन्दिर को बनवा कर बड़े समारोह से प्रतिष्ठा करानेवाले नेमिचन्द्र, विद्वद्वन्द्य, सभी शास्त्रों के ज्ञाता और महावादी, विद्यानन्द के पुत्र विशालकीर्त्ति,❀ विशालकीर्त्ति के सधर्मा अनेक गुणभूषित अमरकीर्त्ति, शास्त्रधुरन्धर, विद्यानन्द के पुत्र विद्यानन्दमुनीश्वर, बकापुर म नृप मादन पल्लप के मदोन्मत्त प्रधान गजेन्द्र को अपने तपोबल मे शान्त करनेवाले, स्याद्वादमर्मज्ञ एवं राजशिरोमणि देवराय (ई० सन् १४२९—१४५१) से वन्द्य अकलङ्क, इनके सधर्मा तर्कव्याकरणादि शास्त्रों के पारगामी चन्द्रप्रभदेव, सर्वगुणालंकृत जयकीर्त्ति, जनता के लिये कल्पवृक्ष-तुल्य अकलंक-तनय विजयकीर्त्ति, अनेक धर्मप्रभावना-सम्बन्धी कार्य करनेवाले, अकलंक के शिष्य विमलकीर्त्ति, महातपस्वी एव अकलंकपद-प्रिय पाल्यकीर्त्ति, विदुषी समुज्ज्वलगुणसम्पन्ना, चारित्रवती आर्यिका चन्द्रमती,संगीतपुर (हाडुहळ्ळि) मे अनन्तनाथ स्वामी का सुरम्य एव भव्य चैत्यालय को बनवा कर शास्त्रीय विधि मे प्रतिष्ठा करनेवाले, अन्यान्य राजाओं से पूजित, देशीयगण के योगिराज एव चन्द्रप्रभतनुज नेमिचन्द्र, श्रीरंगपट्टण मे बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों से अलंकृत राजसभा मे अपनी धारावाही एव अजेय वाणी के द्वारा वादि-वृन्द को जीतनेवाले, महातपस्वी, देशीयगण के नायक एव कवि-शिरोमणि विजयकीर्त्ति, होय्सल-राज्य-संस्थापक तथा इस राज-वंश को व्रत और विद्या प्रदान करनेवाले वर्द्धमान, मालवपति-वन्द्य[1] आशाधर, काशीपतिनत कमलभद्र, पेनगोंडे के नरसिंहराय से सम्मानित लक्ष्मीसेन, मालवेन्द्र की सभा मे बौद्धों को पराजित करनेवाले और पेगुब्बीपादि-वन्द्य मतिसागर[2], साल्वराज-द्वारा पूजित, त्रैविद्यचक्रेश्वर श्रुतकीर्ति, मन्त्रवादीश्वर एव बल्लालराय-सम्मानित चारुकीर्त्ति, राजा जयकेशरी के मदोन्मत्त हाथी को शान्त करनेवाले माधवचन्द्र, कार्णूगण के प्रधान, जाबालिपुर के राजा से सम्मानित रामचन्द्र, चन्द्रगुप्तिपुर के शासक, चन्द्रगुप्त के द्वारा अर्चित× महर्द्धिक मुनिचन्द्र, केरलाधीश-सम्मानित देवकीर्त्ति,

❀ दिल्ली के बादशाह के दरबार मे जाकर शास्त्रार्थ-द्वारा विजय प्राप्त करनेवाले उल्लिखित विशालकीर्त्ति से यह भिन्न हैं या वही हैं, विचारणीय है। क्योंकि वर्द्धमानजी ने कई व्यक्तियों के नाम अनेक बार स्मरण किये हैं।

[1] यह मालवपति परमारवंश के प्रतापी राजा विन्ध्यवर्मा थे।

[2] यह प्राय वादिराज के गुरु हों।

× पता नहीं लगता कि यह कौन सा चन्द्रगुप्तिपुर है।

मालवेन्द्र से सेवित माणिक्यनन्दी, मन्त्रवादिपितामह गण्डविमुक्त, अनेक राजाओं से अर्चित अभयचन्द्र देवप्पाद के पुत्र अभयचन्द्र सूरि के शिष्य एवं विजयनगर के देवराय सम्मानित नेमिचन्द्र विजयनगर के देवराय के ख्याति प्राप्त आस्थान-कवि मेम्मडि भट्ट नरसिंहनृपति-द्वारा प्रशंसित पण्डितार्य कल्याणनाथ के पुत्र साल्व महाराज के आस्थान विद्वान् अभयचन्द्र सूरि, मल्लिराय के हृदयरूपी कमल को विकसित करनेवाले आदिनाथ, वेणुपुर के भव्यों के द्वारा अर्चित तौलवाधीश-वन्द्य समंतभद्र अनेक गुणालंकृत साल्व मल्लिराय के शास्त्र विद्यागुरु देवरस सूरि इनके पुत्र अनेक गुणभूषित साल्वदेवराय के आस्थान रत्न एवं विद्यानन्द के शिष्य बोम्मरस आदि आचार्य, कवि विद्वान् तथा विदुषियाँ, देवराय, कृष्णराय, रामराय, कृष्णराय के भाई रंगराय के पुत्र एवं नृसिंह के नाती सदाशिव, पाण्ड्यराज की महिषी जिनभक्ता भैरवाम्बा संगिराय की भगिनी पद्माम्बा माधुनायक के पुत्र और संगीतनगर (हाडुहल्लि) में प्रसिद्ध श्रेष्ठी के द्वारा निर्मापित जिनालय को ताम्रपत्र से आच्छादित करनेवाले सालुव नायक जिन मन्दिर निर्माता कामराय और देवरस, महान् वीर एवं गुणगणालंकृत होन्नप नायक, सम्यक्त्वचूडामणि, सालुव कृष्णदेव राय से सम्पत्ति को पानेवाले तथा नीति निपुण हैवण नायक विद्वानों के लिये कल्पतरु-तुल्य और कृष्णदेवराय के दक्षिण हस्त तिम्म नायक बेलगावे के शासक महाप्रभु लुम्मण आदि राजा महाराजा, सामन्त एवं राज महिषियाँ विद्यानन्द के निकट दर्शनशास्त्र को अध्ययन करनेवाले संगीतपुर के सालुवेन्द्र भूपाल के आस्थान भूषण, वैयाकरण और महावादी मंत्री चेतरस प्रधानतिलक, देवराय के कुणपति से सम्मानित सुकवि तथा श्रुत कीर्ति के शिष्य मंत्री जैतरस, सौजन्यरत्नाकर, मन्त्रितिलक नागरस विरूपण्ण शासक के द्वारा रक्षित मंत्री देवरस, मल्लिकार्जुन राय के महामन्त्री मल्लप्प नायक, सत्यवादी, सालुव मल्लिराय के मन्त्रिप्रवर एवं वीर नृसिंहराय के द्वारा प्राप्त भाग्यवैभव सङ्करस चेन्नराय पट्टण सम्बन्धी राज्यलक्ष्मी के सम्वर्द्धक तथा मन्त्रिश्रेष्ठ नेमिचन्द्र, अमयवादिपत्तन (?) मुकुन्द, महान् वीर, अमात्यश्रेष्ठ गुम्मय राजसभाओं में सम्मानित बोम्मरस के लघुभ्राता सामभूपाल के मंत्रितिलक देवरस आयुर्वेद विशारद वीरपृथ्वीश सचिव धरणि पण्डित, मन्त्रिशेखर पद्मण्ण श्रेष्ठी, रामराज के अमात्य सणणमरि नायक, देवि श्रेष्ठी के पुत्र चेन्न स्वैमी के भक्त एवं महापराक्रम मन्त्रीश तिम्मि श्रेष्ठी कीर्त्तिशाली, लोकविख्यात एवं धरणीश प्रदत्त सौभाग्य दण्डनाथ वैचप्प, करणिक तिलक आदिनाथ आदि मन्त्री महामन्त्री, दण्डनायक करणिक विजयनगर एवं तलकशासकों के द्वारा सम्मानित, वीरसेन और मुनि विद्यानन्द के चरणसेवक विद्वत्सेव्य एवं विद्वानों के आश्रयदाता, चतुरंग-दक्ष, साहित्य-कोविद एवं टकसाला के अध्यक्ष योरिम श्रेष्ठी, देवराय की सभा में श्रेष्ठि-पद को सुशोभित

करनेवाले, विख्यात दानी और धर्मभूषण के शिष्य सङ्कष्प, विजयकीर्त्ति के पादाराधक, कुवेरसदृश अतुल ऐश्वर्यशाली तथा अनेक सुपात्रों के पोषक पायप्प श्रेष्ठी, नेमिचन्द्र को व्रतगुरु एवं विद्यानन्द को शिक्षागुरु माननेवाले नागण्ण श्रेष्ठी और इनके पिता तम्मराण श्रेष्ठी, आयुर्वेद-मर्मज्ञ, देवेन्द्र के अनुज, नजराय नृप से अतुल ऐश्वर्य को पानेवाले, पण्डित देवरस के पुत्र एवं गोविन्द्राज-रश्सित विजयप्प, चेन्न श्रेष्ठी की दौहित्री, नेमिनाथ चैत्यालय के सामने लोहमानस्तम्भ बनवानेवाली देवरसी, वणिक्प्रवर, महादानी, दुग्गूरु मे जिनमन्दिर बनवाने वाले बोम्मण श्रेष्ठी पायि श्रेष्ठी के पुत्र वेश्यातटाक (?) एवं पोम्बुच्च में पंचवस्ति निर्माण करानेवाले पायगण, सालुव मल्लिराय के शास्त्र-विद्यागुरु, साहित्य-विद्याधर देवरस तथा विजया के पुत्र, सालुव देवराय के आस्थान-कवि और विद्यानन्दि-शिष्य बोम्मरस आदि विख्यात श्रेष्ठी एवं श्रेष्ठि-महिलायें विशेष उल्लेखनीय हैं।

---

(३९) ग्रन्थ नं० २५५/ख

# सारसंग्रह

कर्ता—विजयगण उपाध्याय

---

विषय—वैद्यक

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२ इञ्च चौडाई ६॥। इञ्च पत्रसंख्या २३८

---

प्रारम्भिक भाग—

श्रीमच्चातुर्निकायामरखचरवर नृत्यसंगीतकीर्तिम्
श्यामा.... ... .....शाल सुरपटहादिसत्प्रातीहार्यम्
नत्वा श्रीवीरनाथं भुवि सकलजनारोग्यसिद्ध्यै समस्तै-
रायुर्वेदोक्तसारैरिहममल(?) महासग्रह संलिखामि ॥

× × ×

मध्य भाग—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तिथ्यंशबलमुत्तमम् ।
प्रथमायां तिथौ व्याधिक्तपञ्चस्वेत्तराहत. ॥

अग्निस्तु देवता तत्र तण्डुलेन बलि हरेत् ।
आग्नेय्यां दिशि मध्याह्ने रोगनाशो भविष्यति ॥
द्वितीयायां तिथौ व्याधिवर्तते दशरात्रक ।
गन्धमाल्यबलिं दद्यादेव वैद्यस्तु देवते (?) ॥

× × ×

*अन्तिम भाग*—

प्रमेहविंशतिप्रदरामयघ्नं पित्तान्तक कामिलपाण्डुनाशम् ।
प्रवेभ्यानुकूले (?) तद्सेव्यपथ्य श्रीपूज्यपादप्रभुभाषितञ्च ॥

यह ग्रन्थ राजकीय प्राच्य पुस्तकागार मैसूर से लिपिबद्ध कराया गया है। वहाँ की मुद्रित ग्रन्थ तालिका में ग्रन्थ का नाम 'अकलंक-संहिता' और कर्त्ता का नाम अकलंक भट्ट लिखा मिलता है। अतः लेखक ने भी भवन की प्रति में अकलंक संहिता एवं अकलंक भट्ट ही क्रमशः लिख छोड़ा है। पर इसका कोई आधार नज़र नहीं आता। 'नमः श्रीवर्द्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने। कल्याणकारको ग्रन्थः पूज्यपादेन भाषितः ॥ सर्वलोकोपकारार्थं कथ्यते सारसंग्रह ॥ 'श्रीमद्राम्भग्गुभ्रताविविमलश्रीवैद्यशास्त्रार्णव भास्वत् सुसारसंग्रहमहाधामान्विते सग्रहे। रुद्रक्ष्मपालय सद्विजयणोपाध्याय सन्निर्मिते ग्रन्थेऽस्मिन्मधुपाकसारनिचये पूर्णो भवेन्मङ्गलम् ॥' बल्कि ग्रन्थगत इन पद्यों से ज्ञात होता है कि इसका नाम सारसंग्रह है। आयुर्वेदाचार्य श्रीयुत प० विमलकुमार जैन का भी कहना है कि बुन्देलखण्ड में भी इसकी एक-दो प्रतियाँ मुझे दृष्टिगोचर हुई हैं और उन प्रतियों में इसका नाम सारसंग्रह ही मिलता है। बल्कि उन्होंने इस ग्रन्थ को आद्योपान्त देखकर बतलाया है कि इसमें पृष्ठ १ से ५ तक समन्तभद्र के रसप्रकरण सम्बन्धी कुछ पद्य, पृष्ठ ६ से ३२ तक पूज्यपादोक्त रस, चूर्ण गुटिकादि कुछ उपयोगी प्रयोग एवं पृष्ठ ३३ से श्रीगोम्मटदेव के मेरुदण्डतन्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ की नाड़ी परीक्षा एवं ज्वर निदानादि कुछ भाग हैं। इनके अतिरिक्त भिन्न भिन्न प्रकरणों में सुश्रुत, वाग्भट, हरीतमुनि एवं रुद्रदेव आदि वैद्याचार्यों के भी मत मिलते हैं। पृष्ठ ३ के ऊपर उद्धृत प्रथम श्लोक का पूर्वार्द्ध आचार्य समन्तभद्र के रत्नकरण्ड-श्रावकाचार सम्बन्धी मंगलाचरण के पद्य का ही पूर्वार्द्ध है। केवल उत्तरार्ध इस ग्रन्थ के संग्रहकर्त्ता विजयण्ण का है।

यह भवन की प्रस्तुत प्रति बड़ी ही अशुद्ध है। इस की शुद्ध प्रति खोज कर प्रकाश में लाने की जरूरत है। साथ ही साथ समन्तभद्र, पूज्यपाद एवं गोम्मटदेव के मौलिक वैद्यक ग्रन्थों का अन्वेषण करने की परमावश्यकता है। बल्कि कम से कम यत्र-तत्र प्राप्त होनेवाले इन आचार्यजी के पद्यों को संगृहीत कर अनुवाद के साथ शुद्ध

एव सुन्दर रूप मे प्रकाशित करने की ओर जैन वैद्यो का ध्यान अवश्य आकृष्ट होना चाहिये। भवन की प्रति इस समय मेरे सामने नहीं है। भवन की यह प्रति भवन की ओर से 'भास्कर' मे क्रमश प्रकाशित 'वैद्यसार' में इस ग्रन्थगत पूज्यपाद के प्रयोगो को सकलित कर देने के लिये उक्त वैद्यसार-सग्रह के सम्पादक के पास भेज दी गयी है। इसी से इस पर विशेष प्रकाश नहीं डाला जा सका।

---

(४०) ग्रन्थ नं० २५६/ख

# हरिवंशपुराण

कर्त्ता—श्रुतकीर्ति

---

विषय—पुराण

भाषा—अपभ्रंश

लम्बाई १३। इञ्च चौडाई ८। इञ्च

---

प्रारम्भिक भाग—

ससिइणवोमसइ ते हरिवसइ पावतिमिरहा विमलयरि गुणगणजसभूसिय सिया सुव्वयणेमिय हलिय हरि ॥छ॥ सुरवइतिरीडरयण ... ...५ ।ह ... पणविवि त परमजिण हरिवसकयत्तणं वुच्छे। हरिवसु पयोरुहु अइरवणु इह भरह-खित्तसरवरउवणु, तह णालुसुकुलणिवणियरत्तुणु त ठियउ मणोहरु भाइ वणु, तहकणिय-सउणयणिवदसार कुसुमसरपमुहकेसरिकुमार, पडवजायवभोजयणरेसा ते पत्तमणोहरणिरव सेसा, जरसिद्ध दुवणु तहु णिसिसमाणु कोवग्गिहेमु जमरइमाणु, तं णेमिहलीहरि-किरउजोय, सोविलयपत्तु इहमन्वलोय, परसंताविरु पुणु अवरुजाइ धरयट्ठियरावणयमुहराइ, हरिवसु कमलु वियसिउ विसेसा तहु किंत्तिसुरहिअलिमहियरेसा, ढुकिय सोहइ सेविज्जमाणु णिसि सामिउ ज उडगणसमाणु, तहु कित्तण महु उल्लसइ चित्तु सकमिदायारहुरुव्वित्तु, पारभमि जइ हरिवसु अज्ज णिद्धण कह हुति अभिट्ठकज्ज, जइ महु पसियतु तिलोयणाह रिसहाइवीर असरणसणाह ॥ घत्ता ॥ ठियणतचउट्ठहु महुमइ भट्ठहु देहु सुमइ पहु णित्थरमि सरसइ सुपसायइ मणि अणुरायइ जिमि हरिवसु पवित्थरमि ॥

× × × ×

*मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ १०२ पंक्ति ५)—*

जिणवर चउवीसहं पणमिय सीसइं चउविहु णियजहु वित्थरइं जिम कंसु उवयाउ णिउ अमराणउ उग्गसेणवधणुकरइं ॥ रायधम्मबहुसच्छहु लक्खणु पयडइ तह वत्थुपउ वियक्खणु असिवरधणुहवाणगुणभेयइं मुग्गलछुरिकाचक्कअणेयइं, हयगयरहिवर जं वाहि जाहि वागराग कसअकुसविज्जहिं भवरवयरिरणजिप्पणहेयइं पुच्छिउ उवएसइ इयभेयइं, जे गिल्यइ छड कम्म मणुवयाइं त उवएसु करइ अणुयाइं पडिम पयवइं सावयधम्मइ दसणपमुहउ देसइ रम्मइ, धम्मझाणइं य कालु गमतउ पुरपरियण पिय मणु रंजतउ पत्थंतरि तह कसु परायउ चलण णवेइ विणतमणुरायउ सामिय तय मिवरणु इहमि आउहु विज्ज सिसणु समोहमि ता वत्थुपव उत्त भज्जिइ दियाइय विजाभासु करिज्जइ धणुगुण वाणविहाण अणेयइं ते वत्थुपव कहिय बहुभेयइं असिवरभुग्गलकुतविहाणइं मालछुम पाइकवियाणइं ॥ घत्ता ॥

× × × ×

*अंतिम भाग —*

अह कमेण सुयणाणि उक्किणाइं भरहंगदेसइ परअणइं पचमकालचलणपाइमिल्लइ तह उवण आयरियमहल्लइ कुदकुंदगणियणअणुकमइ जायइ मुणिगणविविहसइअमइ गयवालत्तवागे सरिणकइ वदिसवमयाइरमइसुकइ पहाचदगणिणा सुदपुराणइ पोमण दि तह पट्टउवएणाइ पुणु सुमवददेवकमजायइ गणि जिणचंद तहयविक्खायइ विज्जाणदि कमेण उवणाइं सीलवत बहुगुणसपुण्णइ पोमणंदिसिसकमिण ति जायइ जे मंडलायरिय विक्खायइ मालवदेस धम्मु सुपयासणु मुणिनेमिदकित्ति मिउभासणु तह सिसु अमियवाणि गुण गारउ तिहुवणकित्तिपवो हणसारउ तह सिस्सु सुहकित्ति गुरभत्तउ जहिं हरिवसपुराणु पउत्तउ मझउमिउबुद्धिविहीणउ पुव्वयिरिहिं वयणपयलीणउ अप्पबुद्धिमुहदोसुए लिक्खउ जं मसुद्धु तं सुद्धकरिव्वउ पयहु सयलगय सुपमाणहु तेरसहसहसइ सुह जाणहु । सवतु विक्कमनेणरेसइं सहसुपंचसय बावणसेसइं मंडवगडुवर मालवदेसइ साहिगयासु पयाव असेसइ णयरजेरहइजिणहरु चगउ णेमिणाहजिणबिंबु अभगउ गथुसउण्णु तत्थ इहु जायहु चउविहु ससुणि सुणि अणुरायउ भावकिण्हपचमिससिवारइ हत्थणखत्तसमपुगुणालइ गथु सउणु जाउ सुपवित्तउ कम्मर कयणिमित्तजउसउ पढहिं सुणहिं जे भावण भावहि पयडअक्खराइ णिसुणावहि तह सम्मत्तरयणावरलाहइ समापयअभचलसुह साहहि ॥ घत्ता ॥ हरिवसपुराणहु तिजयपहाणहु भाउ करिवि जेसरहहिं सियपुत्तकलत्तइं लाहमहतइं समापयगइ पुणु लहहि ॥१८॥ धुवइ ॥ वीरजिणिंदचलणा पणविणु जिणसासण महतहो दिसउ समाहिमतिमश्रयणाइ धम्मणुराय रत्तहो ।

इय हरिवंसपुराणे मणहरेसरायपुरिसगुणालंकारकलाणे तिहुवणकित्तिसिस्सभव्व-सुदसुदकित्ति महाकव्वु विरयतो णाम सह तालिसतिमो संधिपरिच्छेओ समत्तो ॥

निवनियरुनेसुरट्ठो जयसिरिधम्माणुराउ मणिहिट्ठो नंदउ जणचउपवरो सुहसंपइदाण-कप्पयरो ॥१॥ चउविहमुणिगणसहिओ नंदउ सिरिनंदिसघु सुरमहिओ नंदउ जयसिरिजुत्तो सावयगणु धम्मअणुरत्तो ॥२॥ हरिवंसगयणचंदो जह दंसणसयलभुवण आणंदो तयलोयसुजसुपवरो नेमिजिणो भवियदुरियहरो ॥३॥ रिसहु अजिउ संभउ जिणंदु अभिणंदणु सामिउ सुमतिपहमुपहु पुणु सुपासु ससिपहुसिवगामिउ सुविहु सुसीयलु पुणु सियंसु वसुपुज्जु गुणोहरु विमल णंतु पुणु धरमसतिसजुयइं कुंथु अरु मल्लिसुसुव्वउ नमिसुनेमिजिणु पासु पहाणइ वीरसहियभवियणहु देंति सिरिसति समाणइं। सिद्धि संवत् १५५३ वर्षेक्रवदि २ द्रजगुरौ दिने अद्येह श्रीमण्डपाचलगढदुर्गे सुलितान गयासदीन राज्ये प्रवर्तमाने श्रीदमोवादेसे महाखानभोजखानवर्तमाने जेरहटस्थाने सोनीश्रीईसुरप्रवर्तमाने श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनन्दिदेव तस्य शिष्य मण्डलाचार्यदेविंद्रकीर्तिदेव तच्छिष्य मण्डलाचार्य श्रीत्रिभुवनकीर्तिदेवान् तस्य शिष्य श्रुतकीर्ति इदं हरिवंशपुराणं परिपूर्णं कृतम्। भव्यजनपठनार्थं ज्ञानावरणकर्मक्षयार्थं श्रीपार्श्वनाथचैत्यालये श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरं परमभक्त्या प्रणम्य तथा श्रुतगुरुभक्तिपूर्वक नमस्कृत्य ग्रन्थस्य अविघ्नसमाप्तिनिमित्तम्।

इस हरिवंशपुराण के रचयिता यशःकीर्ति ने अपने को श्रीमूलसंघ*, बलात्कारगण एवं सरस्वतीगच्छ के प्रातःस्मरणीय आचार्य कुन्दकुन्द की परम्परा मे बतलाया है। आप के प्रगुरु मण्डलाचार्य देवेन्द्रकीर्त्ति और गुरु मण्डलाचार्य भुवनकीर्त्ति है। कुछ विद्वानों का खयाल है कि धर्मशर्माभ्युदय के टीकाकार यशःकीर्त्ति और आप एक ही हैं। परन्तु यह धारणा भ्रान्त है। क्योंकि धर्मशर्माभ्युदय के टीकाकार यशःकीर्त्ति ललितकीर्त्ति के शिष्य हैं, आप भुवनकीर्त्ति के।

इस ग्रन्थ के अन्त मे दो प्रशस्तियाँ दी गयी है। पहली अपभ्रंश भाषा में एवं दूसरी संस्कृत में। पहली प्रशस्ति मे लिखा है कि यह ग्रन्थ वि० सं० १५५२ माघकृष्णा पञ्चमी सोमवार मालवदेशान्तर्गत मण्डवगढु में, शाहि गयासुद्दीन के शासन-काल में जेरहट नगर में समाप्त हुआ। दूसरी प्रशस्ति में लिखा है कि सिद्धि संवत् १५५३ आश्विन कृष्णा द्वितीय को मण्डपाचलगढ दुर्ग मे, सुलतान गयासुद्दीन के राज्यकाल में, दमोवादेश में, महाखान-भोजखान की मौजूदगी में जेरहट नगर के पार्श्वनाथ जिनालय में यह ग्रन्थ परिपूर्ण

* अपभ्रंश-प्रशस्ति में नन्दिसंघ लिखा हुआ है।

हुआ। समझ में नहीं आता है कि इन प्रशस्तियों में ग्रन्थ समाप्ति के काल के सम्बन्ध में ऐसा मतभेद क्यों हुआ? यह लेखक की भी भूल नहीं मानी जा सकती। क्योंकि दोनों सम्वतों में मास, तिथि आदि भी भिन्न भिन्न दी गयी है। क्या इनमें से सं० १५५२ को ग्रन्थ-प्रारम्भकाल एवं सं० १५५३ को ग्रन्थ समाप्ति-काल माना जा सकता है? मगर प्रशस्तियों से स्पष्टतया इन बातों की सूचना नहीं मिलती है। ऐसी अवस्था में इसका निर्णय और और प्रतियों की छान बीन से ही किया जा सकेगा। साथ ही साथ इस बात का भी पता लगाना है कि जरहट का वर्तमान नाम क्या है और पहली प्रशस्ति में मालवदेश और दूसरी प्रशस्ति में कमायौं देश क्यों लिखा गया। सुना है कि वर्तमान सागर जिले में भी जरहट नामक एक प्राचीन स्थान है। मण्डपगढ़ या मण्डपाचलगढ़ वर्तमान मेवाड़ राज्यान्तर्गत 'मांडल गढ़ का किला' ही मालूम होता है। शाहि या सुल्तान गयासुद्दीन भी खिलजी वंशज गयासुद्दीन ही ज्ञात होता है जो कि १५ वीं शताब्दी में गुजरात में शासन करता था। क्योंकि अजमेर पर मुसल्मानों का अधिकार होने पर यह किला भी उनके हस्तगत हो गया था।

दूसरी शुद्ध प्रति मिलने पर सम्भव है कि इन दोनों प्रशस्तियों की बातों पर मैं कुछ विशेष प्रकाश डाल सकूं। भवन की यह प्रति बहुत अशुद्ध है। दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ इस ग्रन्थ-तालिका में निम्नलिखित ग्रन्थ भी हरिवंशपुराण (प्राकृत) के कर्त्ता यशःकीर्ति के बतलाये गये हैं —

(१) पाण्डवपुराण (प्राकृत) (२) गौतमचरित्र (३) प्रबोधसार (४) जगत्सुन्दरी (५) शृङ्गारार्णवचन्द्रिका (६) श्रावकाचार (७) धर्मशर्माभ्युदय की टीका (८) प्रद्युम्नकाव्य की टीका। परन्तु इनमें जगत्सुन्दरी शृङ्गारार्णवचन्द्रिका एवं धर्मशर्माभ्युदय की टीका तो इनकी है ही नहीं। क्योंकि जगत्सुन्दरी के कर्त्ता यशःकीर्त्ति विमलकीर्त्ति के शिष्य हैं*। शृङ्गारार्णवचन्द्रिका के कर्त्ता विजयवर्णी हैं‡, न कि यशःकीर्त्ति। धर्मशर्माभ्युदय के टीकाकार ललितकीर्त्ति के शिष्य हैं—यह बात ऊपर लिख चुका हूँ। गौतमचरित्र एक प्रकाशित हो चुका है। पर इसके कर्त्ता धर्मचन्द्र हैं। शोलापुर से एक प्रबोधसार भी प्रकाशित हो गया है, इसके कर्त्ता महापण्डित यशःकीर्त्ति बताये गये हैं। प्रशस्ति नहीं होने से यह कहना कठिन है कि यह यशःकीर्त्ति यही हैं या दूसरे। इसी प्रकार शेष कृतियों को भी बिना देखे इन्हीं का कहना ठीक नहीं है।

* देखें—'अनेकान्त' वर्ष २, किरण १२ पृष्ठ ६८६।

‡ देखें—'प्रशस्तिसंग्रह' पृष्ठ ७३।

(४१) ग्रन्थ नं० २५७/ख

# रामपुराण

कर्त्ता—सोमसेन

विषय—पुराण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२ इञ्च    चौडाई ७ इञ्च    पत्रसंख्या २४६

प्रारम्भिक भाग—

वन्देऽहं सुव्रत देवं पञ्चकल्याणनायकम् ।
देवदेवादिभि' सेव्यं भव्यवृन्दसुखप्रदम् ॥१॥
शेषान् सिद्धान् जिनान् सूरीन् पाठकान् साधुसंयुतान् ।
नत्वा वक्ष्ये हि पद्मस्य पुराणं गुणसागरम् ॥२॥
वन्दे वृषभसेनादीन् गणाधीशान् यतीश्वरान् ।
द्वादशाङ्गं श्रुत यैश्च कृतं म त्तस्य हेतवे ॥३॥
वन्दे समन्तभद्रान्त श्रुतसागरपारगम् ।
भविष्यत्समये योऽत्र तीर्थनाथो भविष्यति ॥४॥
कुन्दकुन्दं मुनिं वन्दे चतुरं गुणचारणम् ।
कलि-काले कृत येन वात्सल्यं सर्वजन्तुषु ॥५॥
आचार्यं जिनसेनाख्य वन्दे ग्रन्थस्य सिद्धये ।
सिद्धान्तत्रयकर्त्तारं मोक्षमार्गोपदेशकम् ॥६॥
पूज्यपादप्रभाचन्द्राकलंकादीन् यतीश्वरान् ।
नमामि धर्मतीर्थस्य कर्त्तॄन् प्राणिहितङ्करान् ॥७॥
रविषेण महाचार्यं वन्दे शास्त्राब्धिपारगम् ।
यत्प्रसादात्करोम्यत्र पुराणं रामसंज्ञकम् ॥८॥
गुणभद्रं यतिं वन्दे सर्वजीवदयापरम् ।
महापुराणकर्त्तारं ज्ञातारं सर्वसविरम् (?) ॥९॥
चारुकीर्त्तिमुनीन्द्रं च वन्दे श्रेष्ठार्थसिद्धिदम् ।
समाधिशीलसम्पन्नं हिताहितोपदेशकम् ॥१०॥

वन्देऽहं भानुतुल्यास्य त्रिकालं योगमुक्तिदम् ।
सप्तशतमुनीन्द्रैश्च सत्यपात्रश्च योऽभवत् ॥११॥
महेन्द्रकीर्तियोगीन्द्रौ नमामि कलिधारयोः ।
ययोः पादान् प्रसेवन्त मत्यादिनरपुंगवाः ।
सरस्वतीं नमाम्यादौ जिनेन्द्रमुखसंभवाम् ।
द्वादशाङ्गस्फुरद्रूपां मोक्षस्यानुपमप्रदाम् ॥१२॥

× × ×

मध्य भाग (पत्रपृष्ठ १२५, पंक्ति ५)—

चतुर्मासेऽथवा ताते गते स्वस्थाद्रिविहृश्वर ।
समं गंतु समुद्यत दृष्ट्वा यक्षो यत्त्वरम् ॥१॥
क्षन्तव्यं देव किञ्चिच्चाविनयाद् दुष्कृतं मया ।
भवादृशां नराणाञ्च (?) कः शक्नोतीह सेवितुम् ॥२॥
ततो जगाद रामोऽपि नम्रीभूतं सुराधिपम् ।
यदपराधमस्माकं क्षन्तव्यं च त्वया सुर ॥३॥
इति वचनमाकर्ण्य सन्तुष्टो यक्षनायकः ।
नत्वा स्तुत्वा च तं रामं पूजतिस्म सुभक्तितः ॥४॥
स्वयं प्रभाभिधं हारं ददौ रामाय सम्भ्रद ।
कुण्डले लक्ष्मणाय द्वे शशिसूर्यसमप्रभे ॥५॥

× × ×

अन्तिम भाग :—

विक्रमस्य गते शाके षोडशशतवर्षके ।
षट्पञ्चाशत्समायुक्ते मासे श्रावणिके तथा ॥
शुक्लपक्षे त्रयोदश्यां बुधवारे शुभे दिने ।
निष्पन्नं चरितं रम्यं रामचन्द्रस्य पावनम् ॥
महेन्द्रकीर्तियोगीन्द्रप्रसादाच्च कृतं मया ।
सोमसेनेन रामस्य चरितं पुण्यहेतवे ॥
यदुक्तं रविषेणेन पुराणं विस्तराद्वरम् ।
तदेवात्र च संक्षिप्य यत्किञ्चित्कथितं मया ॥
गर्वेणा न कृतं शास्त्रं नापि कीर्तिफलाप्तये ।
केवलं पुण्यहेत्वर्थं स्तुता रामगुणा मया ॥

नाहं जानामि शास्त्राणि न छन्दो न च काव्यक्रम ।
तथापि च विनोदेन कृतं रामपुराणकम् ॥
ये सन्ति सुधियो लोके शोधयन्तु च ते मम ।
शास्त्रं परोपकाराय यत्कृतं ब्रह्मणा भुवि ॥
कथामात्रस्य पद्मस्य वर्तते वर्णनां विना ।
अस्मिन् ग्रन्थे तु भो भव्या शृणवन्तु सावधानतः ॥
रविषेणाकृते ग्रन्थे कथा यावत्प्रवर्तते ।
तावच्च सकलात्रापि वर्तते वर्णनां विना ॥
विस्ताररुचय शिष्या. ये सन्ति शुद्धमानसा. ।
ते शृणवन्तु पुराणं हि रविषेणस्य निर्मितम् ॥
रविषे विषये रम्ये जित्वरे नगरे वरे ।
मन्दिरे पार्श्वनाथस्य सिद्धो ग्रन्थ शुभे दिने ॥
सेनगणेऽति विख्याते गुणभद्रोऽभवन्मुनि ।
पट्टे तस्यैव संजात सोमसेनो यतीश्वरः ॥
तेनेदं निर्मितं शास्त्रं रामदेवस्य भक्तित ।
तस्य निर्वाणहेत्वर्थं सत्क्षेपेण महात्मना ॥
यस्मिन्निह पुरे शास्त्रं शृणवन्ति च पठन्ति च ।
तत्र सर्वं सुखं क्षेमं परं भवति मङ्गलम् ॥
धर्माल्लभन्ते शिवसौख्यसम्पद् स्वर्गादिराज्यानि भवति धर्मात् ।
तस्मात्कुरुध्वं जिनधर्ममेकं विहाय पापं नरकादिकारकम् ।
सेनगणे यतिपरमपवित्रे वृषभसेनगणधरस्तु वंशे ।
पण्डितवर्गसुखकरस्तु जात सोमसुसेनयतिवरमुख्यः ॥
श्रीमूलसंघे वरपुष्कराख्ये गच्छे सुजातो गुणभद्रसूरिः ।
पट्टे च तस्यैव सुसोमसेनो भट्टारकोऽभूद्विदुषां शिरोमणिः ॥

इति श्रीरामपुराणे भट्टारकश्रीसोमसेनविरचिते रामस्वामिनो निर्वाणवर्णनो नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽधिकारः ।

प्रशस्ति से सिद्ध होता है कि इस रामपुराण के रचयिता भट्टारक सोमसेन ने इस ग्रन्थ को विक्रम संवत् १६५६ श्रावण शुक्ल त्रयोदशी बुधवार को समाप्त किया था। सम्भवत आप के गुरु महेन्द्रकीर्त्ति और योगीन्द्र थे। यह बात प्रारंभिक भाग के १२ वें पद्य

अन्तिम भाग के तीसरे श्लोक से व्यक्त होती है। किन्तु प्रस्तुत महेन्द्रकीर्त्ति सम्वत् १९९२ तथा संवत् १८५२ वाले महेन्द्रकीर्त्ति द्वय से भिन्न हैं। मालूम नहीं होता कि यह महेन्द्रकीर्त्ति कौन हैं। साथ ही साथ उल्लिखित योगीन्द्र का भी पता नहीं लगता। क्योंकि अभी तक इनकी कोई साहित्यिक कृति मेरे दृष्टिगोचर नहीं हुई है। प्रारंभ एवं अन्त में सोमसेन ने लिखा है कि मैंने यह रामपुराण रविषेणाचार्य-कृत पद्मपुराण के आधार पर बनाया है। साथ ही साथ यह भी बताया है कि मैंने पद्मपुराण के वर्णन भाग को छोड़कर के केवल उसके कथा भाग का ही आश्रय लिया है।

इस ग्रन्थ की समाप्ति प्रणेता ने रविपे (?) देशान्तर्गत जिरहर नगर के पार्श्वनाथ मन्दिर में की है। पर पता नहीं लगता है कि रविपे देश एवं जिरहर नगर वर्तमानकालीन किस प्रान्त या स्थान का नाम है। बल्कि 'रविपे' यह नाम अशुद्ध ज्ञात होता है। दूसरी प्रति में इसका प्रकृत पता लगाना परमावश्यक है। 'दिगम्बर जैन ग्रन्थ-कर्ता और उनके ग्रन्थ' इस ग्रन्थ सूची से रामपुराण के रचयिता सोमसेन के निम्नलिखित ग्रन्थों का भी पता लगता है :—

(१) स्थण्डिल्य होमपूजा (२) गुरुपञ्चम्युद्यापन (३) प्रद्युम्नचरित (४) सप्तर्षि-पूजा (५) भक्तामरोद्यापन (६) यशोधरचरित (७) त्रिवर्णाचार (८) दशलक्षणपूजाविधान (९) कर्म दहन व्याख्यान (१०) लघुशान्तिक। ये सभी ग्रन्थ इन्हीं की कृतियाँ हैं या कतिपय इस बात का निर्णय सभी ग्रन्थों के अवलोकन से ही किया जा सकता है। बल्कि प्रद्युम्नचरित के कर्त्ता सोमसेन (वि० सं० १६२५ लगभग) काष्ठासंघी थे। परन्तु इस रामपुराण के रचयिता सोमसेन अपने को मूलसंघ पुष्करगच्छ एवं सेनगण के सुविख्यात आचार्य गुणभद्र के पट्टधर बतलाते हैं। साहित्यिक दृष्टि से यह ग्रन्थ साधारण श्रेणी का है। क्योंकि इसके संस्कृत में कोई साहित्यिक छटा नहीं दिखती है।

(४२) ग्रन्थ नं० २६३/ख

# रत्नत्रयोद्यापनपूजा

कर्त्ता—भट्टारक विश्वभूषण

विषय—पूजा

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १० इञ्च | चौडाई ८ इञ्च | पत्रसंख्या ३२

*प्रारम्भिक भाग*—

श्रीवर्द्धमानमानम्य गौतमादींश्च सद्गुरून् ।
रत्नत्रयविधिं वक्ष्ये यथाम्नायं विमुक्तये ॥१॥
परमेष्ठी परंज्योति' परमात्मा जगद्गुरुः ।
ज्ञानमूर्त्तिरमूर्त्तोऽपि भूयान्नो भवशान्तये ॥२॥
निर्विकल्पं निराबाधं शाश्वदानन्दमन्दिरम् ।
तोष्टुवीमि चिदात्मान स्वस्वरूपोपलब्धये ॥३॥
यस्य ज्ञानान्तरिक्षैकदेशे सर्वं जगत्त्रयम् ।
एकमृक्षमिवाभाति तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥४॥
अनन्तानन्तसंसारपारावारैकतारकम् ।
परमात्मानमव्यक्त ध्यायाम्यहमनारतम् ॥५॥
अनन्यशरणीभूयात्तद्गुणग्रामलब्धये ।
स्फुरत्समरसीभावमितोऽहं चिद्घनं स्तुवे ॥६॥

× × ×

*मध्य भाग (परपृष्ठ २०, पंक्ति ४)*—

यत्सत्त्वसन्तानविचित्रमैतत्त्रैलोक्यमप्याशु वशीकरोति ।
वात्सल्यमात्मोदयकारणं तत् सुदर्शनांगं हृदये ममास्ताम् ।
ॐ ह्रीं वात्सल्यांगाय नम ।
सम्यक्त्वभावेन सुदृष्टिजातं शान्त्यष्टकं स्तोत्र(?) विधाय यत्न ।
वात्सल्यतां प्राह मनीषिकीभि रसालहव्यैः प्रयजामि साधुम् ॥
ॐ ह्रीं पूज्यपादकं (?) वात्सल्यांगाय जलम् ।

पञ्चादशांगेन निरूपितं यत् ह्यकम्पनेनापि प्रकाशितं च ।
तत्प्राश्रयामि सत्कं रसाले मुनीन्द्रमध्य गतकल्मषं यत् ॥
ॐ ह्रीं अकम्पनाचार्यप्रकाशितकादशाङ्गवात्सल्यांगाय जलम् ।
सातद्धेन पूर्वाधि चतुर्दश प्रकाशितम् ।
तद्वात्सल्यगुणैर्यान सयुजे सयजे फलै ॥
ॐ ह्रीं चतुर्दशवात्सल्यसहितसाधुभ्यो जलम् ।
यत्रांगदत्तरूपेणापि श्रावकाचारभाषितम् ।
सोऽद्यापि वर्तते लोके तं यजे तिन्दु नम्बके ॥
ॐ ह्रीं यत्रांगदत्तरूपोपासकाचारवात्सल्यांगाय नमः ।
श्रुतबाह्यजिनैः प्रोक्तं चतुर्विंशतिवन्दनात् ।
तत्र वात्सल्यकं जातं तत् यजे वसुद्रव्यकैः ॥
ॐ ह्रीं श्रुतबाह्यचतुर्विंशतिवात्सल्यांगाय जलम् ।

× × ×

*अन्तिम भाग—*

प्रजापतिभाद्रसिते द्वितीयायां षडेष (षडेम) समशशिवत्सरेषु । रत्नत्रय पाठ (?) चकार पूर्णं मंडिल (?) पूजां मुनिविश्वभूष ।

शोधयन्तु महापाठं धार्मीकसुगिरा चिरम् ।
क्षम्यतां क्षम्यतां देवि ! यद्दिकर्ड मया कृतम् ॥
यावन्मेरुनदीगंगा यावत्खे च सुतारका ।
तावत्तिष्ठतु मे पाठो मिथ्यात्वतम (?) भास्करः ॥

इति विशालकीर्त्यात्मजो भट्टारकविश्वभूषणविरचिता रत्नत्रयोद्यापनपूजा समाप्ता ।

इस रत्नत्रयोद्यापन के कर्त्ता भट्टारक विश्वभूषण अपने को विशालकीर्त्ति का आत्मज बतलाते हैं। यह भ० विश्वभूषण वि० सं० १८१०* में होनेवाले भक्तामरकथा, पद्म पुराण इन्द्रध्वजपूजा पद्मावतिक्षेत्रपालशान्ति आदि के रचयिता ही ज्ञात होते हैं। इनके दशलक्षणोद्यापन जिनगुणसम्पत्युद्यापन आदि दो-तीन उद्यापन सम्बन्धी ग्रन्थ भी मिलते हैं। इससे भी उपर्युक्त अनुमान प्रबल प्रतीत होता है। पर एक बात है—प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रशस्ति में 'षडेवसप्तशशिवत्सरेषु पाठ देख कर उक्त सम्वत् पर कोई सन्देह कर सकता है। पर यह लेखक की ही भूल ज्ञात होती है। वास्तव में यह प्रति है भी बहुत अशुद्ध। मेरे खयाल से इसका पाठ षडेभसप्तशशि होना चाहिये। इस पाठ से उक्त निर्णीत समय करीब-करीब असन्दिग्ध हो जाता है।

---

* देखें—'दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' पृष्ठ २७।

(४३) ग्रन्थ नं० $\frac{५४}{क}$

# प्रतिष्ठा-तिलक

कर्त्ता—ब्रह्मसूरि

विषय—प्रतिष्ठा

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८। इञ्च | चौड़ाई ६॥। इञ्च | पत्र-संख्या ११२

प्रारम्भिक भाग —

जिनाधीशमहं वन्दे विध्वस्ताशेषकल्मषम् ।
सर्वज्ञं सर्वशास्त्रस्य कर्त्तारं त्रिजगत्प्रभुम् ॥१॥
गणाधीशं श्रुतस्कन्धमपि नत्वा त्रिशुद्धितः ।
प्रतिष्ठातिलकं वक्ष्ये पूर्वशास्त्रानुसारतः ॥२॥
जिनेन्द्रप्रतिमान्यासः प्रतिष्ठेति निगद्यते ।
तत्पूर्विका जिनेज्या हि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥३॥

× × ×

मध्यम भाग (पूर्व पृष्ठ ६४, पंक्ति १२)—

अथाकारशुद्धिविधानम् ।
वेदिबाह्यप्रदेशे मकरमरकुमाराद्युपस्कारयुक्ते
कूटाग्रावष्टपत्राम्बुजलिखितपरब्रह्ममुख्यामराढ्ये ।
विन्यस्य स्नानपीठे कुशनिहितजिनार्चामुपानीय भक्त्या
संस्थाप्याग्रस्थकुम्भांबुभिरहमुचिताकारशुद्धिं विधास्ये ॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं भू स्वाहा । जन्माभिषेकस्यानीयमाकार-
शुद्ध्यभिषेकप्रारम्भे स्नानपीठाग्रतः पुष्पाञ्जलिं कुर्यात् ।
भेरीगभीरनादेत्यादि पद्यपठनानन्तरं वाद्यं पृथग्वाद्यघोषणम् ।

× × × ×

अन्तिम भाग—

देशेषु सर्वेष्वधिकः सुपाण्ड्यदेशो नदीमातृकदेवमातृकः ।
घोचाम्रमोचादिसुपूगवृत्तैः संवर्द्धमानो बहुशालिभिश्च ॥१॥

नानाविधैर्वर्द्धितधान्यवर्गैंवृं चैरशेषै फलदै सुयोग्यै ।
धामाति सत्पद्मसरोवरैश्च श्रीराजहंसैर्विहगैनरैश्च ॥२॥
द्वीपं गुडीपत्तनमस्ति तस्मिन् हर्म्यावलीतोरणराजिगोपुरै ।
मनोहरागारसुरत्नसंभृतैर्ध्यानजैर्मात्यमरावतीव ॥३॥
तत्राजराजेन्द्रसुपारव्यभूप कीर्त्या जगद्व्यापितवान् सुधर्मा ।
रराज भूमाविति निस्सपत्नं कलान्वितं सद्विबुधैः परीतं ॥४॥
तत्रास्ति सद्रत्नसुवर्णतुंगचैत्यालये श्रीवृषभेश्वरो जिन ।
विशालनन्दीशमुनीन्द्रमुख्या सच्छास्त्रयन्तो मुनयो वसन्ति ॥५॥
श्रीमूलसंघव्योमे दुर्मारते भानितीर्थकृत ।
देशे समन्तभद्राख्यो मुनिर्जीयात्पदर्द्धिक ॥६॥
तत्त्वार्थसूत्रव्याख्यानगन्धहस्तिप्रवर्तक ।
स्वामी समन्तभद्रोऽभूद् देवागमनिदेशक ॥७॥
शिष्यौ तदीयौ शिवकोटिनामा शिवायन शास्त्रविदां वरेण्यौ ।
कृत्स्नं श्रुतं श्रीगुरुपादमूले ह्यधीतवन्तौ भवत कृतार्थौ ॥८॥
तदन्वयेऽभूद्विदुषां वरिष्ठ स्याद्वादनिष्ठ सकलागमज्ञ ।
श्रीवीरसेनोऽजनि तार्किकश्री प्रध्वस्तरागादिसमस्तदोष ॥९॥
तच्छिष्यप्रवरो जातो जिनसेनमुनीश्वर ।
यद्वाङ्मयं पुरोरासीत् पुराणं प्रथमं भुवि ॥१०॥
तदीयप्रियशिष्योऽभूत् गुणभद्रमुनीश्वर ।
शलाका पुरुषा यस्य सूक्तिभिर्भूषिता सदा ॥११॥
गुणभद्रगुरोस्तस्य माहात्म्यं केन वर्ण्यते ।
यस्य वाक्सुधया भूमावभिषिक्ता जिनेश्वरा ॥१२॥
तच्छिष्यानुक्रमे जातेऽसंख्येये विश्रुतो भुवि ।
गोविन्दभट्ट इत्यासीद् विद्वान् मिथ्यात्ववर्जित ॥१३॥
देवागमनसूत्रस्य श्रुत्वा सद्दर्शनान्वित ।
अनेकान्तमतं तस्य बहु मेने विदांवर ॥१४॥
नन्दनास्तस्य संजाता वर्धिताखिलकोविदा ।
दाक्षिणात्या जयन्त्यत्र स्वर्णयक्षीप्रसादत ॥१५॥
श्रीकुमारकवि सत्यवाक्यो देवरवल्लभ ।
उद्यद्भूषणनामा च हस्तिमल्लाभिधानक ॥१६॥
वर्द्धमानकविश्चेति षडभूवन् कवीश्वराः ॥१६॥

सम्यक्त्वं सुपरीक्षितुं मदगजे मुक्ते सरण्यांपुरे-
-शस्याः(?) पाण्ड्यमहीश्वरेण कपटाद्धन्तुं स्वमभ्यागते।
शैलूष जिनमन्त्रवारिगामुपास्यास्मिन्मदं ध्वसति
श्लोकेनागतहस्तिमल्ल इति य प्रख्यातवान् सूरिभि' ॥१७॥
श्रीवत्सगोत्रजनिभूपणगोपभट्टप्रेमैकधामतनुजो भुवि हस्तियुद्धात्।
नानाकलाम्बुनिधिपाण्ड्यमहीश्वरेण श्लोके' शतै सदसि सत्कृतवान् बभूव ॥१८
तद्धस्तिमल्लतनुजो भुवि सुप्रसिद्ध सद्धर्मपालकमहोज्ज्वलकीतिनाथः।
तद्धर्म (?) वर्द्धयितुमप्यखिलागमज्ञ श्रीपार्श्वपण्डितबुधोऽविशदन्यराजकम् ॥१९।
श्रीवत्सकाश्यपवशिष्टप्रशस्तभारद्वाजोल्लसद्गौतमभार्गवेश्च।
आत्रेयकौण्डिनिमहत्समगस्त्यविश्वामित्रै सुगोत्रै सह बन्धुभिश्च ॥२०॥
एकैकस्मात्कारणात्तां पुरीं तद्धित्वा गत्वा विपयसंमंगल च।
तस्मात्ते सार्द्ध सदाचारनिष्ठो देश चागाद् होय्सालाख्यं प्रतीतम् ॥२१॥
पृथ्वीतले होय्सलदेशनाम्नि छत्रत्रयाभिख्यपुरी च तस्याम्।
सराजते चाष्टमतीर्थनाथो विचित्रचित्रान्वितचैत्यगेहे ॥२२॥
तच्चन्द्रनाथजिनपादसरोजभृङ्गस्तां पार्श्वपण्डितबुधोऽप्यविशत्सबन्धु'।
तत्सूनवश्चन्द्रपचन्द्रनाथवैजय्यजीयाश्च क्रमाद्बभूवु ॥२३॥
चन्द्रनाथसुताद्याश्च सर्वे हेमाचले स्थिता.।
तस्यानुजौ यथायोग्यदेशे वास गतौ च तौ ॥२४॥
सद्वर्तनानुचरितोज्ज्वलचन्द्रपार्यसूनु सुशास्त्रविदभूद्विजयद्विजोत्तमः।
तत्संभव. सकलशास्त्रकलाधिनाथो नाम्नेन्द्र××× विजयो जिनयाजजूक' ॥२५॥
शास्त्राम्भोजातभास्वज्जिनपदनखसच्चन्द्रिकासच्चकोरम्
विजयेन्द्र सुपुवे हि तत्प्रणयिनी श्रीनामधेया च यम्।
सद्धर्माब्धिसुपूर्णचन्द्रममलं सम्यक्त्वरत्नाकरम्
तत्पुत्र खलु ब्रह्मसूरिणमिति ख्यातभाग्योदयम् ॥२६॥
षट्कर्मवैद्यागमशब्दशिल्पज्योतिष्ककाव्योचितनाटकञ्च।
सङ्गीतसाहित्यकवित्वछन्दोऽलङ्कारशास्त्रं स विवेद सर्वम् ॥२७॥
वृत्तानुयोगाद्युदितप्रपञ्चविस्तारवेदी सकलानुवादी।
तत्त्वचतुर्धाहतवेदशास्त्रकलागुरु स्वकुलमलञ्चकार।२८॥
श्रीचन्द्रप्रभतीर्थनाथपदपद्मामोदसंसक्तभृङ्ग' ।
सर्वकलाविचारचतुरः संसेव्यमानो नृपैः।

घार्गोकादिसुरादिपत्तसपयि' सयङ्गसस्थापक ।
धाम्देयीभजनादितीद्मसदत् तदुब्रह्मसूरी मुदा ॥२९॥
सार सारं प्रोक्तमित्यत्र शास्त्रे सय लक्ष्य लक्षणान्त्येतदेव ।
छन्दोऽलङ्कारादितश्चानघ सञ्जीयाल्लोके बन्धुरं सर्वकालम् ॥३०॥
इति प्रतिष्ठातिलकोदितक्रमात् करोति यो भव्यजनप्रमोदताम् ।
जिनप्रतिष्ठां परमार्थनिष्ठां सब्रह्म यास्यत्यचिरात् सुसौख्यम् ॥३१॥

इस प्रतिष्ठातिलक के कर्त्ता ब्रह्मसूरी ने अपना वंश परिचय निम्नलिखित रूप से दिया है —

पाण्ड्यदेश में गुडिपत्तन नाम का एक नगर है। वहाँ का राजा पाण्ड्यनरेन्द्र है। वह बड़ा ही धर्मिष्ठ शूरवीर, कला कुशल तथा पण्डित सेवी है। वहाँ श्रीवृषभ तीर्थङ्कर का एक मनोज्ञ रत्नजटित सुवर्णमय मन्दिर है। इसमें विशाखनन्दी आदि अनेक विद्वान् मुनिगण वास करते हैं। कवि ने आगे प्रख्यात पुराणप्रणेता भगवज्जिनसेनाचार्य की परम्परागत श्रीगोविन्द भट्ट को ही अपना पूर्वज बतलाकर निम्न प्रकार से अपनी वंश तालिका अंकित की है :—

गोविन्दभट्ट के श्रीकुमार सत्यवाक्य देवरवल्लभ उदयभूषण हस्तिमल्ल और वर्द्धमान नाम के छः लड़के थे। सुप्रसिद्ध कवि हस्तिमल्ल के पुत्र पण्डित पार्श्व हुए। वह अपने पिता के समान यशस्वी, धर्मात्मा एवं शास्त्रमर्मज्ञ विद्वान् थे। पीछे पार्श्व पाण्ड्य देश से काश्यप वशिष्ठ आदि अपने गोत्रज बन्धुओं के साथ होयसलदेश में आकर रहने लगे। यह होयसलवंश पश्चिमी घाटी की पहाड़ियों में कडूर जिले के मुडुगिरि तालुक में अंगडि नामक स्थान से प्रादुर्भूत हुआ था। इसका प्राचीन नाम शशकपुर है। यहाँ पर सळ नामक एक सामन्त ने एक व्याघ्र से जैनमुनि की रक्षा करने के हेतु होय्सळ नाम प्राप्त किया था। विद्वानों का कहना है कि प्रारम्भ में होय्सळवंश पहाड़ी था। पीछे विनयादित्य के उत्तराधिकारी ने अपनी राजधानी शशकपुरी से वेलूर में हटाली। द्वारसमुद्र (हलेबीडु) में भी उनकी राजधानी थी। इस वंश के विष्णुवर्द्धन के समय होय्सळ नरेशों का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। इसी समय गंगवाडि का पुराना राज्य सब उनके अधीन हो गया था और इन्होंने कई अन्य प्रदेशों को भी जीत लिया था। प्रारम्भ में विष्णु वर्द्धन जैनधर्मावलम्बी रहा; किन्तु पीछे वैष्णव हो गया था। फिर भी जैनधर्म से उसकी सहानुभूति बनी ही रही। होय्सळ राज्य पहले चालुक्य-साम्राज्य के अन्तर्गत था। पीछे नरसिंह के पुत्र वीरबल्लाल के समय में वह स्वतन्त्र हो गया। यह वंश जैनियों का विशेष रूप से पृष्ठपोषक था।

उल्लिखित राज्य की राजधानी ग्रन्थकर्ता ने छत्रत्रयपुरी लिखी है। ऐतिहासिक प्रमाणों से इस वश की राजधानी केवल तीन स्थानों मे थी, जिनके नाम क्रम मे शशकपुर, वेलूर और द्वारसमुद्र थे। पता नहीं कि छत्रत्रयपुरी मे ब्रह्मसूरी जी किस स्थान का संकेत करते है। बहुत सभव है कि द्वारसमुद्र को ही इन्होंने छत्रत्रयपुर लिख दिया हो।

अस्तु, उक्त पार्श्वपण्डित को चन्द्रप, चन्द्रनाथ और वैजय्य नाम के तीन पुत्र थे। इनमे से चन्द्रनाथ और इनके परिवार पीछे हेमाचल मे जा बसे। शेष दो भाई अन्यान्य स्थानों मे चले गये। चन्द्रप के पुत्र विजयेन्द्र हुए और इन्हीं के लडके इस ग्रन्थ के रचयिता परम धार्मिक सर्व शास्त्र-निष्णात एव चारित्रचंचरीक श्रीब्रह्मसूरी जी है।

---

## (४४) ग्रन्थ नं० ५५/क

# प्रतिष्ठाकल्प

कर्त्ता—भट्टाकलक

---

विषय—प्रतिष्ठा

भाषा—संस्कृत

*लम्बाई ८। इञ्च* *चौडाई ६।।। इञ्च* *पत्र-सख्या ८०*

---

*प्रारम्भिक भाग—*

विज्ञानं विमलं यस्य विशद विश्वगोचरम्।
नमस्तस्मै जिनेन्द्राय सुरेन्द्राभ्यर्चितांघ्रये ॥१॥
वन्दित्वा च गणाधीशं श्रुतस्कन्धमुपास्य च।
ऐदंयुगीनानाचार्यानपि भक्त्या नमाम्यहम् ॥२॥
अथ श्रीनेमिचन्द्रीयप्रतिष्ठाशास्त्रमार्गत.।
प्रतिष्ठायास्तदाद्युत्तरांगानां स्वयमङ्गिनाम् ॥३॥
इन्द्रप्रतिष्ठावभृथाद्यन्तानां कृत्स्नकर्मणाम्।
अवान्तरक्रियाणां च लक्षणप्रतिपादकः ॥४॥
प्रतिष्ठाकल्पनामासो ग्रन्थ सारसमुच्चयः।
भट्टाकलकदेवेन साधु सगृह्यते स्फुटम् ॥५॥

पुरातनेषु तन्त्रेषु किञ्चित्सूत्रसमुच्चितम् ।
किञ्चित्प्रयोगससिद्ध किञ्चित्कर्मान्तरस्थित ॥६॥
मन्त्रकाण्डगत किञ्चित् किञ्चित्तन्त्रान्तरोदितम् ।
इत्येव विप्रकीर्ण तल्लक्ष्म नैकत्र सञ्चितम् ॥७॥
अवगम्य सदेकत्र नैव प्रकृतकर्मणा ।
सिद्धयर्थं प्रौढसाध्य त मन्त्राना नैव गोचर ॥८॥
अतो मन्दावबोधार्थं लक्ष्म यत्तत्र योजितम् ।
तत्रैव नियतेऽत्रेति सफलो मे परिश्रम ॥९॥
श्लोका पुरातना केचिद्विलिख्य लक्ष्मबोधका ।
प्रायस्तदनुसारेण मलुकाश्च क्वचित्क्वचित् ॥१०॥
यत्साक्षाच्च लक्ष्मैवद्वयधानेऽप्यपेक्षितम् ।
सगृह्यते तदेवात्र न पारपर्यवाञ्छितम् ॥११॥
पारम्पर्याद्विवेशात्र सहिता शास्त्र भाषितम् ।
नोच्यते किन्तु तद्वेद (?) यच्छास्त्रान्तरगोचर ॥१२॥
तथाहीह प्रतिष्ठांगक्रियानिर्वहणाय हि ।
तत्कर्तुर्नियमेनात्रोपासकाध्ययनागमे ॥१३॥
पुराणाध्यात्मशकुनवास्तुज्योतिषशास्त्रगम् ।
सामान्यैरपि यजाद्यै र्महाप्रकृत्योभिभि ॥१४॥
ज्ञानमावश्यक तत्तु सख्या व्याकरणाद्विना ।
न भवेदिति तल्लक्ष्म वेद्य तत्रैव नात्र तु ॥१५॥

× × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ३१ पंक्ति ६)—

अथैवमङ्कुरारोपस्तत्रातो होमकर्म च ।
इत्युक्त प्राक् ततोऽत्रैव तद्विधानं निरूप्यते ॥
मण्डपस्य च वेद्याश्च कुण्डानां चापि लक्षणम् ।
वक्ष्यतेऽग्रे प्रपञ्चेन यागशालाप्रवेशने ॥
अत्र कर्मानुपूर्वी च तत्तल्लक्ष्म च केवलम् ।
पूर्वसूरिवचो दृष्ट्वा कथ्यते साधु सत्वरा ॥
होमकर्मणि पूर्वागत्वेन पुण्याहवाचना ।
कर्तव्या सापि सकलपूर्विका सकेवला ॥

इति सकलय्य पुण्याहे क्रियमाणे तदन्तरे।
अस्ति क्रियाविशेषोऽतः सावम्बप्राग्निरूपिते ॥
होतुरासनविन्यास कुण्डात् प्रागिति वक्ष्यते।
तस्य कुण्डस्य चेत्येतद्दुभयोरन्तरालके ॥
प्रस्थं प्रस्तीर्य शालीनां तदूर्ध्वं तण्डुलानपि।
तत्र स्वस्तिकमालिख्य कोष्ठगश्रीचतुष्टयम् ॥
मायाक्षरं वृतं तत्र तीर्थाम्बुपरिपूरितम्।
पल्लवादर्शशोभाढ्यगन्धपुष्पाक्षताञ्चितम् ॥
तण्डुलामात्रपिहित कुशकूर्चोपलक्षितम्।
श्वेतसूत्रावृतं पञ्चरत्नकाञ्चनगर्भितम् ॥
श्रीखण्डपंकसलग्नाक्षतविक्षेपलक्षितम्।
धौतप्रत्यग्रधवलवासोमण्डितकन्दरम् ॥

× × ×

*अन्तिम भाग—*

इत्यार्षे श्रीमद्भट्टाकलकदेवसंगृहीते प्रतिष्ठाकल्पनाम्नि ग्रन्थे सूत्रस्थाने प्रतिष्ठाद्वितीय-तृतीयदिवसविधिनिरूपणीयो नामैकोनविंश॰ परिच्छेद ।

प्रतिष्ठाकल्प, अकलङ्कसंहिता अथवा अकलङ्कप्रतिष्ठापाठ के नाम से प्रसिद्ध यह ग्रन्थ राजवार्तिक, अष्टशती आदि ग्रन्थों के रचयिता विक्रम की ८वीं शताब्दी के विद्वान् भट्टाकलङ्कदेव की कृति माना जाता है। इस ग्रन्थ में तो इसकी रचना का समय नहीं दिया है, परन्तु ग्रन्थों की सन्धियों में ग्रन्थकर्त्ता का नाम 'भट्टाकलङ्कदेव' अवश्य दिया है। सन्धियो में ही नहीं, पद्यों मे भी ग्रन्थकर्ता ने अपना नाम भट्टाकलङ्कदेव प्रकट किया है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में पण्डित जुगलकिशोर जी मुख्तार का कहना है कि सन्धियों और पद्यों में भट्टाकलङ्कदेव का नाम लगा होने से ही यह ग्रन्थ राजवार्तिक के कर्त्ता का बनाया हुआ समझ लिया गया है। अन्यथा, ऐसा समझने में और कथन करने की कोई दूसरी वजह नहीं है। भट्टाकलङ्कदेव के बाद होनेवाले किसी माननीय प्राचीन आचार्य की कृति मे भी इस ग्रन्थ का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। प्राचीन शिलालेख भी इस विषय में मौन हैं। साथ ही साथ भट्टाकलंकदेव के साहित्य और उन की कथन-शैली से इस ग्रन्थ के साहित्य और कथनशैली का कोई मेल नहीं है। इसका अधिकांश साहित्य-शरीर ऐसे ग्रन्थों के आधार पर बना हुआ है, जिनका निर्माण भट्टाकलङ्कदेव के अवतार से बहुत पीछे के समयों मे हुआ है।

मुख्तार साहब ने अपनी इस बात को प्रमाणित करने के लिये भगवज्जिनसेन (वि० ९वीं शताब्दी)-प्रणीत आदिपुराण आचार्य शुभचन्द्र (लगभग वि० ११वीं शताब्दी)-कृत ज्ञानार्णव, भट्टारक एकसन्धि (वि० १३वीं शताब्दी)-रचित एकसंधि संहिता, पण्डित आशाधर (वि० १३वीं शताब्दी)-प्रणीत जिनयज्ञकल्प श्रीब्रह्मसूरि (लगभग वि० १५वीं शताब्दी)-विरचित प्रतिष्ठापाठ, श्रीनेमिचन्द्र (लगभग वि० १६वीं शताब्दी)-अङ्कित प्रतिष्ठातिलक, श्रीसोमसेन (वि० १७वीं शताब्दी)-प्रणीत त्रिवर्णाचार के पद्यों को उद्धृत किया है। इन पद्यों में मंगलाचरण भी गर्भित है। पं० जुगल किशोर जी के ख्याल से इसकी रचना विक्रम की १६ वीं या १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई है और यह अकलंक या अकलंकदेव नाम के किसी भट्टारक या विद्वान् की रचना है। मालूम होता है कि इन्होंने अपने नाम के साथ स्वयं ही 'भट्ट' की महत्वसूचक उपाधि को धारण करना पसन्द किया है। इस सम्बन्ध में विशेष बात जानने के लिये 'ग्रन्थ परीक्षा भाग ३य का अवलोकन करना चाहिए।

---

(४५) ग्रन्थ नं० $\frac{५७}{क}$

# परसमय ग्रन्थ

कर्ता—(संगृहीत)

---

विषय—जैनाचारमण्डन

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८॥ इन्च | चौड़ाई ६॥। इन्च | पत्र-संख्या २०

---

*प्रारम्भिक भाग—*

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥
कथमुत्पद्यते धर्मः कथं धर्मो विवर्द्धते।
कथं संस्थाप्यते धर्मः कथं धर्मो विनश्यति॥
सत्येनोत्पद्यते धर्मो दयादानेन वर्द्धते।
क्षमया स्थाप्यते धर्मः क्रोधलोभाद्विनश्यति॥
अहिंसासत्यमस्तेय त्यागो मैथुनवर्जनम्।
पञ्चस्वेतेषु धर्मेषु सर्वे धर्माः प्रतिष्ठिताः॥

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ १०, पंक्ति ८)—

कैवर्तीगर्भसंभूतो व्यासो नाम महामुनि ।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् (?) ॥१०४॥
उर्वशीगर्भसभूतो वशिष्टस्तु महामुनि ।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥१०५॥
चाण्डालीगर्भसभूतो विश्वामित्रमहामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥१०६॥
शील प्रधान न कुल प्रधान
कुलेन किं शीलविवर्जितेन ।
बहो (?) नरा नीचकुलेषु जाता
स्वर्ग गता शीलगुणस्य धारिणः ॥१०७॥

इति मार्कण्डेयपुराणे, भविष्यपुराणे, विष्णुपुराणे, पद्मपुराणे (च) ऋषिकुलाधिकार ।

ब्रह्मचर्यं भवेन्मूलं सर्वेषां व्रतधारिणाम् ।
ब्रह्मचर्यस्य भंगे तु सर्वं व्रतं (व्रत सर्वं) निरर्थकम् ॥१०८॥
सुखशय्यासन वस्त्र तांबूलं स्नानमण्डनम् ।
दन्तकाष्ठं सुगन्धं च ब्रह्मचर्यस्य दूषणम् ॥१०९॥
एकतश्चतुरो वेदा ब्रह्मचर्यन्तु एकत ।
एकत सर्वपापानि मद्यं मांसं च एकत ॥११०॥
आरंभे वर्तमानस्य हिंसकस्य युधिष्ठर ।
गृहस्थस्य कुत शौच मैथुनाभिरतस्य च ॥१११॥
मैथुनं ये न सेवन्ते ब्रह्मचारि(चर्य)दृढव्रता ।
ते संसारसमुद्रस्य पारं गच्छन्ति मानवा ॥११२॥

इति शिवपुराणे ब्रह्मचर्याधिकार ।

× × ×

अन्तिम भाग—

मूर्खास्तपोभि कृशयन्ति देह ।
बुधा मनोदेहविकारहेतुम् ॥
श्वा क्षिप्तमस्त्रं ग्रसते हि कोपात् ।
क्षेप्तारमस्त्रस्य च हन्ति सिंह ॥१९०॥

कायस्थित्यर्थमाहार कार्य ज्ञानार्थमिष्यते ।
ज्ञानं कर्मविनाशाय तन्नाशे परमं पदम् ॥१९१॥

नार्थे पदात्पदमपि व्रजति त्वदीयो
व्यावर्तते पितृवनाच्च न (च) बन्धुवर्ग ॥
दीर्घे पथि प्रवसतो भवतस्सखैक ।
पुण्यं भविष्यति तत क्रियतां तदेव ॥१९२॥

नष्टे वस्तुनि शोभनेऽपि हि तथा शोक समारभ्यते ।
तल्लाभोऽथ यशोऽथ सौख्यमथवा धर्मोऽथवा स्याद्यदि ॥
यद्येकोऽपि न जायते कथमपि स्फारै प्रयत्नैरपि ।
प्रायस्तत्र सुधीर्मुधा भवति क शोकोग्ररक्षोविश (?) ॥१९३॥

त्वं शुद्धात्मा शरीरं सकलमलयुत त्वं सदानन्दमूर्ति ।
देहो दु खैकगेह त्वमसि कलावित्कायमज्ञानपुञ्जम् ॥
त्वं नित्य श्रीनिवास सततविसदृशो शाश्वतैकाङ्गमङ्ग ।
मा मा जीवाऽत्र राग वपुषि भज निजानन्दसौख्योदय त्वम् ॥१९४॥

निश्चेष्टानां वधो राजन् कुत्सितो जगतीपते ।
क्रतुमध्योपनीतानां पशूनामिव राघव ॥१९५॥

यह 'परसमयग्रन्थ एक संग्रहग्रन्थ है। इसे मैंने राजकीय प्राच्यपुस्तकागार मैसूर से लिखवाया था। वहाँ की मुद्रित ग्रन्थतालिका में यह इसी नाम से अङ्कित है। इस ग्रन्थ में संग्रहकर्ता ने जैनधर्म में प्रतिपादित मद्यत्याग मांसत्याग, मधुत्याग, नवनीतत्याग, कन्दमूलत्याग रात्रिभोजनत्याग, जलगालन, आहारदान ब्रह्मचर्य और अहिंसा आदि मान्य आचारों को हिन्दुओं के पद्मपुराण विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिंगपुराण भगवद्गीता और महाभारत आदि ग्रन्थों के प्रमाणोद्धरणपूर्वक पुष्ट किया है। हा एक बात है। वह यह है कि इस ग्रन्थ में जिन ग्रन्थों का हवाला दिया गया है उनके नाम और पद्य मात्र दिये गये हैं। अध्याय, प्रकरण, पृष्ठ आदि का इसमें कुछ भी निर्देश नहीं मिलता है। अत मूलग्रन्थों से अगर कोई इन प्रमाणों को मिलान करना चाहे वह सहज नहीं है।

अस्तु सुप्रसिद्ध श्वेताम्बराचार्य हेमचन्द्रजी के द्वारा रचित 'वेदाङ्कुश' नामक एक लघुकलेवर ग्रन्थ वि० संवत् १९७१ में अहमदाबाद में छपा है। यह 'श्रीहेमचन्द्राचार्य-ग्रन्थावली' का पांचवां ग्रन्थ है। वेदाङ्कुश और परसमयग्रन्थ ये दोनों ग्रन्थ एक ही विषय के हैं। बल्कि वेदाङ्कुश के बहुत से पद्य परसमयग्रन्थ में यथावत् और बहुत से पाठभेद

के साथ मिलते हैं। फिर भी परसमयग्रन्थ के कर्त्ता वेदाङ्कुश के कर्त्ता से भिन्न ज्ञात होते हैं। प्रतिपादित विषयों का क्रम भी दोनों का भिन्न भिन्न है। बल्कि वेदाङ्कुश मे परसमयग्रन्थ की अपेक्षा विषय का बाहुल्य है। वेदाङ्कुश मे जहां क्रमश परोपकार, धर्म, सत्य, निन्दा, दया आदि २५ विषयो पर प्रकाश डाला गया है, वहां परसमयग्रन्थ मे उपर्युक्त कतिपय परिमित विषयों पर ही प्रकाश डाला गया है। वेदाङ्कुश मे सर्वप्रथम परोपकार पर प्रकाश डाला गया है और परसमयग्रन्थ में अहिंसा पर। हां, जैसे मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि मद्यत्याग, मांसत्याग, मधुत्याग रात्रिभोजनत्याग और ब्राह्मणत्व आदि कतिपय विषयों के पद्य दोनो मे एक से मिलते हैं। बहुत कुछ सम्भव है कि इस परसमयग्रन्थ को किसी दिगम्बर विद्वान् ने संग्रह किया हो। सुदूरवर्त्ती दक्षिण भारत में प्राप्त इस ग्रन्थ की प्रति भी इसी बात की ओर सकेत करती है। क्योंकि दक्षिण भारत मे कल तक दिगम्बर जैनो का ही बोलबाला रहा है। हां, उपलब्ध प्रति अधूरी मालूम होती है। समग्र प्रति मिलने पर इस पर विशेष प्रकाश डाला जा सकता है। जिन्हें इसको समग्र प्रति उपलब्ध हो उन्हें इस पर अवश्य विशेष प्रकाश डालना चाहिये।

---

(४६) ग्रन्थ नं० ५८/म

# कषायजयभावना या कषायजयचत्वारिंशत्

कर्त्ता—कनककीर्ति मुनि

विषय—उपदेश

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८। इञ्च　　चौडाई ६।॥ इञ्च　　पत्रसंख्या ६

प्रारम्भिक भाग—

येन कषायचतुष्कं ध्वस्त ससारदुःखतरुबीजम्।
प्रणिपत्य त जिनेन्द्र कषायजयभावनां वक्ष्ये ॥१॥
कोपो नाशयति क्षणेन विपुलां ससचित (?) संपदं।
कोपी च त्यजति द्रुतं प्रणयिनीं भार्यां स्वकीयामपि ॥
कोपी पुण्यजनोचितान् सुखकरान् .. ... ... ।
.. . .. ........... .... . . ...॥२॥

भ्रूभंगभंगुरितभीमललाटपट्ट । रक्त विरूपमपि कंपितसर्वगात्रम् ॥
प्र(?)स्खलद्वचनमुद्गतलोलदृष्टिं । कोप करोति मदिरेव जनं विचेष्टम् ॥३॥
नो संवृणोति परिधानमपि स्वकीयं । भाण्डानि चूर्णयति हन्ति शिशून् प्रदुष्ट ॥
स्वात्म(?) परं परिभवत्यपि मुक्तकेश । कोपी पिशाचसदृश स्वकमातनोति ॥४॥
कोपेन कश्चिदपरं ननु हन्तुकामस्तत्रायस स परिशुद्ध करोत्य मूढ ॥
स्वं निर्दहत्यपरमत्र विकल्पनीय । किंवा विडम्बनमसौ न करोति कोप ॥ ॥

× × × × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ५, पंक्ति ४)—

व्याघ्री नो कुपिता न चापि शरभी नैयात्मकी राक्षसी ।
शस्त्रेणापि तथा न पावकशिखा नो शाकिनी डाकिनी ॥
नो वज्राशनिरुत्तमांगपतितो सर्वस्य हानिं तथा ।
दुःखं भूरि यथा करोति रचिता माया नृणां सन्तते ॥२१॥
त्यक्ताशेषपरिग्रहा अपि सदा विज्ञातशास्त्रा अपि ।
शश्वद्द्वादशभेदसततपसा संपीडितांगा अपि ॥
केचिद्गौरव(?)गौरवाभिहितया दुर्लक्ष्यामायया ।
मृत्वा यान्ति कुदेवयोनिमवशा मायां न किं दु त्यजा ॥२२॥
छिद्रावलोकनपरं सततं परेषां जिह्वाद्वयेन भयदा न विषाग्रदृश्यम् ॥
अन्तर्विपाकहृदयं च खलस्वभाव । माया करोति हि नरं स भुजगचेष्टम् ॥२३॥
धीरोऽपि चारुचरितोऽपि विचक्षणोऽपि ॥
शीलालयोऽपि सततं विनयान्वितोऽपि ॥
शुद्धोऽपि वृद्धधनवानपि धीधनोऽपि ।
मायासखः सदसि याति लघुत्वमेव ॥२४॥
आराध्यमानस्य च देववृन्दं । प्रपूज्यमानस्य हि साधुवृन्दम् ॥
निषेव्यमानस्य तु राजलोकं । न मायिनः सिद्ध्यति कार्यजात(ल)म् ॥२५॥

× × × × ×

प्रारम्भिक भाग—

इमे कषाया सुखसिद्धिबाधका इमे कषाया भववृद्धिसाधका ॥
इमे कषाया नरकादिदुःखदा इमे कषाया बहुकल्मषप्रदा ॥२८॥
कषायवान्नो लभते सुदर्शन कषायवान् ज्ञानमपैति नोज्ज्वलम् ॥
कषायवान् चारुचरित्रमुत्याति (?) कषायवान् मुञ्चति शोभनं तपः ॥२९॥

यतः कषायैरिह जन्मवासे समाप्यते दुःखमनन्तपारम् ॥
हिताहितप्राप्तविचारदक्षैरत कषाया खलु वर्जनीया ॥४०॥
इति कनककीर्तिमुनिना कषायजयभावना प्रयत्नेन ।
भव्यचित्तशुद्ध्यै (?) विनयेन समासतो रचिता ।
इति कषायजयचत्वारिंशत्समाप्तः ।

यह कषायजयभावना या कषायजयचत्वारिंशत् ४० पद्यों की एक छोटी सी रचना है। रचना छोटी होने पर भी साहित्यिकदृष्टि से भी इसके पद्य सुन्दर है। इसमें क्रोध, मान आदि कषायों से होने वाली अवस्था एव हानि का दिग्दर्शन कराया गया है। इसके कर्त्ता कनककीर्ति मुनि है। मालूम नहीं होता है कि यह कनककीर्ति मुनि कौन हैं? क्योंकि इस रचना में कहीं भी आप की गुरुपरम्परा आदि का कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता है। सम्भव है कि 'अष्टाह्निकोद्यापन' आदि के कर्त्ता कनककीर्ति भट्टारक ही इसके रचयिता हों।

---

(४७) ग्रन्थ नं० ६१/म

# प्राकृतव्याकरण

कर्त्ता—श्रुतसागर

विषय—व्याकरण
भाषा—संस्कृत एव प्राकृत

लम्बाई ८।।। इञ्च चौडाई ४।।। इञ्च पत्रसंख्या १५२

प्रारम्भिक भाग —

अथ प्रणम्य सर्वज्ञं विद्यानन्दास्पदप्रदम् ।
पूज्यपादं प्रवक्ष्यामि प्राकृतव्याकृतं सताम् ॥

तदार्षं च बहुल तत्प्राकृतमृषिप्रणीतमार्षमनार्षं च बहुलमित्यधिकृतं वेदितव्यं। तत्र ऋ ॠ ऌ ॡ ऐ औ ङ ञ श ष प्लुतविसर्गौ स्वरव्यञ्जनद्विवचनचतुर्थीबहुवचनानि
× × × × ×

मध्यम भाग (पूर्व पृष्ठ ७३, पंक्ति २)—

श्रीकुंदकुंदसूरेर्विद्यानन्दिप्रभोश्च पादकंजम् ।
नत्वा च पूज्यपाद संयुक्तमत परं वक्ष्ये ॥

को वा मृदुत्वतागाश्म्मुक्तशकेषु। मृदुत्वादिषु पञ्चसु शब्देषु य सयुक्तो वर्णस्तस्य ककारो भवति वा। मृदुत्व माउत्तण माउक्कण। कथ्यतेस्म कथ्ण भुग्णपर्ययि (?) दोमादिना घकीभूते लुग्गो लुक्को दुष्ण। दुष्ण दुहो दुक्को। मुक्त मुत्ता मुक्को। शक्त सक्तो सक्को ॥१॥ क्ष सस्य च्छौ च क्वचित् क्षकारस्य खकारो भवति च्छौ वा क्वचिद्भवत। लक्षण लक्खण। क्षय खउ क्षीयते। छिज्जइ च्छिज्जइ खिज्जइ। क्षीण छीण झीण खीण ॥२॥

× × × × × ×

*अन्तिम भाग—*

इत्युभयभाषाकविचक्रवर्तिव्याकरणकमलमार्तण्डताकिंकशिरोमणिपरमागमप्रवीणसूरि श्रीदेवेन्द्रकीर्तिप्रशिष्यमुमुक्षुश्रीविद्यानन्दिभट्टारकान्तेवासिश्रीमूलसंघपरमात्मविद्वत्सूरिश्रीश्रुतसागरविरचिते औदार्यचिन्तामणिनाम्नि स्वोपज्ञवृत्तिनि प्राकृतव्याकरणे सयुक्ताक्षरनिरूपणो नाम द्वितीयोऽध्याय।

इसके कर्ता आचार्य श्रुतसागर एक बहुश्रुत विद्वान् थे। षट्प्राभृत की टीका से एवं यशस्तिलकचन्द्रिकाटीका से ज्ञात होता है कि यह कलिकालसर्वज्ञ कलिकालगौतम स्वामी उभयभाषाकविचक्रवर्ती आदि उपाधियों से विभूषित थे। इन्होंने ९९ महावादियों को पराजित किया था। श्रुतसागर जी मूलसघ सरस्वतीगच्छ और बलात्कारगण के आचार्य पद्म विद्यानन्दिभट्टारक के शिष्य थे। इनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है—पद्मनन्दी देवेन्द्रकीर्ति-विद्यानन्दी।

पं० नाथूरामजी प्रेमी का अनुमान है कि विद्यानन्दी भट्टारक के पट्ट पर आपकी स्थापना नहीं हुई थी। क्योंकि पं० आशाधर के महाभिषेक नामक ग्रन्थ की इनकी टीका के अन्त में विद्यानन्दी के बाद की गुरुपम्परा इस प्रकार है—विद्यानन्दी-मल्लिभूषण-लक्ष्मीचन्द्र*। इससे विदित होता है कि विद्यानन्दी के पट्ट पर मल्लिभूषण की और उनके पट्ट पर लक्ष्मीचन्द्र की स्थापना हुई थी। यशस्तिलकटीका में श्रुतसागर ने मल्लिभूषण को अपना गुरुभ्राता लिखा है। इससे भी सिद्ध होता है कि विद्यानन्दी के उत्तराधिकारी मल्लिभूषण ही हुए हैं।

यशस्तिलकचन्द्रिकाटीका से मालूम होता है कि उस समय गुजर देश के पट्ट पर भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र विराजमान थे और मल्लिभूषण का प्रायः स्वर्गवास हो चुका था। लक्ष्मीचन्द्र के बाद भी श्रीश्रुतसागर के पट्टाधिकारी होने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। सम्भव है कि यह सिंहासनासीन हुये ही नहीं। उल्लिखित पद्मनन्दी विद्यानन्दी आदि सब गुजरात के ही भट्टारक हुये हैं। परन्तु यह मालूम नहीं होता है कि गुजरात

* देखें— षट्प्राभृतादिसंग्रह की भूमिका पृष्ठ ६—७।

की किस स्थान की गद्दी को इन्होंने सुशोभित किया था। क्योंकि पूर्व में ईडर, सूरत, सोजित्रा आदि कई स्थानों में भट्टारकों की गद्दियां रहीं हैं। हां, यशस्तिलक की रचना के समय मालवे के पट्ट पर सिंहनन्दी भट्टारक थे। इन्हीं की प्रेरणा से श्रुतसागरजी ने नित्यमहोद्योत या महाभिषेक की टीका लिखी थी।

श्रुतसागरसूरि के भी अनेक शिष्य रहे होंगे। वैराग्यमणिमाला के रचयिता श्रीचन्द्र आप ही के शिष्य हैं। आराधनाकथाकोष, नेमिपुराण आदि अनेक ग्रन्थों के प्रणेता ब्रह्मचारी नेमिदत्त ने भी श्रुतसागर को गुरुभाव से स्मरण किया है।* नेमिदत्त ने भी वही गुरुपरम्परा दी है, जो श्रुतसागर के ग्रन्थों में मिलती है। श्रुतसागर की यशस्तिलक-चन्द्रिका, महाभिषेकटीका, तत्वार्थटीका, तत्त्वत्रयप्रकाशिका, जिनसहस्रनामटीका आदि अनेक रचनायें मिलती हैं। इनके सिवाय तर्कदीपक, विक्रमप्रबन्ध, श्रुतस्कन्धावतार, आशाधरकृत पूजाप्रबन्ध की टीका, बृहत्कथाकोष आदि और भी कई ग्रन्थ इनके बनाये हुये कहे जाते हैं।

इन्होंने अपने उपलब्ध किसी ग्रन्थ में अपने समय का उल्लेख नहीं किया है। पं० नाथूरामजी प्रेमी का कहना है कि आप विक्रम की १६ वीं शताब्दी में हुए हैं। प्रेमीजी इस सम्बन्ध में निम्नलिखित हेतु उपस्थित करते हैं—

१—ऊपर जिस महाभिषेकटीका की प्रति का उल्लेख किया गया है वह वि० सं० १५८२ की लिखी हुई है और वह भट्टारक मल्लिभूषण के उत्तराधिकारी लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य ब्रह्मचारी ज्ञानसागर के पढ़ने के लिये दान की गई है और इन लक्ष्मीचन्द्र का उल्लेख श्रुतसागर ने स्वयं अपनी टीकाओं में कई जगह किया है।

२—आराधनाकथाकोष के कर्त्ता ब्र० नेमिदत्त वि० १५७५ के लगभग हुये हैं और वे श्रुतसागर के गुरुभ्राता मल्लिभूषण के शिष्य थे।

३—स्वर्गीय बाबा दुलीचन्दजी की सं० १९५४ की बनाई हुई हस्तलिखित ग्रंथों की सूची में श्रुतसागर का समय वि० सं० १५५० लिखा हुआ है।

४—षट्प्राभृतटीका में जगह जगह लोंकागच्छ पर तीव्र आक्रमण किये गये हैं और श्वेताम्बर सम्प्रदाय में से यह मूर्तिपूजा का विरोधी पन्थ वि० संवत् १५०८ के लगभग स्थापित हुआ है। अतएव श्रुतसागर का समय इसकी स्थापना से अधिक नहीं तो ४०-५० वर्ष पीछे अवश्य मानना चाहिये।

अस्तु, श्रुतसागरजी के इस प्राकृतव्याकरण की यह भवन की प्रति अधूरी है। इस प्रति में द्वितीय अध्याय के बाद केवल एक पत्र है। अतः समग्र प्रति को खोजने की जरूरत है।

---

* देखे—'आराधनाकथाकोष' की प्रशस्ति।

(४८) ग्रन्थ नं०-६२/क

# तत्त्वार्थवृत्ति

कर्त्ता—भास्करनन्दी

विषय—दर्शनादि

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३। इञ्च चौड़ाई ८॥ इञ्च पत्रसंख्या १५४

प्रारम्भिक भाग—

जयन्ति कुमतध्वान्तपाटने पटुभास्कराः।
विद्यानन्दास्सतां मान्याः पूज्यपादा जिनेश्वराः॥

अथातिविस्तारमन्तरेण विमतिप्रतिबोधनार्थमिष्टदेवतानमस्कारपुरस्सरं तत्त्वार्थसूत्रपदविवरणं क्रियते तत्रादौ नमस्कारश्लोकः—

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये॥

× × ×

मध्य भाग (पृष्ठ ८३ पंक्ति ६)—

"स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः"

टीका—स्पृश्यते वा स्पर्शनमात्रं स्पर्शः स च मूलभेदापेक्षयाष्टविधो मृदुकठिनगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षविकल्पात्। रस्यते रसनमात्रं वा रसः, स हि पञ्चविधः तिक्ताम्लकटुकषायमधुरभेदात्। गन्ध्यते गन्धनमात्रं वा गन्धः, स द्विधा सुरभिदुरभिभेदात्। वर्ण्यते वर्णनमात्रं वा वर्णः, स पञ्चधा कृष्णनीलपीतशुक्ललोहितभेदात्। त एते भेदाः परस्परभेदोत्तरोत्तरभेदापेक्षया संख्येयासंख्येयानन्तविकल्पाश्च जायन्ते।

स्पर्शश्च रसश्च गन्धश्च वर्णश्च स्पर्शरसगन्धवर्णास्ते सन्ति येषां पुद्गलानां ते स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त इति नित्ययोगेऽत्र मत्वर्थीयस्य विधानं यथा क्षीरिणो न्यग्रोधा इति। ननु 'रूपिणः पुद्गलाः' इत्यत्र रूपाविनाभाविनां रसादीनामपि ग्रहणात्तेनैव सूत्रेण पुद्गलानां रूपादिमत्त्वे सिद्धे अनर्थकमिदं सूत्रमिति। नैष दोषः। 'नित्यावस्थितान्यरूपाणि' इत्यत्र सूत्रे धर्मादीनां नित्यत्वादिप्ररूप(णा)या पुद्गलानामरूपत्वे प्राप्ते तदपवादार्थं रूपिणः पुद्गलाः

इत्युक्तम्। इद तु सूत्रं परमतनिराकरणचिकीर्षया पृथिव्यादीनां सर्वेषां पुद्गलादि-जातिविशेषाणां प्रत्येकं रूपादिचतुष्टय साधारण स्वरूपमित्येतस्यार्थस्य प्रतिपादनार्थं कृतम्। परमते हि स्पर्शरसगन्धवर्णावती पृथिवी। स्पर्शरसवर्णवत्य आप.। स्पर्शवर्णवत्तेज.। स्पर्शवानेव वायुरिति चत्वारश्चैक्यगुणा जात्यन्तरेण स्थिता. पृथिव्यादय इत्युक्तम्। तच्च युक्त्यानुपपन्नमिति स्वपक्षसाधनद्वारेण निराक्रियते। तथा ह्यापो गन्धवत्य। तेजोगन्ध-रसवत्। वायुर्गन्धरसवर्णवान् स्पर्शनत्वात्पृथिवीपर्यायवदिति। एवमुक्तं तावद् युक्तिबला-त्पृथिव्यादीनां पुद्गलपर्यायत्व पुद्गलानां च स्पर्शादिसाधारणगुणत्वमिदानीमसाधारण-पर्याययोगिनः पुद्गलानाह।

× × × × × ×

अन्तिम भाग—

इति यः सुखबोधाख्यां वृत्तिं तत्त्वार्थसङ्गिनीम्।<br>
षट्सहस्रां सहस्रोनां विद्यात्संमोक्षमार्गवित् ॥१॥<br>
यदत्र स्खलितं वात्र विद्वांसो देशशास्त्रयो।<br>
तद्विचार्यैव धीमन्तश्शोधयन्तु विमत्सरा ॥२॥<br>
नो निष्ठीव्येन्न शेते वदति च न परं ह्येहि याहि तु याहि<br>
नो कण्डूयेत गात्र व्रजति न नाशिनोद्धु ह्येद्वानस्ते (?)<br>
नावष्टभ्नाति देणुं निधिरिति यो बद्धपर्यंकयोग।<br>
कृत्वा संन्यासमन्ते शुभगतिरभवत् सर्वसाधुस्सपूज्यः ॥३॥<br>
तस्यासीत्सुविशुद्धदृष्टिविभव सिद्धान्तपारङ्गतः।<br>
शिष्य श्रीजिनचन्द्रनामकलितश्चारित्रभूषान्वित ॥<br>
शिष्यो भास्करनन्दिनामविबुधस्तस्याभवत्तत्त्ववित्।<br>
तेनाकारि सुखादिबोधविषया तत्त्वार्थवृत्ति स्फुटम् ॥४॥

शशधरकरनिकरतारनिस्तलतरतलमुक्ताफलहारस्फुरत्तारानिकुरम्बबिम्बनिर्मलतर-परमोदारशरीरशुद्धध्यानानलोज्ज्वलज्वालाज्वलितघनघाति घनसधोतसकलविमलकेवलाव-लोकितसकललोकालोकस्वभावश्रीमत्परमेश्वरजिनपतिमतविततमतिचित्रचित्स्वभावभावा-भिधानसाधितस्वभावपरमतमहासैद्धान्तजिनचन्द्रभट्टारकस्तच्छिष्यपण्डितश्रीभास्करनन्दि-विरचितमहाशास्त्रतत्त्वार्थवृत्तौ सुखबोधाया दशमोऽध्याय समाप्तः।

वृत्तिगत प्रशस्ति से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वृत्तिकार, पण्डितवर भास्करनन्दी के श्रद्धेय गुरु श्रीजिनचन्द्र भट्टारक हैं। परन्तु इस नाम के कई आचार्य और भट्टारक हो

गये है इसलिये निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि भास्करनन्दी के गुरु जिनचन्द्र कौन है। श्रीयुत प० नाथूराम जी प्रेमी का अनुमान है कि सम्भवत श्रवणबेलगोल के ५५वें शिलालेख में अंकित जिनचन्द्र भास्करनन्दी के गुरु है।* किन्तु यह केवल अनुमानमात्र है। इस बात को प्रेमी जी ने २२ १ ४१ के अपने हाल के पत्र में भी स्पष्ट कर दिया है।

जिनचन्द्र नाम के एक और आचाय हो गये है जो 'धमसग्रहश्रावकाचार' क कर्ता प० मेधावी के गुरु और शुभचन्द्राचाय के शिष्य थे। यह शुभचन्द्राचार्य पद्मनन्दी आचाय के पट्टधर थे और पाण्डवपुराण आदि ग्रन्थों के रचयिता शुभचन्द्र से पहले हो गये हैं। प० मेधावी ने 'त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति ग्रन्थ की दानप्रशस्ति म उनका विशेष परिचय दिया है।† इसी प्रकार एक भास्करनन्दी और हुए है जिनका उल्लेख न्यायकुमुदचन्द्र की वृत्ति में उपलब्ध होता है। यह नन्दिसंघ के आचाय देवनन्दी के शिष्य एव सौख्यनन्दी के प्रशिष्य है।‡ इस समय मेरे सामने और कोई सामग्री न होने के कारण तत्त्वार्थवृत्ति के रचयिता भास्करनन्दी के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डालने में मैं विवश हूँ। अस्तु, इसमें शक नहीं है कि प्रस्तुत तत्त्वार्थवृत्ति की प्रतिपादनशैली सुन्दर और सुगम है। भाषा की दृष्टि से भी यह वृत्ति प्रौढ है। वास्तव म इसका सुखबोध नाम अन्वर्थ है। वृत्ति लगभग पाच हजार श्लोकों में है। इसकी प्रतिपादनशैली प्राय राजवार्तिक से मिलती-जुलती है। राजवार्तिक से यह ग्रन्थ छोटा है अवश्य फिर भी उसमें अनुपलब्ध कुछ वाक्य इसमें मिलते है।

बडे हर्ष की बात है, ज्ञात हुआ है क मैसूर-गवनमेन्ट ओरियन्टल-लायब्रेरी की ओर से यह ग्रन्थ शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। इसके सम्पादक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् श्रीमान् पं० शान्तिराज जी शास्त्री, मैसूर है। यों तो उक्त लायब्रेरी की ओर से अभी तक भट्टाकलंक का 'कर्णाटकशब्दानुशासन' कविसार्वभौम पप का 'आदिपुराण' नयसेन का 'धर्मामृत, जन्न का 'अनन्तनाथपुराण' आदि कई महत्वपूर्ण कन्नड जैन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं परन्तु सस्कृत ग्रन्थों में यह तत्त्वार्थवृत्ति ही सर्वप्रथम ग्रन्थ है। जैनसाहित्य प्रकाशन के सबध में मैसूर-सरकार जो उदारता दिखला रही है, उसके लिये जैन-समाज मैसूर-सरकार का अवश्य ऋणी रहेगा। मै आशा करता हूँ कि उपयुक्त मान्य शास्त्री जी के सहयोग से अब यह प्रकाशन-काय और द्रुत गति से चलेगा। अब मेरे मन में आशा

* देखो—'सिद्धांतसारादिसंग्रह' में ग्रन्थकर्ताओंका परिचय'।

† यह 'प्रशस्ति भवन में मौजूद है।

‡ देखो—'अनेकांत वर्ष १ पृ १३३।

का सवार हो रहा है कि मैसूर-ओरियन्टल लायब्रेरी की उदार एवं गुणग्राहिणी कमेटी तत्वार्थसूत्र की अन्य अप्रकाशित टीकायें (प्रभाचन्द्रकृत आदि), शाकटायनन्यास, शाकटायनमहावृत्ति चिन्तामणि, विद्यानुशासन, एकसन्धिसंहिता, सिद्धिविनिश्चयटीका, न्यायविनिश्चय-विवरण, सत्यशासनपरीक्षा, लोकविभाग, सिद्धान्तसारदीपक, द्विसंधानकाव्य की दि० जैन टीका, वसुनन्दि-प्रतिष्ठापाठ, सटीक प्रायश्चित्तसमुच्चय आदि महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन की ओर भी अवश्य ध्यान देगी।

---

(४६) ग्रन्थ नं० ६३/क

## हरिवंशपुराण

कर्ता—यशःकीर्ति

विषय—पुराण

भाषा—अपभ्रंश

लम्बाई १३॥ इञ्च चौड़ाई ८॥ इञ्च

---

पणविवि जयहंसहो कुणयविहंसहो ।
भवियकमलसरहंसहो पणविवि जयहंसहो ॥
सुणयगहंसहो कह पयडमि हरिवंसहो ॥
जय विसह विसकियविसयपास ।
जय अजिय अजिय हयकम्मपयास ॥
जय संभव भवतरुवरकुठार ।
जय णंदण परिसेसियकुमारि ॥
सुमइ सुमयपयडियपयत्थ ।
जय पउमप्पहि णासियकुतित्थ ॥
जय जय सुपास हयकम्मपास ।
जय चंदप्पह ससितास तास ॥
जय सुविहि सुविहियगहणपवीण ।
जय सीयल जिणवाणिपवीण ॥

जय संय सेयंकिय विगयसेय।
जय वासुपुज्ज तवजलहिमय॥
जय विमल विमलगुणगण महंत।
जय सत व्रत जिणवर अनंत॥
जय धम्म धम्मविसतरित ताव।
जय संति समियसंसारताव॥
जय कुंथ सुरकियसुहुमयाणि।
जय अरि जिणचक्की सयलणाणि॥
जय मल्लि णिहयतिल्लोकमल्ल।
जय मुणिसुव्वय चूरिय तिमल्ल॥
जय णमि जिण विसरहचकणेमि।
जय जहियराय रायमइणेमि॥
जय पास पापरजभयरवाल।
कुल गयणि दिणेसरा सुरणिम्महियमाण॥
जय वीर विहासियणयपमाण।

× × ×

*मध्य भाग (पृष्ठ ५४ पंक्ति ४)—*

सम्यक्त्व पद्मांभोजे सदा भ्रमरायते।
मातु पुमेस साधु (?) घोटाख्यो वर्ता चिरं॥
स अणहे धासरे सण्हणे सरे।
पडु सहाउवयिट्ठउ ता यक्के हुआ सविणयभूय॥
करमउलेप्पुण विट्ठउ विणवय सो जि भो णिसुणि देव।
मडलिणार णाहहिं विहिय सेव माय दिणयरि
पडु तुमहु राउ पिय सुन्दरि।
देवहि पडराउ इ पेसिउ तुम्हहं पासु तेण॥
णिसुणइं भायउ कज्जो ण जेण।
तुमयहो सुय होवइ भय विणीय
कवेण पीड़ सीलेण सीय पायाह वल्लह जणमयाह इट्ठ
सिंगाह करति णवेण दिट्ठि
जोवणथंति य आयो विराउ

परिणावमि यहेह बहु भाउ
गोमितिय वयणो गाउ चलेर
जोपहावे हय तासु देइ
अमंतिय गारवइ सव्व आय
तुम्हह आपसिय आम्हि राय
गिय गावरगु लेप्पिण वेइ चलहु
पहु अगुमतु मा किवि करहु
वक्काहरगाहि पुज्जियउ दूउ
दुमयहे सहाए जो सारभूउ
पुगु पडवियरु सरसुह विचरकु
चल्लिय कुतियथो सिय सपरकु
पडय कुमायवि पाइ सपता सम्माणियइ ताइ

× × ×

*अन्तिम भाग—*

दिवढा जसमुगि पत्थय विसुवि ।
फाणविउ हरिवस चरित्तु वि ॥
जामहिगाहु सायरु चडु दिवावरु।
तागाकउ दिवढाहु कुलु जे विराहु हि चरियउ कुरुवं सहसहियउ
फाराविउ हयपावमालु ॥२२॥

इय हरिवस पुरागो कुरुवंसाहिट्टिए विवुहुचित्तागुरंजगो ।
सिरि गुगाकित्तिसीसमुगिजसकित्तिविरइये ॥
साहु दिवढा गाम किए गोम गांह जुधिट्ठर भीमज्जुण गिव्वाण गमगा ।
णिकुल सहदेव सव्वट्ठ सिद्धिगमगावणगोते गह मो सग्गो
समत्तो ॥ संधि ॥

इस हरिवंशपुराण के रचयिता, गुणकीर्त्ति के शिष्य यश कीर्त्ति हैं। श्रवणबेलगोल के शिलालेखों में गुणकीर्त्ति नाम के दो व्यक्तियों का उल्लेख उपलब्ध है अवश्य, परन्तु उन लेखों में इनका कोई विशेष परिचय नहीं मिलता। इस नाम के और भी कई व्यक्ति हो गये हैं, किन्तु हरिवंश-पुराण के कर्त्ता इन यश कीर्त्ति से उनका सम्बन्ध देखने में नहीं आता। ऐसी अवस्था में यह नहीं कहा जा सकता है कि अमुक गुणकीर्त्ति ही हरिवंश-

पुराण के प्रणेता यशःकीर्त्ति के गुरु हैं। इसी प्रकार यशःकीर्त्ति नाम के भी अनेक व्यक्ति हो गये हैं जैसे—एक गोपनन्दी के शिष्य * दूसरे धर्मशर्माभ्युदय के टीकाकार ललित कीर्त्ति के शिष्य। सारांश यह है कि इस हरिवंश पुराण के रचयिता यशःकीर्ति का या उनके गुरु गुणकीर्त्ति का विशेष परिचय मुझे प्राप्त नहीं हो सका इसलिये उनके सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला जा सका।

---

## (५०) ग्रन्थ नं० ६६/क

# नेमिपुराण

कर्त्ता—ब्रह्मचारी नेमिदत्त

---

विषय—उपदेश

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२ इञ्च चौड़ाई ५॥ इञ्च पत्रसंख्या १६७

---

*प्रारम्भिक भाग—*

श्रीमन्नेमिजिनं नत्वा लोकालोकप्रकाशकम् ।
तत्पुराणमहं वक्ष्ये भव्यानां सौख्यदायकम् ॥१॥
नमद्देवेन्द्रमौलीनां लसत्कान्तिसरोजले ।
यस्य पादद्वयं प्राप प्रोल्लसत्कमलश्रियम् ॥२॥
सर्वसौभाग्यसन्दोहः सच्छक्रसमर्चितः ।
योऽभवत्सर्वसौख्यानां कारणं भव्यदेहिनाम् ॥३॥
यस्य नामस्मृतिश्चापि करोति परमं सुखम् ।
प्रभा वा भास्करस्योच्चैर्विकाशं कमलाकरे ॥४॥
तं नमामि जगत्सारं स्वर्गमोक्षसुखप्रदम् ।
नेमिनाथं महाभक्त्या तत्पुराणप्रसिद्धये ॥५॥
वन्दे श्रीवृषभाधीशं सुराधीशार्चितक्रमम् ।
येनाभ्यधायि सद्धर्मो विनेयानां विनाश्रमम् ॥६॥

---

* देखें—'जैनशिलालेखसंग्रह'।

अजित जितकन्दर्पं त नमामि जगद्धितम् ।
यो जिता नैव प्रतात्मा रागद्वेषादिशत्रुभि ॥७॥
सम्भवं भवसन्तापसन्दोहक्षयकारकम् ।
वन्देऽभिनन्दन देव देवदेवाधिनायकम् ॥८॥
सस्तुवे सुमतिं देवं भव्यानां सुमतिप्रदम् ।
पद्मप्रभ प्रभाधीश प्रसिद्धमहिमास्पदम् ॥९॥
श्रीसुपार्श्वं जगत्सार सम्पदा शर्मसाधनम् ।
चन्द्रप्रभ प्रभासार सर्वसङ्क्लेशनाशनम् ॥१०॥
पुष्पदन्त लसत्कुन्दपुष्पसत्कान्तिसुन्दरम् ।
वन्देऽहं शीतल देव शीतलोत्तमवाग्भरम् ॥११॥
श्रेयोजिन नमाम्युच्चै स्मारश्रेयोनिबन्धनम् ।
वासुपूज्य जगत्पूज्य प्रबुद्धकमलाननम् ॥१२॥
नमामि विमलाधीशं केवलज्ञानभास्करम् ।
वन्देऽनन्तजिन भक्त्यानन्तानन्तसुखाकरम् ॥१३॥
धर्मं सद्धर्मतीर्थेश सुरासुरसमर्चितम् ।
शान्तिनाथं भजाम्येतं सर्वभव्यैकसम्मतम् ॥१४॥
वन्दे कुन्थुजिनाधीश कुन्थ्वादौ च दयास्पदम् ।
अरं देवं सदा वन्दे सार सारपदप्रदम् ॥१५॥
मल्लिं मोहारिसन्मल्ल वन्दे नि शल्यधामकम् ।
सुव्रत तं नमाम्येत मुनिसुव्रतनायकम् ॥१६॥
श्रीनेमिं सस्तुवे देवं नमद्देवेन्द्रसंस्तुतम् ।
नेमिनाथं जगन्नाथ वन्दे सर्वामरार्चितम् ॥१७॥
प्रसिद्धमहिमासार पार्श्वनाथ जिनेश्वरम् ।
वन्दे श्रीवीरतीर्थेशं वीरवीर सुखाकरम् ॥१८॥
एते तीर्थकराधीशा सर्वदेवेन्द्रवन्दिता ।
सन्तु मे शान्तिकर्त्तारश्चान्ये कालत्रयोद्भवा ॥१९॥
त्रैलोक्यशिखरारूढाः सिद्धा ससारपारगा ।
ते मे नित्य समाराध्या सन्तु सत्कार्यसिद्धिदाः ॥२०॥
वन्देऽहं भारतीं जैनीं जगद्ध्वान्तविनाशिनीम् ।
भासिनीं सर्वतत्त्वानां भानुभामिव निर्मलाम् ॥२१॥

रत्नत्रयपवित्राणां मुनीनां शर्मकारिणाम् ।
पादाम्भोजद्वयं वन्दे संसाराम्बुधितारणम् ॥२२॥
शुद्धश्रीमूलसङ्घाख्ये प्रोत्तुङ्गोदयभूधर ।
भानुर्भट्टारकः स्वामी जीयान्मे मल्लिभूषण ॥२३॥
× × × ×

मध्यभाग—( पूर्व पृष्ठ ७१ पंक्ति ११ )*

गारुड़ोपलपत्रौघैः प्रसूनैः पद्मरागजैः ।
बभौ चैत्यद्रुमो नित्य भव्यानां चित्तरञ्जकः ॥
तत्पुष्पमधुरामोदसंसक्तभ्रमरारवैः ।
सन्तोषाच्चैत्यवृक्षोऽसौ चक्रे वा संस्तुतिं प्रभोः ॥
महार्धगनिनादेन घोषयन्निव निर्मलम् ।
मोहारातिजयाख्यातं यशो नेमिजिनेशिनः ॥
ध्वजांशुकैरशोकोऽसौ पवनान्दोलितैर्मुदा ।
स्फेटयन् वा बभौ गाढं जनानां पापसञ्चयम् ॥
× × × ×

अन्तिम भाग—

गच्छे श्रीमतिमूलसंघतिलके सारस्वतीये शुभे
विद्यानन्दिगुरुप्रपट्टकमलोल्लासप्रदो भास्करः ।
श्रामण्यालरतः प्रसिद्धमहिमा चारित्रचूडामणि
श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुर्जीयात् सतां भूतले ॥
प्रोद्यत्सम्यक्त्वरत्नो जिनकथितमहासप्तभंगीतरंगै
र्निर्धूतैकान्तमिथ्यामतमललिकरः क्रोधकामादिदूरः ।
श्रीमज्जैनेन्द्रवाक्यामृतविशदरसः श्रीजिनेन्द्रप्रवृद्धिः
जीयान्मे सूरिवर्यो व्रतनिचयलसत्पुण्यपण्यः श्रुताब्धिः ॥
मिथ्यावार्वांधकारप्रचयकरणरविः श्रीजिनेन्द्राग्रिपद्म
द्वन्द्वे निर्दंभभक्तिर्जिनगदितमहाज्ञानविज्ञानसिन्धुः ।
चारित्रोत्कृष्टभारो भवभयहरणो भव्यलोकैकबन्धु
र्जीयाद्याचार्यवर्यो विशदगुणनिधिः सिंहनन्दी मुनीन्द्रः ॥

* मध्य भाग और अन्तिम भाग भवन की १११/ख नं० वाली प्रति से ली गई है क्योंकि प्रस्तुत प्रति बहुत अशुद्ध है ।

यस्योपदेशवशतो जिनपुंगवस्य
नेमे पुराणमतुलं शिवसौख्यकारि
चक्रे मयापि अतितुच्छतयात्र भक्त्या
कुर्यादिदं शुभमतं मम मङ्गलानि ॥
शान्तिं कान्तिं सुकीर्त्तिं सकलसुखयुतां सम्पदांश्चायुरुच्चैं
सौभाग्यं साधुसंगं सुरपतिमहितं सारजैनेन्द्रधर्म्मम् ।
विद्यां गोत्रं पवित्रं सुजनजन . . . . . .
श्रीनेमे सत्पुराणम् . . . . . ॥

भुवनैकचूडामणिश्रीनेमिजिनपुराणे भट्टारकश्रीमल्लिभूषणशिष्याचार्यश्रीसिंहनन्दि-नामाङ्किते ब्रह्मनेमिदत्तविरचिते श्रीनेमितीर्थङ्करपरमदेवपञ्चमकल्याणकव्यावर्णनो नाम पद्मनामनवमबलदेवकृष्णनामनवमनारायणजरासन्धनामप्रतिनारायणचरित्रव्यावर्णनो नाम षोडशोऽधिकारः समाप्तः ।

यह ब्रह्मचारी नेमिदत्त वि० सं० १५७५ के हैं। इन्होंने वर्धमानपुराण, धर्मपीयूषवर्षश्रावकाचार, आराधनाकथाकोष, श्रीपालचरित्र, प्रियंकरचरित्र आदि कई ग्रन्थों की रचना की है। इनमें से एक-दो ग्रन्थ छप भी चुके हैं। मूलसंघ एवं सरस्वती गच्छवाले श्रीभट्टारक मल्लिभूषण के यह शिष्य हैं। प्रशस्ति में इन्होंने सिंहनन्दी जी की बड़ी प्रशंसा की है और लिखा है कि इन्हीं की प्रेरणा से इस ग्रन्थ का मैंने प्रणयन किया है। नेमिदत्त जी ने आराधनाकथाकोष की प्रशस्ति में 'यशस्तिलकचन्द्रिका' आदि के कर्त्ता, श्रीश्रुतसागरसूरि को गुरुभावना से स्मरण किया है और इन्होंने इस ग्रन्थ में मल्लिभूषण की वही गुरुपरम्परा दी है, जो श्रुतसागर के ग्रन्थों में मिलती है। नेमिदत्त जी की रचनायें साहित्यिक दृष्टि से सुन्दर एवं सरल हैं।

(५१) ग्रन्थ नं० ६८/झ

# वर्द्धमानकाव्य

कर्ता—जयमित्र

विषय—काव्य

भाषा—अपभ्रंश

लम्बाई १२। इञ्च चौड़ाई ६।। इञ्च पत्रसंख्या ५६

प्रारम्भिक भाग—

सिरि परमप्पयभावणु सुहगुणपावणु ।
जियणिय जम्मजरामरणु ॥
सासयसिरसुहकरु पणयपुरंदरु ।
रिसहु णविवि तिहुयणसरणु ॥
पणवेप्पिणु पुणु अरहंताण दुक्कम्ममहारिकयंताण ।
वसुगुणसंजोयसमिद्धाण सिद्धाण तिजयपसिद्धाण ॥
सूराण सुकसचिताण पयसअममाविचिताण ।
पयडियसमग्गसत्थाण भव्वयणहो णिरुउणाणाण ॥
साहुण साहिय मोक्खाण सुविसुद्ध भ्रूणाविहि दक्खाणं ।
समत्तणाणसुचरित्ताणं सति सुहय णवमि पवित्ताण ॥
वसहाइसुगोतमणं माणं सुगणाणं सअम धामाण ।

पवहारिवकेवलघताण ॥ पुरु विरए विसाल महत्ताण ॥घत्ता॥ णरलोयहो मण्डणु कुणयविहंडणो ॥ तिहिसमयहि पयडिय सम्मय ॥ अवरवि तित्थकर तिजयसुहंकर ॥ तिण्णे सुर सिव णयरिगया ॥१॥ पवणपवित्ति पज्जा दुम्मेवह चिंतामणि घसमह समीहहं ॥ रवि वित्त घतमभरणि णासिय जण णिय वंछिय सुर कुम्माभिणि ॥ सग्ग महिव सुरसच्छ विहसिया गिरिभूयविकाहिकुलहिसमासिय ॥ णीर वराय हस गयगामिणी कोमुइव कुवलय सिरिदायिणी ॥ चम्मिवणिय मुहक सासय देविउ णाहेसउ जिणवर पयसेविउ ॥

× × × ×

*मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ २७, पंक्ति ५)—*

तु सुणिवि पयंपइ मगहराउ किं साहुलपियकह वहु पलाउ ॥ मुणि कि अयाणु अहि कि असक्कु ज दुख सहेसइ तजि थक्कु ॥१०॥ ता चेलणाह जपिउ णरेंदु णउ तज्जइ वाणाडिउ मुणिंदु ॥ जहि रगु वक्कुगुरुवतगजेम कुडिच्छ हिविस गुरुणा जाइ तेम ॥ उवसग्गु होतुमणे विलाहु दुक्खवि सुक्खागमुमुणइ साउ ॥ णउ णिंदइ मछरु मणि धरेइ सुयससयणा इनो सुण करेइ ॥ तिणु कुचणि अरिसुहिसम गिणंतु तव तवइ घोरु कम्मइ हणतु ॥ वावीस परीसह सहणमल्लु वभव्वय धारउ मुणिसल्लु ॥ णाणे परियाण इणेय मग्गु णविरो कारिणी उवलंतहु महुपहु ॥

× × × ×

*अन्तिम भाग—*

अथ सवत्सरेऽस्मिन् श्रीनृपविक्रमादित्यराज्यसंवत्सर १६०० तत्र वर्षे फाल्गुनमासे कृष्णपक्षे द्वितीयायां तिथौ शुक्रवासरे श्रीतिजारास्थानवास्तव्यो साहि आलमुराज्यप्रवर्त्तमाने श्रीकाष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगणे भट्टारकश्रीमलयकीर्त्तिदेवा' तत्पट्टे भट्टारकश्रीगुणभद्र-देवा तदाम्नाये अग्रोतकान्वये गर्गगोत्रे साहु तोल्हा भार्या राणी तस्य पुत्र जिनदास तस्य भार्या शोभा तत्पुत्रा. पञ्च प्रथमपुत्र साधुमहादासु द्वितीयपुत्र साधुगेल्हा तृतीयपुत्र साधनुगराजु चतुर्थपुत्र जगराजु पञ्चमपुत्र साधुसिंह जिनदासप्रथमपुत्र महादासु तस्य भार्या दोदासही तस्य पुत्र तेजनु तस्य भार्या लाडो जिनदासद्वितीयपुत्र गेल्हा तस्य भार्या खीमाही तस्य पुत्रो दोमानु तस्य भार्या भागो तस्य पुत्र नगराज तस्य भार्या धणपालही पुत्रा चत्वार प्रथमपुत्रो जीवन्दु तस्य भार्या भीख्यो द्वितीयपुत्र श्यमित्रपाल तृतीयपुत्र गज चतुर्थो दरगहमल्लु जिणदासपुत्र चतुर्थ जगराज्य तस्य भार्या धोनाही तस्य तृतीय वुच्छा तस्य भार्या चाडिणी द्वितीयपुत्र. मसक् तृतीय तोतृ जिनदासपञ्चमपुत्र सोदू तस्य भार्या दूतस्य भार्या लष्मणयही तस्य ' चतुर्थभार्या कपूरी एतासां मध्ये साधुसोनून इन्द्रश्रीश्रेणिक तासु नानीवरणीकर्मक्षयिणी तेन (तेषां ज्ञाना-वरणकर्मक्षयार्थं) आत्मपठनार्थं कर्मक्षयनिमित्त लिख्यते ।

इस अपभ्रंश काव्य के रचयिता पण्डित जयमित्र मालूम होते है। क्योंकि इसमें एक जगह सर्ग के अन्त मे 'इय पडिया सिरी जयमितह हल्लवि (?) विरइये वड्ढमाणकाव्ये' यों स्पष्ट अङ्कित है। परन्तु यह जयमित्र कौन हैं, यह पता नहीं लगता। ग्रन्थ मे रचयिता की प्रशस्ति आदि कुछ भी नहीं है। हां, प्रतिकराने वाले की वि० स० १६०० की एक प्रशस्ति लगी हुई अवश्य। भवन की यह प्रति बहुत अशुद्ध है। इसकी दूसरी शुद्ध प्रति की प्राप्ति से सभवत ग्रन्थकर्त्ता जयमित्र का कुछ विशेष हाल मालूम हो सकता है।

## (५२) ग्रन्थ नं० ७५/क +

# जिनसहस्रनामटीका

कर्ता—आचार्य श्रुतसागर

विषय—स्तोत्रविषयिणी टीका

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ११ इञ्च    चौड़ाई ७ इञ्च    पत्रसंख्या १२७ *

प्रारम्भिक भाग—

ध्यात्वा विद्यानंद समंतभद्र मुनीन्द्रमर्हन्तम् ।
श्रीमत्सहस्रनाम्नां विवरणमहं वच्मि संसिद्धौ ॥

अथ श्रीमदाशाधरसूरिगृहस्थाचार्यवर्यो जिनयज्ञादिसकलशास्त्रप्रणीतास्तकथ्याकरणाद्य-लंकारसाहित्यसिद्धांतस्वसमयपरसमयागमनिपुणबुद्धिः संसारपारावारपतनभयभीतो निश्च-लतममोक्षमार्गश्रद्धालुः महापुरुष इति बिरुदावलिविराजमानो जिनसहस्रनामस्तवनं चिकीर्षुः प्रभो भवांगभोगेषु' इत्यादि स्वाभिप्रायसूचनपरं श्लोकमिममाह । श्रीविद्यानंदसूरीणां शिष्याः श्रीश्रुतसागरसूरिनामानस्तु तद्विवरणं कुर्वन्तीति 'प्रभो भवांगभोगेषु निर्विण्णो दुःखभीरुकः । एष विज्ञापयामि त्वां शरण्यं करुणार्णवम् ॥' हे प्रभो—भुवनैकनाथ यः कोऽपि तीर्थंकरपरमदेवस्तस्येदं संबोधनम् । एष —प्रतिपत्तिभूतोऽहं आशाधरमहाकविः । त्वां—भवतम् । विज्ञापयामि—विज्ञप्तिं करोमि । कथंभूतोऽहं भवांगभोगेषु—संसारशरीर भोगेषु । निर्विण्णः—निर्वेदं प्राप्तः ।

× × × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ६३ पंक्ति १)—

विमलः—विनष्टो मलः कर्ममलकलंको यस्य स विमलः अथवा विविधा विशिष्टा वा मा लक्ष्मीर्येषां ते (?) विमाः इंद्रादयो देवास्तान् लाति निजपादाक्रांतान् करोति विमलः अथवा विगता दूरीकृता मा लक्ष्मीर्येस्ते विमाः निर्ग्रन्थमुनयस्तान् लाति स्वीकरोति विमलः अथवा विगतं विनष्टमलमुच्चारः प्रस्तावश्च यस्य जन्म स विमलः ॥२७॥ अनंतजित् अनंतसंसार जितवान् अनंतजित् अथवा अनंतं अलोकाकाशं जितवान् केवलज्ञानेन तत्पारं गतवान् अनंतजित् अथवा अनंतविधि ॥२८॥ महावीरः—महांश्चासौ वीरः महावीरः श्रेष्ठो महावीरः ॥२९॥ × × ×

---

+ इसकी १५३/ख नं॰ वाली एक प्रति और है । पर वह बहुत जीर्ण है ।

* बीच बीच में कुछ पत्र नहीं हैं ।

अन्तिम भाग—

अर्हंत सिद्धनाथास्त्रिविधमुनिजना भारतीवार्हतीद्धा ।
सद्ग्रन्थ कुन्दकुन्दो विबुधजनहृदानन्दन. पूज्यपाद. ।
विद्यानन्दोऽकलङ्कः कलिमलहरणश्रीसमन्तादिभद्रो-
भूयात्मे भद्रबाहुर्भवभयमथनो मगल गौतमाद्य ॥
श्रीपद्मनन्दिपरमात्मपर' पवित्रो देवेन्द्रकीर्त्तिरथ साधुजनाभिवन्द्य ।
विद्यादिनन्दिवरसूरिरनल्पबोध. श्रीमल्लिभूषण इतोऽस्तु च मंगल मे ॥२॥

अद् (?) पट्टे भट्टारिकमतपुरीघट्टनपट्टुर्धरद्धर्मध्यान स्फुलपरमभट्टारकपद ।
प्रभापुञ्ज समाद्धिजितवरस्मरनर सुधीलक्ष्मीश्चन्द्रश्चरणचतुरो मे विजयते ॥३॥

आत (?) चन विदुषां हृदयाम्बुजानाम्
आनन्दन मुनिजनस्य विमुक्तिहेतो ।
सट्टीकन विविधशास्त्रविचारचारम्
चेतश्चमत्कृतिकृत श्रुतसागरेण ॥४॥

श्रीश्रुतसागरकृतिवरवचनामृतमन्त्रैर्विहितम् ।
जन्मजरामरणाहर निरन्तरं शिव लब्धम् ॥५॥

अस्ति स्वस्ति समस्तसर्वतिलक श्रीमूलसघोऽनघ
वृत्त यत्र मुमुक्षुसर्वशिवदं ससेवित साधुभि ।
विद्यानन्दिगुरुस्त्विहास्ति गुणवद्गच्छे गिर साम्प्रतम्
तच्छिष्यश्रुतसागरेण रचिता टीका चिर नन्दतु ॥६॥

श्रीइत्याचार्यश्रुतसागरविरचितायां जिनसहस्रनामटीकायामन्तकृच्छतविवरणो नाम दशमोऽध्याय ।

इस जिनसहस्रनामटीका के रचयिता श्रीश्रुतसागरसूरि हैं। माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैन ग्रन्थमाला में प्रकाशित 'षट्प्राभृतादिसंग्रह' की भूमिका मे श्रीयुत पं० नाथूराम जी प्रेमी ने इनका जो परिचय दिया है, वही यथावत् नीचे उद्धृत कर दिया जाता है—

षट्प्राभृत या षट्पाहुड के टीकाकार आचार्य श्रुतसागर बहुश्रुत विद्वान् थे। इस टीका से और यशस्तिलक-चन्द्रिका टीका से मालूम होता है कि वे कलिकालसर्वज्ञ, कलिकाल गौतमस्वामी, उभयभाषाकविचक्रवर्ती आदि महती पदवियों से अलंकृत थे। उन्होंने 'नवनवति' (९९) महावादियों को पराजित किया था।

वे मूलसंघ सरस्वतीगच्छ और बलात्कारगण के आचार्य और विद्यानन्दी भट्टारक के शिष्य थे। उनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार थी—पद्मनन्दी—देवेन्द्रकीर्ति—विद्यानन्दी।

परन्तु विद्यानन्दी भट्टारक के पट्ट पर जान पड़ता है उनकी स्थापना नहीं हुई थी। क्योंकि विद्यानन्दी के बाद की गुरुपरम्परा इस प्रकार मिलती है—विद्यानन्दी—मल्लिभूषण—लक्ष्मीचन्द्र।

स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द जी के ग्रन्थभाण्डार में प० आशाधर के महाभिषेक नामक ग्रन्थ की टीका है। उसके अन्त में इस प्रकार लिखा है —

'श्रीविद्यानन्दिगुरोर्बुद्धिगुरोः पादपंकजभ्रमरः।
श्रीश्रुतसागर इति देशव्रती तिलकष्टीकते स्मेदं॥
इति ब्रह्मश्रीश्रुतसागरकृता महाभिषेकटीका समाप्ता॥
श्रीरस्तु लेखकपाठकयो॥ शुभं भवतु॥श्री॥

संवत् १५८२ वर्षे चैत्रमासे शुक्लपक्षे पंचम्यां तिथौ रवौ श्रीआदिजिनचैत्यालये श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनंदिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीविद्यानंदिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीमल्लिभूषणदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीलक्ष्मीचन्द्रदेवास्तेषां शिष्यवरब्रह्मश्रीज्ञानसागरपठनार्थं॥ आर्या श्रीविमलश्री चेली भट्टारक श्रीलक्ष्मीचन्द्रदीक्षिता विनयश्रिया स्वयं लिखित्वा प्रदत्तं महाभिषेकभाष्यं॥ शुभं भवतु॥ कल्याणं भूयात्॥ श्रीरस्तु॥

इससे मालूम होता है कि विद्यानन्दी के पट्ट पर मल्लिषेण की और उनके पट्ट पर लक्ष्मीचन्द्र की स्थापना हुई थी। यशस्तिलकटीका में श्रुतसागर ने मल्लिभूषण को अपना गुरुभ्राता लिखा है। इससे भी मालूम होता है कि विद्यानन्दी के उत्तराधिकारी मल्लिभूषण ही हुए होंगे। यशस्तिलकचन्द्रिका टीका के तीसरे आश्वास के अन्त में लिखा है—

इति श्रीपद्मनन्दिदेवेंद्रकीर्तिविद्यानंदिमल्लिभूषणाम्नायेन भट्टारकश्रीमल्लिभूषणगुरुपरमाभीष्टगुरुभ्राता गुर्जरदेशसिंहासनभट्टारकश्रीलक्ष्मीचन्द्रकाभिमतेन मालवदेशभट्टारकश्रीसिंहनंदिप्रार्थनया यतिश्रीसिद्धान्तसागरव्याख्याकृतिनिमित्तं नवनवतिमहामहावादिस्याद्वादलब्धविजयेन तर्कव्याकरणछंदोऽलंकारसिद्धान्तसाहित्यादिशास्त्रनिपुणमतिना प्राकृतव्याकरणाद्यनेकशास्त्रचञ्चुना सूरिश्रीश्रुतसागरेण विरचितायां यशस्तिलकचंद्रिकाभिधानायां यशोधरमहाराजचरितचम्पूमहाकाव्यटीकायां यशोधरमहाराजराजलक्ष्मीविनोदवर्णनं नाम तृतीयाश्वासचन्द्रिका परिसमाप्ता।'

इससे मालूम होता है कि उस समय गुर्जर देश के पट्ट पर भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र स्थित थे और मल्लिभूषण का शायद स्वर्गवास हो चुका था।

लक्ष्मीचन्द्र के बाद भी श्रीश्रुतसागर के पदाधिकारी होने का कोई उल्लेख नहीं मिलता। जान पडता है वे कभी सिंहासनासीन हुए ही नहीं।

ये पद्मनंदी, विद्यानंदी, आदि सब गुजरात के ही भट्टारक हुए हैं। परन्तु यह मालूम न हो सका कि गुजरात के किस स्थान की गद्दी को इन्होने सुशोभित किया था। ईडर, सूरत, सोजित्रा आदि कई स्थानो में भट्टारकों के पट्ट रहे हैं। यशस्तिलक की रचना के समय मालवे के पट्ट पर सिंहनंदी भट्टारक थे। इन्हींकी प्रेरणा से श्रुतसागरसूरि ने नित्यमहोद्योत या महाभिषेक की भी टीका लिखी थी।

श्रुतसागरसूरि के भी अनेक शिष्य रहे होंगे। इसी ग्रन्थमाला के तत्त्वानुशासनादि-संग्रह में इनके एक श्रीचन्द्र नामक शिष्य की रची हुई वैराग्यमणिमाला प्रकाशित हुई है। आराधनाकथाकोश, नेमिपुराण, आदि अनेक ग्रन्थो के कर्त्ता ब्रह्मचारी नेमिदत्त ने भी—जो मल्लिभूषण के शिष्य थे—श्रुतसागर को गुरुभावना से स्मरण किया है *। नेमिदत्त ने भी मल्लिभूषण की वही गुरुपरम्परा दी है, जो श्रुतसागर के ग्रन्थो में मिलती है। उन्होंने सिंहनन्दी का भी उल्लेख किया है।

श्रुतसागर का अभी तक टीकाग्रन्थों के अतिरिक्त कोई स्वतंत्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है।

उनके बनाये हुए ग्रन्थो का परिचय आगे दिया जाता है —

१ *यशस्तिलकचन्द्रिका*। यह निर्णयसागर प्रेस की 'काव्यमाला' में प्रकाशित हो चुकी है। यह टीका अपूर्ण है—५वें आश्वास के कुछ अंश की और छठे आश्वास की टीका नहीं है। जान पडता है, यही उनकी अन्तिम रचना है। यह टीका अनेक स्थानो के ग्रन्थभाण्डारों में मिलती है, परन्तु सर्वत्र ही अपूर्ण है।

२ *महाभिषेकटीका*। सुप्रसिद्ध पंडित आशाधर जी के बनाये हुए नित्यमहोद्योत या महाभिषेक नामक ग्रन्थ की यह टीका है। इसका अन्तिम अंश ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। उससे मालूम होता है कि उस समय श्रुतसागर देशव्रती या ब्रह्मचारी थे, सूरि या आचार्य नहीं हुए थे।

३ *तत्त्वार्थटीका*। यह श्रुतसागरी टीका के नाम से प्रसिद्ध है। इस लेख के लिखते समय हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी। परन्तु यह दुष्प्राप्य नहीं है—इसका भाषानुवाद भी हो चुका है।

४ *तत्त्वत्रयप्रकाशिका*। आचार्य शुभचन्द्रकृत ज्ञानार्णव के अन्तर्गत जो गद्यभाग है,

* आराधनाकथाकोश की प्रशस्ति देखो।

यह उसीकी टीका है। इसकी एक प्रति स्व० सेठ माणिकचन्द्र जी के ग्रंथ संग्रह म † मौजूद है। उसकी प्रशस्ति देखिये —

आचार्यैरिह शुद्धतत्त्वमतिभि श्रीसिंहनंद्याह्वयै
सप्रार्थ्य श्रुतसागर [रा] कृ [कि] तवरं भाष्यं शुभ कारित।
गद्यानां गुणवत्प्रिय विनयतो ज्ञानार्णवस्यांतर
विद्यानंदिगुरुप्रसादजनित देयादमेय सुखम् ॥

इति श्रीज्ञानार्णवस्य (?) स्थितगद्यटीका तत्त्वत्रयप्रकाशिना [का] समाप्त [प्ता] ॥ शुभमस्तु ॥"

५ *जिनसहस्रनाम टीका* । यह प० आशाधरकृत जिनसहस्रनाम की विस्तृत टीका है। इसकी भी एक प्रति सेठ जी के ग्रन्थ संग्रह में मौजूद है। शब्दबोध और व्युत्पत्ति बोध के अभिलाषियों के लिये बड़े काम की चीज है। इसकी भी प्रशस्ति देखिये —

'श्रीपद्मनंदिपरमात्मपर पवित्रो देवेंद्रकीर्तिरथ साधुजनाभिवंद्य ।
विद्यादिनंदिवरसूरिरनल्पबोध, श्रीमल्लिभूषण इतोऽस्तु च मंगल मे ॥२॥

मद् (?) पट्टे भट्टादिकमतघटाघट्टनपटु
धन्द्धर्मध्यान स्फुरपरमभट्टारकपद ।
प्रभापुंज सयद्धिजितवरवीरस्मरनर,
सुधीलक्ष्मीचन्द्रश्चरणचतुरोऽसौ विजयते ॥३॥
मर्त (?) वन सुविदुषां हृदयांबुजानां
आनन्दनं मुनिजनस्य विमुक्तिहेतो
सट्टीकन विविधशास्त्रविचारचारु
चेतश्चमत्कृतिकृतं श्रुतसागरेण ॥४॥
श्रुतसागरकृतिवरवचनामृतपानमत्रयै(?)र्विहितं ।
जन्मजरामरणहर निरंतर तै शिवं लब्ध ॥५॥
अस्ति स्वस्ति समस्तसंघतिलक श्रीमूलसंघोऽनघं,
वृत्त यत्र मुमुक्षुवर्गशिवद संसेवित साधुभि ।
विद्यानंदिगुरुस्त्विहास्तिगुणवद्गच्छे गिर सांप्रत,
तच्छिष्य श्रुतसागरेण रचिता टीका चिर नंदतु ॥६॥

इतिसूरिश्रीश्रुतसागरविरचितायां जिननामसहस्रटीकायामंतकृच्छतविवरणो नाम दशमोऽध्याय ॥१०॥ श्रीविद्यानंदिगुरुभ्यो नम ।"

† ग्रन्थ में ३।

६ प्राकृतव्याकरण। यह ग्रन्थ हमे अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। यशस्तिलकटीका में एक जगह उन्होंने अपने लिए यह विशेषण भी दिया है—"प्राकृतव्याकरणाद्यनेकशास्त्र-रचनाचञ्चुना" इससे और षट्पाहुडटीका में जो जगह-जगह प्राकृतव्याकरण के सूत्र दिये है, उनसे भी मालूम होता है कि इनका बनाया हुआ कोई प्राकृतव्याकरण अवश्य है। इस ग्रन्थ का पता लगाने की बहुत आवश्यकता है।

इनके सिवाय तर्कदीपक, विक्रमप्रबन्ध, श्रुतस्कन्धावतार, आशाधरकृत पूजाप्रबन्ध की टीका, बृहत्कथाकोश आदि और भी कई ग्रन्थ इनके बनाये हुए कहे जाते हैं।

इन्होंने अपने किसी भी ग्रन्थ में अपने समय का उल्लेख नहीं किया है, परन्तु यह प्राय निश्चित है कि ये विक्रम की १६ वीं शताब्दि में हुए हैं। क्योंकि—

१—ऊपर जिस महाभिषेकटीका की प्रति का उल्लेख किया गया है, वह वि० स० १५८२ की लिखी हुई है और वह भट्टारक मल्लिभूषण के उत्तराधिकारी लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य ब्रह्मचारी ज्ञानसागर के पढ़ने के लिए दान की गई है और इन लक्ष्मीचन्द्र का उल्लेख श्रुतसागर ने स्वय अपनी टीकाओं मे कई जगह किया है।

२—आराधनाकथाकोश के कर्त्ता ब्र० नेमिदत्त वि० १५७५ के लगभग हुए हैं और वे श्रुतसागर के गुरुभ्राता मल्लिभूषण के शिष्य थे।

३—स्वर्गीय बाबा दुलीचन्द जी के स० १९५४ के बनाए हुए हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची में श्रुतसागर का समय वि० सवत् १५५० लिखा हुआ है।

४—षट्प्राभृतटीका मे जगह-जगह लोंकागच्छ पर तीव्र आक्रमण किये गये है और श्वेताम्बरसम्प्रदाय में से यह मूर्तिपूजा का विरोधी पन्थ वि० सवत् १५०८ के लगभग स्थापित हुआ है। अतएव श्रुतसागर का समय इसकी स्थापना से अधिक नहीं तो चालीस-पचास वर्ष पीछे अवश्य मानना चाहिये।

---

(५३) ग्रन्थ नं० $\frac{७६}{क}$

# पार्श्वपुराण

कर्त्ता—सकलकीर्ति

विषय—पुराण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२ इञ्च | चौड़ाई ७ इञ्च | पत्रसंख्या ९१

*प्रारम्भिक भाग*—

नमः श्रीपार्श्वनाथाय विश्वविघ्नौघनाशिने ।
त्रिजगत्स्वामिने मूर्ध्ना ह्यनंतमहिमात्मने ॥१॥
जित्वा महोपसर्गाब्धी ज्योतिर्देवकृता भुवि ।
स्वकीय केवल यार्क चक्रे चेदे तमद्भुतम् ॥२॥
यन्नामस्मृतिमात्रेण विघ्नाः कार्यविनाशिनः ।
विलीयन्तेऽखिला नृणां तुमत्रेण विषाणि वा ॥३॥
अरयो दुर्निवारा हि त्यक्त्वा वैरं भजन्त्यहो ।
बन्धुभावं सतां नूनं यन्नामजपनेन हि ॥४॥
क्षुद्रा देवा दुराचाराः पीडयन्ति न जातुचित् ।
नार्हत्सिद्धाद्यशेषाच्छरणाग्विश्वचेतसाम् ॥५॥
असाध्या दुष्करा रोगाः सर्वे यान्ति क्षयात्क्षयम् ।
यन्नामश्रेयजेनाऽपि तमांसि भानुना यथा ॥६॥
यद्ध्यानेन प्रणश्यन्त्यनन्ताः कर्मराशयः ।
यथातो परविघ्नादिनाशे का विस्मयः सताम् ॥७॥
इत्यादि महिमोपेतं जगन्नाथं जगद्गुरुम् ।
तं श्रीपार्श्वं स्तुवे वंदे प्रारब्धविघ्नशान्तये ॥८॥
दिव्यवाकिरणैराद्यो रागद्वेष तमश्चयम् ।
उच्छिद्य सम्प्रकाश्योच्चैर्मोक्षमार्गं सतां ययम् ॥९॥

× × ×

*मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ४८, पंक्ति १)*—

नम श्रीमुक्तिकान्ताय काममल्लविनाशिने।
श्रीपार्श्वस्वामिने सिद्ध्यै जगद्भर्त्रे चिदात्मने ॥१॥
दिग्भि. सार्द्धं नभोऽप्यासीन्निर्मलं जिनजन्मत'।
अम्लानकुसुमैश्चक्रु पुष्पवृष्टिं सुरद्रुमाः ॥२॥
अनाहता महाध्वाना दध्वनुर्दिविजानका।
ववौ तदा मरुन्मन्द सुगंधि शिशिरः स्वयम् ॥३॥
अभूद्घटारवोऽतीव गम्भीरो निर्जरान्प्रति।
वदतीव जिनेन्द्रस्य जन्म नाकालये स्वयम् ॥४॥
आसनानि सुरेशानामकस्मात्प्रचकम्पिरे।
देवानुच्चासनेभ्योऽध पातयन्तीव भक्तये ॥५॥
शिरांसि प्रचलन्मौलिमणीनि प्रणतिं दधु।
कुर्वन्तीव नमस्कार भक्त्या तीर्थेशपादयोः ॥६॥
दृष्ट्वेत्यादिमहाश्चर्यं ज्ञात्वा तीर्थेशजन्म ते।
कल्पेशावधिज्ञानाज्जन्मज्ञाने मतिं व्यधुः ॥७॥

× × ×

*अन्तिम भाग*—

न कीर्त्तिपूजादिसुलाभलोभान्न वा कवित्वाद्यभिमानतोऽयम्।
ग्रन्थ कृत किन्तु परार्थबुद्ध्या स्वस्यापरेषाञ्च हिताय नूनम् ॥९२।
अक्षरस्वरसुसंधिसुमात्रादिच्युतं यदपि किञ्चिदपीह।
ज्ञानहीनचलचित्तप्रमादात्तच्छमस्व जिनवाणि समस्तम् ॥९३॥
अवगमजलधिश्रीपार्श्वनाथस्य दिव्य
सकलविशदकीर्त्ते. प्रादुरासीन्मुनीन्द्रात्।
यदिह वरचरित्र तद्धि दक्षै. ननतु (?) [दक्षा स्मरन्तु]
यतिसुजन(सु)सेव्य जैनधर्मोऽस्ति यावत् ॥९४॥
सर्वे तीर्थकरा महातिशयिन' सिद्धार्हकर्मातिगा
दिव्याद्यद्भुतसद्गुणाश्च सहिता श्रीसाधवश्च त्रिधा।
शुक्लध्यानसुयोगसाधनपरा विद्याम्बुधे पारगा'
ये ते विश्वगुणाकराश्च शिवद कुर्वन्तु मे मङ्गलम् ॥९५॥

विश्वार्च्या विश्ववन्द्या सकलगुणधरा मुक्तिकान्ताप्रसक्ता
हन्तारः कर्मशत्रून् सुगुणजलधयो ज्ञानरूपेण नित्यम् ।
आराध्या मध्यलोकैरगतिसुखकरास्तीर्थनाथाश्च सिद्धा
ये तेऽनन्ता मुनीन्द्राः शुभसुखसदनं मङ्गलं च प्रदद्युः ॥९६॥
जिनवररुचिमूलो ज्ञानसत्पीठबन्ध
सकलचरणशाखो दानपात्रप्रसून ।
शिवसुखफलनम्रो धर्मकल्पद्रुमो च
सुधिय(सु)फलकामैं सेव्यमेवेष्टसिद्ध्यै ॥९७॥
धर्मो विश्वसमीहितार्थजनको धर्मं बुधा धार्मिका ।
धर्मेणाशु शिवं भजन्ति मुनयो धर्माय मुक्त्यै नमः ।
धर्मान्नास्त्यपरोऽखिलार्थसुखदो धर्मस्य मूलं सुदृग्
धर्मे चित्तमहं दधेऽन्तकमुखाद्धे धर्म रक्षाशु माम् ॥९८॥
सर्वे श्रीजिनपुङ्गवाश्च विमला सिद्धा अमूर्ता विद
विश्वार्च्या गुरवो जिनेन्द्रमुखजा सिद्धान्तधर्मोदय ।
कर्त्तारो जिनशासनस्य सहिता सवन्दिता संस्तुता
ये ते मेऽत्र दिशन्तु मुक्तिजनके शुद्धिञ्च रत्नत्रये ॥९९॥
पञ्चादशाधिकान्येवाष्टविंशतिशतान्यपि ।
श्लोकसंख्याऽस्य विज्ञेया सद्ग्रन्थस्य लेखकैः ॥१००॥

इति श्रीपार्श्वनाथचरित्रे भट्टारकश्रीसकलकीर्तिविरचिते श्रीपार्श्वनाथमोक्षगमनो नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः समाप्त ।

ज्ञानभूषण भट्टारक विक्रम की १६ वीं शताब्दी में हुए हैं। ज्ञानभूषण भुवनकीर्ति के पट्ट पर, भुवनकीर्ति सकलकीर्ति के पट्ट पर और सकलकीर्ति पद्मनन्दी के पट्ट पर बैठे थे। १६ वीं शताब्दी के बने एवं लिखे हुए बहुत से ग्रन्थों में इस पट्टावली का उल्लेख पाया जाता है। इससे सहज ही में पद्मनन्दी के पट्ट पर प्रतिष्ठित होनेवाले तथा भुवनकीर्ति के गुरु सकलकीर्ति भट्टारक का समय विक्रम की १५ वीं शताब्दी अनुमान किया जाता है। बल्कि डॉ० विन्टरनिट्ज का कहना है कि यह सकलकीर्ति लगभग ई० सन् १४६४ में स्वर्गासीन हुए थे।*

'ज्ञानार्णव' की प्रशस्ति में इन्हीं सकलकीर्ति भट्टारक के सबंध में लिखा है कि इन्होंने

* See A History of Indian Literature Page 592.

अपनी लीलामात्र से शास्त्रसमुद्र को भले प्रकार बढ़ाया है।* 'प्रश्नोत्तररत्नमाला' मे सकलभूषण ने इन्हें 'पुराणमुख्योत्तमशास्त्रकारी' विशेषण के साथ स्मरण किया है। जिनदास ब्रह्मचारी ने अपने 'पद्मपुराण' और 'हरिवंशपुराण' मे इनका 'महाकवित्वादिकलाप्रवीणः' ऐसा विशेषण दिया है। 'पाण्डवपुराण' में शुभचन्द्र भट्टारक ने इनकी प्रशंसा मे यह वाक्य कहा है—'कीर्तिः कृता येन च मर्त्यलोके शास्त्रार्थकर्ती सकला पवित्रा।' इसी प्रकार और भी बहुत से विद्वानो ने इनके महान् ग्रन्थकार होने का उल्लेख किया है। इससे ऐसा अनुमान किया जाता है कि जैन-समाज मे सकलकीर्ति के नाम से जो बहुत से ग्रन्थ प्रचलित हैं और जिनपर उनके बनने का सं.वत् आदि नहीं दिया है उनका अधिकांश भाग इन्हीं सकलकीर्ति भट्टारक का बनाया हुआ है। १६ वीं शताब्दी मे सकलकीर्ति भट्टारक नाम के दूसरे भी एक विद्वान् हुए हैं। परन्तु वे इतने अधिक प्रसिद्ध नहीं थे।†

कामराजकृत 'जयपुराण' की प्रशस्ति में सकलकीर्ति के सम्बन्ध मे निम्नलिखित वाक्य दिये हैं —

आचार्य कुन्दकुन्दाख्यस्तस्मादनुक्रमादभूत्।
स सकलकीर्तियोगीशो ज्ञानी भट्टारकेश्वर ॥२॥
येनोद्धृतो गतो धर्मो गुर्जरे वाग्वराढिके।
निर्ग्रन्थेन कवित्वादिगुणानेवार्हता पुरा ॥३॥
तस्माद्भुवनकीर्ति श्रीज्ञानभूषणयोगिराट्।
विजयकीर्तयोऽभूवन् भट्टारकपदेशिन ॥४॥

इनसे मालूम होता है कि इन्हीं सकलकीर्ति भट्टारक ने, जिनके पट्ट पर क्रमश भुवनकीर्ति और ज्ञानभूषण बैठे थे, गुजरात और वागड आदि देशों मे जैनधर्म का प्रचार किया है।‡ 'दिगम्बर जैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' इस ग्रन्थतालिका में भट्टारक सकलकीर्ति के निम्नलिखित ग्रन्थो के नाम उपलब्ध होते हैं—

सिद्धान्तसार, तत्त्वार्थसारदीपक, सारचतुर्विंशतिका, धर्मप्रश्नोत्तर, मूलाचारप्रदीपक, प्रश्नोत्तरश्रावकाचार, यत्याचार, सद्भाषितावली, आदिपुराण, उत्तरपुराण, धर्मनाथपुराण, शान्तिनाथपुराण, मल्लिनाथपुराण, पार्श्वनाथपुराण, वर्धमानपुराण, सिद्धान्तमुक्तावली, कर्मविपाक, देवसेनकृत तत्त्वार्थसारटीका, धन्यकुमारचरित्र, जम्बूस्वामिचरित्र, श्रीपालचरित्र, गजसुकुमालचरित्र, सुदर्शनचरित्र, यशोधरचरित्र, अष्टाह्निकासर्वतोभद्र, उपदेशरत्नमाला, सुकुमालचरित्र।

इनमे से प्रश्नोत्तरश्रावकाचार आदि कुछ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

* भट्टारकपदारूढ सकलाद्यन्तकीर्तिभाक्। येन शास्त्राम्बुधि सम्यग् वर्धितो निजलीलया ॥१४॥

† देखें—'जैनहितैषी' भाग ११, अंक १२ ‡ देखें—'जैनहितैषी' भाग १२, पृष्ठ ६०–६१

(५४) ग्रन्थ नं० $\frac{७८}{क}$

# कातंत्रविस्तर

कर्ता—वर्द्धमान

विषय—व्याकरण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ११। इञ्च चौड़ाई ७ इञ्च पत्रसंख्या २५०

प्रारम्भिक भाग—

जिनेश्वरं नमस्कृत्य गौतमं तदनन्तरम् ।
सुगमं क्रियतेऽस्माभिरयं कातन्त्रविस्तरः ॥
अभियोगपराः पूर्वे भाषायां यद्बभाषिरे ।
प्रायेण तद्विहास्माभिः परित्यक्तं न किञ्चन ॥

सिद्धो वर्णसमाम्नायः । सकललोकप्रसिद्धः प्रसिद्धसंज्ञासहित इह शास्त्रे वर्णसमाम्नायो वेदितव्यः । वर्णा अकारादयः । तेषां समाम्नायः पाठक्रमः । तत्र चतुर्दशादौ स्वराः । तत्र सिद्धवर्णसमाम्नाये आदौ चतुर्दश वर्णाः स्वरसंज्ञा भवन्ति । अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ । ऌवर्णस्य स्वरसंज्ञया किं प्रयोजनम् ।† योऽपि ऌकारं पठति ऌच्छादयः इत्यादि । स्वरप्रदेशाः । स्वरोऽवर्णवर्जो नामि इत्येवमादयः । दश समानाः । तस्मिन् वर्ण समाम्नायविषये आदौ दश वर्णाः समानसंज्ञा भवन्ति । अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ । ऌवर्णस्य समानसंज्ञया किं प्रयोजनम् । गम इत्याख्यातृगमदित्यादौ सन्वद्भावो न भवति । समानप्रदेशाः । समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम् इत्येवमादयः । तेषां द्वौ द्वावन्योऽन्यस्य सवर्णौ । तेषामेव दशानां समानानां मध्ये यौ यौ द्वौ द्वौ वर्णौ तावन्योन्यस्य सवर्णसंज्ञौ भवतः । अआ इई उऊ ऋॠ ऌॡ । ह्रस्वयोर्दीर्घयोश्चान्वर्थबलात्व्यतिक्रमे च तेषां ग्रहणस्य क्रमविवक्षार्थत्वात्सवर्णसंज्ञा सिद्धेति । ऌवर्णस्य सवर्णसंज्ञया किं प्रयोजनम् । शक्लृकार इति हस्वं न भवति । सवर्णप्रदेशाः । समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम् इत्यादयः । ऋकारलृकारौ च । अन्योन्यस्य सवर्णसंज्ञौ भवतः ।

× × × ×

†— विरामे वा' अनेन सूत्रेण पदान्तो मकारोऽनुस्वारमापद्यते।

*मध्य भाग—(पूर्व पृष्ठ १२६, पंक्ति १०)*

नाम्नां समासो युक्तार्थ । नाम्नो च नामानि च (?) नाम्नां समुदायो युक्तार्थं समाससंज्ञो भवति । यदि वा युक्तश्चासावर्थश्चेति शब्दोऽपि तथार्थाभिधानाद्युक्तार्थः । इत्ञेति युक्तार्थस्तु नरसिंहवद्खराड. तदभिधायिवाक्याद्भिन्न । समासराशि सिद्ध । तस्यालोप्या द्विभिर्विभक्तिलोपविधानादर्थाद्वाक्यमेव वा समासीभवति । नीलोत्पल । पञ्चगु । कण्ठेश्रित । चित्रगु । देवदत्तयज्ञदत्तो । उपकुंभ । स पुन समास क्वचिन्नित्य । कृष्णसर्प । लोहितशालि. । ब्राह्मणार्थापूपा. । सप्तर्षयः । क्वचिद्विकल्प । राज्ञ पुरुष । राजपुरुष । क्वचिन्न भवति । दीर्घश्चारायण । रामो जामदग्न्य । व्यास पाराशर्य । अर्जुन कार्तवीर्य । नाम्नामिति किं । कार्याणासमासान्तासमीपयोरिति (?) णत्वविकल्पो न स्यात् । युक्तार्थ इति किं । पश्य कष्टं श्रितश्चैत्रो राजकुल । ओद्धस्य [ ऋद्धस्य ] विशिष्टस्यापत्यमित्यत्रार्थे धिशिष्टापत्यमिति न स्यात् ।

× × × ×

*अन्तिम भाग —*

स्वार्थे अण् । तदन्तादिप्रत्ययः । स्वागतादीना वृद्धिप्रतिषेधौ न भवत । शोभनमागत तदाह स्वागतिक । सुष्ठु अध्वर स्वध्वर । तेन चरति स्वाध्वरिक । शोभनानि तान्यगानि यस्य स्वागस्तस्यापत्य स्वांगिक । एवं व्यांगि । व्याडिरिति केचित् । व्याडस्यापत्य व्याडिः । विगतोऽवहारो विशेषेण वावहार । तेन चरति व्यावहारिक. । व्यायामिक । स्वागत । स्वध्वरा । स्वगा । व्यगा । व्याड । व्यवहार । व्यायाम । स्वादेरिति श्वन्शब्दस्यैकारादो तद्धिते वृद्धिरागमो न भवति । श्वभस्त्रस्यापत्यं श्वाभस्त्रि । श्वाशीर्षि । शुनां गणस्येन चरति श्वागणिक । श्वायूथिक । आदिग्रहणात्केवलस्य निषेध । श्वभिश्चरति शौविक । इकारादाविति किं । शौवादंष्ट्रो मणि । इणश्चादे । इण्प्रत्ययान्तस्य सणे तद्धिते वृद्धिरागमो न भवति । श्वाभस्त्रेरिद श्वाभस्त्रक । श्वाकर्णेरिदं श्वाकर्णक । अणि लुप्तेऽपि तत्कृत प्रतिषेधो भवत्येवेति । अनर्थकमेतदिति चांद्रा । पदस्यानीति वा । श्वशब्दादे पदशब्दस्यानिकारादो वा वृद्धिर्न भवति । शुन पद श्वपद । तस्येदमित्यण् । शौनपद । श्वपद । अनिनीति किं । श्वपदेन चरति श्वापदिक. । श्वन्शब्दस्य द्वारादिपाठात् तत्र तदादिविधेर्ज्ञापितत्वान्नित्य प्राप्ते विकल्पो विधीयते । न्यंकोश्च । सणे तद्धिते वृद्धिरागमो वा भवति । न्यङ्कोरिदं न्याङ्कवं ।

इति श्रीमत्कर्णदेवोपाध्यायश्रीवर्द्धमानविरचिते कातन्त्रविस्तरे तद्धिते

दशमप्रकरण समाप्तम् ।

इस कातन्त्रविस्तर' के मूल सूत्र के रचयिता शर्ववर्मा हैं। ये मूल सूत्र कातन्त्र, कौमार एवं कलाप के नाम से प्रसिद्ध हैं। कातन्त्र में संस्कृत व्याकरण का विषय ऐसे सुन्दर ढंग से गुम्फित किया गया है जो अधिक विस्तृत न अधिक संक्षिप्त ही कहा जा सकता है। साथ ही साथ सरल भी है। हाँ, इसमें कुछ त्रुटियाँ भी हैं। स्त्रीप्रत्यय, तद्धित आदि कुछ प्रत्ययों की सुप्रमेयता एवं सार्वधातु अमार्वधातु का पार्थक्य आदि ही ये त्रुटियाँ हैं। फिर भी मध्यमरूप से व्याकरण की शिक्षा पाने के लिये यह ग्रन्थ बहुत ही उत्तम है। और और प्रान्तों की अपेक्षा बंगाल में इसका अधिक प्रचार है। इसके प्रणेता शर्ववर्मा जैन थे या जैनेतर यह अभी विवादग्रस्त है। महाकवि सोमदेव भट्ट रचित कथा सरित्सागर में इस ग्रन्थ की उत्पत्ति की एक कथा मिलती है। उससे इसके निर्माता शर्ववर्मा अजैन सिद्ध होते हैं। किन्तु दिगम्बराचार्य भावसेन त्रैविद्यदेव अपनी रूपमाला' नामक टीका में कातन्त्र को जैनग्रन्थ घोषित करते हैं। बल्कि कातन्त्रविस्तर' और 'रूपमाला नामक दिगम्बरीय टीकाओं के अतिरिक्त कातन्त्र पर श्वेताम्बरों की भी कई टीकायें उपलब्ध होती हैं।† अस्तु कातन्त्र के रचयिता के सम्बन्ध में विशेष खोज करने की आवश्यकता है।

उपर्युक्त 'कातन्त्रविस्तर' के रचयिता वर्द्धमानजी हैं। 'भवन की यह प्रति अपूर्ण है, इसलिये आपकी गुरुपरम्परा आदि का कुछ भी पता नहीं लगता। प्रस्तुत प्रति मूडबिद्री जैनमठ के ग्रन्थ भाण्डार में वर्तमान एक ताड़पत्रीय प्रति की नकल है। वहाँ की यह प्रति भी अधूरी है। स्वर्गीय बा० पूरणचन्द्रजी नाहर ने जैन सिद्धान्त भास्कर भाग २ किरण १ में प्रकाशित 'धार्मिक उदारता' शीर्षक अपने एक लेख में वर्द्धमानजी को श्वेताम्बर लिखा है। ज्ञात नहीं होता है कि आपके इस कथन का आधार क्या है। क्योंकि 'जैन साहित्यनो इतिहास एवं जैनग्रन्थावली आदि में इस बात का कुछ भी संकेत नहीं मिलता है। बल्कि नाहरजी ने उक्त लेख में इन्हें सूरी (आचार्य) के रूप में उल्लेख किया है। पर कातन्त्रविस्तर की इस प्रति में उपलब्ध किसी भी प्रकरण के अन्त में वर्द्धमान इस नाम के साथ 'सूरी शब्द नहीं मिलता है। हाँ, कर्णदेवोपाध्याय' यह विशेषण अवश्य मिलता है। पता नहीं लगता है कि वर्द्धमानजी के द्वारा प्रतिपादित यह कर्णदेव कौन हैं। इन सब बातों को हल करने के लिये ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति अत्यधिक अपेक्षणीय है। आशा है कि किसी ग्रन्थालय में 'कातन्त्रविस्तर' की पूर्ण प्रति हो, वहाँ के उदार विद्वान् उसे प्रशस्ति की अविकल नकल हमारे पास भेजने की कृपा अवश्य करेंगे।

---

† देखें—'जैन सिद्धान्त-भास्कर' भाग २ किरण १

# अनुक्रमणिका

इस अनुक्रमणिका में 'प्रशस्ति-संग्रह' मे सम्मिलित आचार्य, मुनि, आर्यिका, संघ, गण, गच्छ, श्रावक, श्राविका, शासक, शासिका, सचिव, सेनानायक, कोषाध्यक्ष, राजश्रेष्ठी, ग्रन्थ एवं स्थल आदि के नाम समाविष्ट किये गये हैं। पृष्ठ-संख्या के बाद तीन संकेताक्षर दिये गये है। उनमे 'प्र' से प्रशस्ति, 'प' से परिचय तथा 'फु' से फुटनोट समझना चाहिये। प्रसंगवश परिचय के अन्दर जो पद्य आये है, उनके नामो के आगे भी 'प' संकेताक्षर ही रक्खा गया है।

अ

## च



## छ



## ज

ट



ड



त

ध



न

य

श

ष

स

## ह

---

नोट इस अनुक्रमणिका' को तैयार करने में श्री पं सुगनचन्द्र जैन, 'विशारद' से भी मुझे सहायता मिली है इसलिये मैं उनका भी आभारी हूं।

—सम्पादक